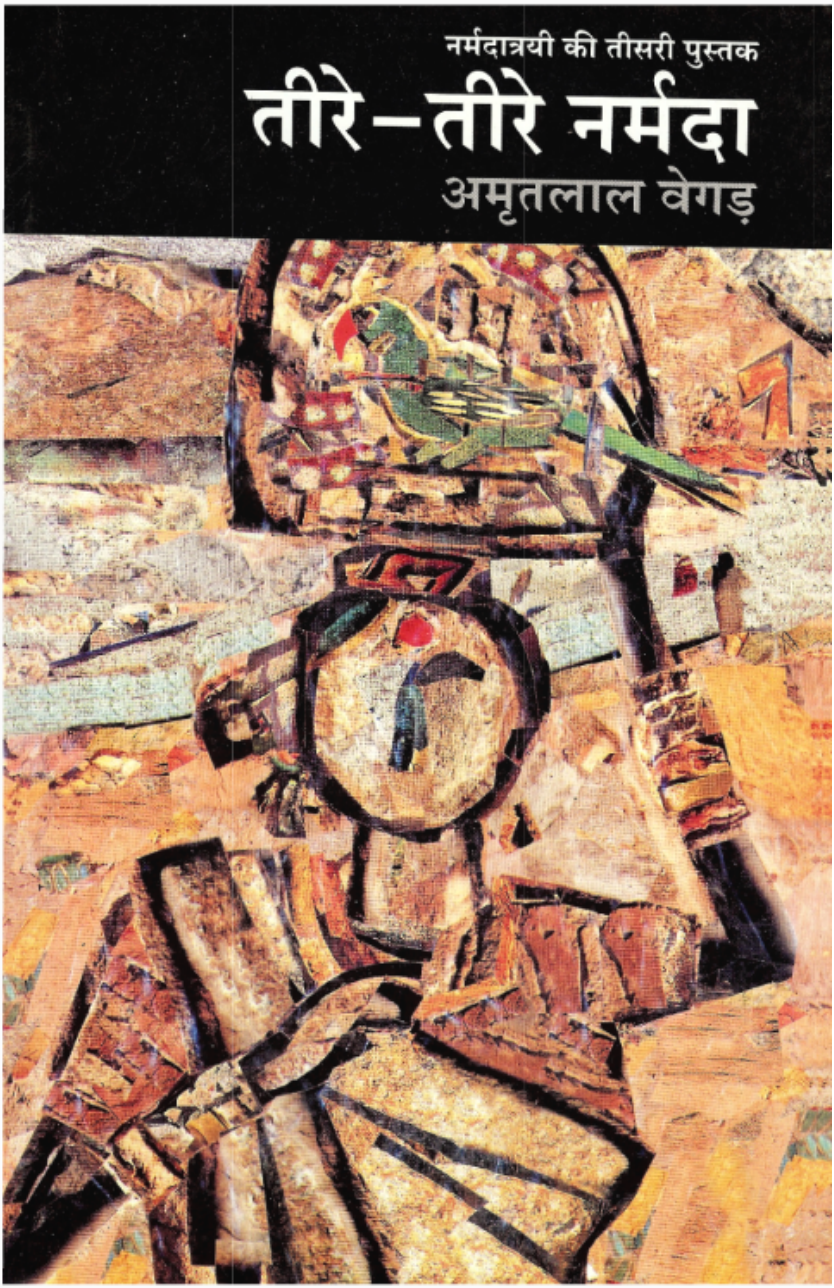

वंदन-अभिनंदन

सहजपुरी का संन्यासी, छिनगाँव की अनाम आदिवासी नारी, लछमनमड़वा की साध्वी, जिलहरी परिक्रमा करते एकाकी वृद्ध, परकम्मावासी दादू, तूवरखेड़ा की कृष्णकली, झलकनसंगम के मुखिया की बेटी, कतपोर का गुमान तथा कई अन्य।

सौन्दर्य की नदी नर्मदा

नेमावर की नानी, नीलकंठ का जिंदा नरकंकाल, पथोड़ा का आधी रात का पागल, मांगरोल का परकम्मावासी, केतुघान की मौनीमाता, रामानंदी परकम्मावासी, केलकच के दो भाई, मार्कंडेय परिक्रमा करता वृद्ध, कातरखेड़ा का मानसिंह, चौबीस अवतार का आस्ट्रियन साधु तथा अन्य।

अमृत की नर्मदा

कन्हैयासंगम की भोली बहन, किंरगी की मुहती, पथरकुचा की रामकली, डिंडौरी की नीमाबाई, घूरपुर का लकड़हारा, बछवाड़ा का साहू परिवार, मैनपुरी का सोनूलाल धुर्वे, सिलपिड़ी का बैगा, डगौना का रामप्रसाद, डुडगाँव की राजेश्वरी, टाटरी का लाल बाबा तथा अन्य।

तीरे-तीरे नर्मदा

नर्मदा के बच्चो ! तुम्हें वंदन करता हूँ और तुम्हारे पाँव की धूल का चंदन करता हूँ।

प्रस्थान त्रिमूर्ति

पता नहीं कब और किसने नर्मदा की पहली परिक्रमा की और एक परम्परा

का सूत्रपात किया। इस प्रकार परिक्रमा अस्तित्व में आई और आज भी चल रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज को इसकी आवश्यकता है। वह निरर्थक नहीं। निरर्थकता सदियों तक जारी नहीं रह सकती।

शुरू के वर्षों में इसमें कितना जोखिम रहा होगा। घने जंगल, हिंसक पशु, कठिन डगर। यह खतरा अब कम हो गया है लेकिन आज भी वह खतरों और मुश्किलों से खाली नहीं। 3 वर्ष, 3 महीने और 13 दिन तक भिक्षा माँगते हुए नंगे पाँव चलना कोई कम तपस्या नहीं। यह अभियान आस्था, अपरिग्रह, धीरज और कष्ट झेलने की अपार क्षमता की माँग करता है। परिवार का मोह छोड़ना पड़ता है और मृत्यु के वरण के लिए भी तैयार रहना पड़ता है। और परकम्मावासी यह अत्यन्त कठिन यात्रा करता है अपने मन की खुशी के लिए, अपनी आत्मा की संतुष्टि के लिए। परिक्रमा के लिए उसे पदक नहीं दिया जाएगा, न ही सम्मानित किया जाएगा। फिर भी हर साल हजारों श्रद्धालु बड़े ही आनंद के साथ यह कठिन कार्य करते हैं। कई तो दो-दो, तीन-तीन बार करते हैं।

मुझे लगता है कि इसके पीछे पुण्य अर्जित करने की धार्मिक भावना के साथ 'चरैवेति' की आध्यात्मिक भावना भी है। 'चरैवेति' की भावना मनुष्य को दुर्गम से दुर्गम प्रदेश तक ले जाती है, चाहे वह तीर्थाटन के रूप में हो (इसमें देव दर्शन के निमित्त देश-दर्शन होता है), पर्यटन के रूप में हो या पर्वतारोहण के रूप में। ये यात्राएँ रहस्यमय ढंग से हमारे जीवन को समृद्ध करती हैं। निस्संदेह इसमें जोखिम है, पर मनुष्य जोखिम उठाना चाहता है। अपने सामर्थ्य को आँकना चाहता है। अपने को आजमाना चाहता है। भ्रमण-लालसा सदैव रही है और सदैव रहेगी। परिक्रमा उसी का पावन प्रकार है।

जब तक इस विशाल देश को उसकी समूची खूबियों के साथ हम नहीं देखेंगे, तब तक उसके प्रति हमारा प्रेम शाब्दिक ही होगा। परिक्रमा, तीर्थाटन तथा पर्यटन से हम अपने देश से जुड़ते हैं। प्रकृति-प्रेम देश-प्रेम की पहली सीढ़ी है।

नर्मदा की पदयात्राएँ मैंने 1977 में शुरू कीं और 1999 में पूरी परिक्रमा कर ली एक साथ नहीं, थोड़ा-थोड़ा करके चला। इसकी दो पुस्तकें आईं- सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतस्य नर्मदा। इनमें पूरी परिक्रमा का वृत्तांत है।

किन्तु मैं नर्मदा सम्मोहन का शिकार हो चुका था। नर्मदा मेरे लिए ऐसी किताब है कि जिसे बार-बार पढ़ने का मन करता है। इसलिए 3 अक्टूबर 2002 के दिन पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश करते ही मैंने ये पदयात्राएँ पुनः शुरू कर दीं। कुछेक सहायक नदियों की पदयात्राएँ भी कीं। इन्हीं यात्राओं का वृत्तांत है इस पुस्तक में। सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतस्य नर्मदा, तीरे-तीरे नर्मदा यह मेरी प्रस्थानत्रयी है।

प्रथम पदयात्रा 1977 में और अंतिम 2009 में हुई। इन 33 वर्षों के दौरान मैं 4000 किलोमीटर से अधिक चला। (यह मेरी गाढ़ी कमाई है।) प्रथम यात्रा के समय मैं 50 का था और अंतिम यात्रा के साथ 82 का। आज जब उन यात्राओं के बारे में सोचता हूँ, तो खुद हैरान हो उठता हूँ कि इतनी सारी यात्राएँ मैंने कैसे कर लीं। मैं कोई हट्टा-कट्टा सूरमा नहीं, सूखे डंठल सा शरीर है मेरा। फिर भी इतना चला। लेकिन अब और अधिक यात्राएँ करना मेरे लिए संभव नहीं। इस शरीर से मुझे ज्यादा की माँग नहीं करनी चाहिए। आखिर यह सिलसिला कहीं तो खत्म होना चाहिए। अपना काम मैं अब युवकों को सौंपता हूँ।

नई पीढ़ी तैयार हो चुकी है। ऐसे कई लोग हैं जो इन पुस्तकों को पढ़कर नर्मदा की खंड यात्राएँ कर रहे हैं। (नर्मदा को संक्षिप्त यात्रा भी स्वीकार्य है।) नर्मदा पदयात्राओं में नई-नई कोपलें फूट रही हैं। अब मुरझाए हुए पत्ते को झड़ जाना चाहिए।

अमृतलाल वेगड़
1836, राइट टाउन
जबलपुर-2, म.प्र.

याद नहीं आता कौन मुझे वह छोटी-सी किताब दे गया था, जिनके पन्नों पर कहीं-कहीं रेखाचित्र भी थे, किन्तु जो चीज आज भी याद रह गई है, वह था पुस्तक का प्रांजल, विनोद-भरा, स्वच्छ, प्रवाह में बहता गद्य, मानो जिस नदी का जादूभरा विवरण उसमें था, स्वयं उसका स्पर्श लेखक की कलम को एक अजीब सी प्रभुता प्रदान कर गया हो। अमृतलाल वेगड़ से गहरी ईर्ष्या होती है कि उन्होंने एक नदी की यात्रा में भारत की कितनी छवियाँ, दृश्य, लोग एक समूची संस्कृति की रासलीला का अमृत रस छक लिया है। क्या हम वेगड़जी को नर्मदा से और नर्मदा को वेगड़जी से अलग करके देख सकते हैं?

यदि गणेशजी अपने माता-पिता के इर्द-गिर्द घूमकर धरती की परिक्रमा कर सकते हैं, तो क्या हम वेगड़जी की पुस्तक के पन्नों पर "चलते " हुए, घर की चौखट से बाहर कदम रखे बिना, नर्मदा मैया की परिक्रमा करने का पुण्य-लाभ नहीं उठा सकते? ('अमृतस्य नर्मदा' की प्रस्तावना में)- निर्मल वर्मा

यह कौन सी अदम्य प्रेरणा है जो निपट घरेलू स्वभाव के अमृतलाल को घर में स्थिर नहीं रहने देती, बार-बार घर से बाहर खींच लाती है? यह कोई शौकिया तफरीह नहीं, सरासर कष्ट- संकुल, पाँव-पैदल, आपदाओं को आमंत्रित करने वाला, भ्रमण से अधिक भटकना है। चित्र की साधना करते-करते अमृतलाल ने भाषा को किस प्रकार साध लिया, यह एक रहस्य है। अवश्य ही वे कोई भारी-भरकम भ्रमण-वृत्तांत लिखने नहीं बैठे; उनकी गायकी ध्रुपद की नहीं, लोकगीति की है जिसमें मनुज के सुख-दुख, चढ़ाव-उतार, धूप-छाँह कब आते और चले जाते हैं- आहट ही नहीं मिलती। यह सहज भाषा की सिद्धि है। उन्होंने जो कुछ देखा-सुना और जाना-बूझा, अतुलनीय है।

('सौंदर्य की नदी नर्मदा' की प्रस्तावना में) मोहनलाल वाजपेयी

ऐसा दुर्लभ और मणिकांचन संयोग भी कब और कहाँ जुटता है कि एक ही लेखक में भरा-पूरा आदर्श बोध भी हो और यथातथ्य यथार्थ बोध भी? उसमें प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने की, तन्मय होने की प्रतिभा भी हो और सटीक सजीव वर्णन सामर्थ्य भी। ऐसा लेखक, जो भाषा के साथ उतना ही सहज और निश्छल हो, जितना जनजीवन के साथ, जिसमें करुणा के साथ हास्योद्रेक क्षमता हो और श्रद्धा के साथ तटस्थ बौद्धिक विश्लेषणवृत्ति भी और ऐसा सुयोग भला कब-कब सधता है कि जीवन लीला और प्रकृति सौंदर्य के विस्तार और वैविध्य को आप शब्दों के साथ-साथ रेखाओं में भी बोलते सुन सकें? मेरा बस चले तो मैं इसे स्कूल के पाठ्यक्रम में लगा दूँ क्योंकि यह सौंदर्य का ही नहीं, संस्कृति का भी उत्तम पाठ है।

('सौंदर्य की नदी नर्मदा' की प्रस्तावना में) रमेश चंद्र शाह

रास्ते शुभ हों

12

वेगड़ जी के अन्तरतम में नर्मदा प्रवाहित हो रही है। जो नदी बाहर दिखाई देती है, उससे कहीं अधिक बड़ी और जीवंत नदी उनके भीतर है। ज्यों-ज्यों परिक्रमा आगे बढ़ती है, लोक-जीवन के अनेक रोचक आख्यान उद्घाटित होते रहते हैं और जो इसका महानायक है यानी नदी से सम्बद्ध जीवन-धारा का कथावाचक, वह अपनी भाषा के सौंदर्य से एक दूसरी ही नर्मदा की रचना कर देता है। यह यात्रा भी है और मानवीयता का पड़ाव भी, जहाँ नाना प्रकार के सीधे-सच्चे, निश्छल मनुष्यों की आवाजाही है। नर्मदा यहाँ मात्र एक नदी नहीं बल्कि समस्त चर-अचर के होने का प्रतीक बन गई है।

वेगड़जी को पढ़ने के बाद नर्मदा को देखने का ढब बदल जाएगा। यह किसी भी लेखक के लिए उसकी सर्वोत्तम उपलब्धि है कि वह भावक पाठक को उसकी दृष्टि से देखने के लिए विवश कर दे। एक नदी को अपने अन्तरतम में उतारकर भाषा को साधना एक दुर्लभ कलाकौशल है।

ऋतुराज जयपुर

अमृतलाल वेगड़ दशकों पहले मेरे प्रिय बने, बिना मिले ही। श्रद्धा के केन्द्र। उनका नर्मदा यात्रा वृत्तांत मन को छूता है। उनकी शैली और भाषा अद्भुत

है। वे मन को मथते हैं। भावों को उद्वेलित करते हैं। नर्मदा का सौंदर्य सिर्फ नर्मदा का नहीं है। भारत की अस्मिता से जुड़ा, भारत के अध्यात्म संसार का हिस्सा है। उस भारतीय आध्यात्मिक संपदा को निरखने-परखने का काम तो अकेले वेगड़जी ने ही किया है। यह काम उन्होंने बार-बार किया है। युवा उम्र में, अधेड़ उम्र में और अब चौथेपन में। वे चिरयात्री हैं। 82 वर्ष की उम्र में सपत्नीक नर्मदा पदयात्रा। वेगड़जी का जीवन धन्य है। उनके लिए नहीं, हमारे समाज के लिए। नर्मदा ने उन्हें वह ऊर्जा और मनोबल दिया है कि वह एक जीवंत इतिहास बन जाएँ।

उन्हें पढ़ते पाठक का निजत्व खत्म होता है, वह विराट से जुड़ता है। सृष्टि के पावन तत्त्वों का स्पर्श करता है। वेगड़जी के यात्रा-वृत्तांतों ने नर्मदा-दर्शन का सुख स्थायी बना दिया है। जब-जब नर्मदा-दर्शन की कशिश हो, वेगड़जी के संस्मरणों को पढ़ता हूँ। बार-बार। लगातार। क्योंकि ये महज संस्मरण नहीं, मनुष्य के मन को सृष्टि, प्रकृति और मानवीय गुणों से जोड़ने के सेतु हैं।

- हरिवंश राँची

13

अमृतलाल वेगड़ उन कलाकारों में अग्रणी हैं जिन्होंने अपनी पूरी कला साधना को एक बड़े लक्ष्य में लगा रखा है। वेगड़ की कला एक भरी-भूरी संस्कृति का दस्तावेज बनाती है। इसके पीछे उनकी वर्षों की अथक साधना है। वेगड़ की कलायात्रा केवल सृजन ही नहीं रह जाती वरन् एक ऐसा पवित्र उद्यम बन जाती है जिसमें एक पूरी संस्कृति को बचा लेने का पवित्र संकल्प निहित है। यह काम स्वयं वेगड़ के लिए जितना

आहह्लादकारी है, उतना ही भारतीय संस्कृति के लिए दस्तावेजी महत्त्व का है। एक समय आएगा जब वेगड़ की कृतियाँ यह बताएँगी कि एक नर्मदा नदी हुआ करती थी जिसकी एक भरी-पूरी संस्कृति थी। वेगड़ की समूची कला साधना नर्मदा की एक पवित्र परिक्रमा है और इस तरह वसुधा के प्रति एक हार्दिक भावांजलि; जिसने हमें जीवन दिया है और जिसे बचाकर ही हम कृतकार्य हो सकेंगे।

ज्योतिष जोशी नई दिल्ली

सूर के लिए जैसे कृष्ण, तुलसी के लिए राम, मीरा के लिए नटनागर, अमृतलाल वेगड़ के लिए वैसी ही नर्मदा। वेगड़ को पढ़ते हुए हम यह भूल ही जाते हैं कि यात्रा-वृत्तान्त पढ़ रहे हैं। नर्मदा अब वेगड़ के लिए ही नहीं, हमारे लिए भी आँखिन देखी हो गई है। यह उनकी लेखनी की ही ताकत है।

नर्मदा में पानी नहीं अमृत बहता है। वेगड़जी ने जैसी अभिव्यक्ति दी है, उससे हमारी हिन्दी भाषा भी अमृतमयी हो उठी है।

-विजय बहादुर सिंह भोपाल

अमृत-कान्ता का यह पद-पर्यटन क्या है अनंत गीतों के सिवा, असंख्य शब्द-छंदों के सिवा, भाषा की कुलबुली कमनीयता के सिवा और एक नदी की धारा में प्रवहमान एक समृद्ध संस्कृति की प्राणगाथा के सिवा! वे गुजराती भाषी हैं, लेकिन हिन्दी के श्रेष्ठ यात्रा-गद्यकार बनकर उभरे हैं। एक व्यक्ति जिसकी कवि, कथाकार, नाटककार किसी रूप में कोई पहचान नहीं है, वह केवल एक विधा को अपना कर ऐसा उत्कृष्ट रच

सकता है कि हमारे समय के श्रेष्ठतमों में से एक बन जाए।

रमेश दवे भोपाल

पिछले दिनों वेगड़जी का यात्रा-वृत्तांत पढ़ रहा था। स्कूटर सवारी का वर्णन यों किया है मानो रथ की सवारी कर रहे हों। बाँध लेते हैं वे अपने जादू में। दुख में मस्ती। वेगड़जी का यात्रा-साहित्य औरों से हटकर है। देश की दीनता को निस्पृहता से प्रस्तुत करना वेगड़जी की विशेषता है। हम चाहेंगे कि वेगड़जी इसी तरह शब्दामृत बाँटते रहें। वेगड़जी के कारण नर्मदा मैया को नए सिरे से जाना।

प्रकाश दुबे नागपुर

आपकी दुर्लभ गतिविधियों का पता तो हमें किसी न किसी प्रकार चलता ही रहता है। अपनी काया को आपने आत्मपरक ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। आपकी यात्राएँ नदियों को, विशेष रूप से नर्मदा को बार-बार हमारे जीवन से स्पंदित करती हैं। इस प्रकार आप बार-बार सभ्यता का मार्मिक अर्थ हमें बताते हैं। आपकी यात्राएँ मर्म का रोमांच हैं। लोगों ने भी आपको भारतीय भाषाओं में खूब पढ़ा है और अब विश्व भाषा में भी आप प्रकट हुए। काश हमारे यहाँ इस प्रकार का साहित्य विपुल होता। आप अकेले और निरंतर इस काम को कर रहे हैं। आप जो चेतना और रोमांस भर रहे हैं उसकी मन में गहरी सराहना है। आपको और कान्ताजी को सलाम।

ज्ञानरंजन जबलपुर

नर्मदा के सौंदर्य से अभिभूत अमृतलाल वेगड़ के गद्य का मैं कायल हूँ। वह

गद्य में कविता है। और ऐसी सहज-सरल प्रवहमान कविता है, मानो नर्मदा खुद उस गद्य में प्रवहमान हो। यह गद्य लौकिक जीवन में ऐसा रचा-बसा है, उसे ऐसा चित्रमय और जीवंत बनाता है कि वेगड़जी के साथ आप भी इस यात्रा में अनाहूत शामिल हो जाते हैं। हिंदी में ऐसा गद्य, नदी और उसके आसपास के जनजीवन का ऐसा आत्मीय वर्णन है कितना !

- विष्णु नागर नई दिल्ली

माँ नर्मदा के करोड़ों बेटे-बेटियाँ। इन करोड़ों में माँ का एक बेटा है हिन्दी-गुजराती का बेजोड़ साहित्यकार अमृतलाल वेगड़। यह बेटा अपनी सौभाग्यवती पत्नी कान्ता के साथ बार-बार ही नहीं बारम्बार नर्मदा की पदयात्राएँ करता है। इन परिक्रमाओं में न इस बेटे का और न इस सौभाग्यशाली बहू का बूढ़ा शरीर थकता है न रुकता है।

नर्मदा के दोनों तटों पर हजारों साधु-संन्यासी अपनी अपनी साधना-आराधना में अपनी जीवनचर्या जी रहे होंगे, किन्तु अकेले वेगड़ दम्पती ने उन सभी तपस्याओं के

समानान्तर अपनी कलम से एक बड़ी लकीर खींच दी। - बालकवि बैरागी नीमच

उपासना देवी-देवताओं की नहीं, बल्कि एक नदी के सौंदर्य की। अद्भुत। नदी की उपासना करते तो देखा है हम सब ने, परंतु उसकी पुत्रवत् आराधना एक दुर्लभपरिघटना है। अमृतलाल वेगड़ ऐसे ही पुत्र हैं, जिन्होने नर्मदा की अर्चना शब्दपुष्पों के जरिये की है। वेगड़ जी की पुस्तकें पढ़ कर मिखाइल शोलोखोव के अमर उपन्यास 'और चुपचाप डॉन बहती रही' की

याद आती है।

- विनयभूषण रांची

क्रम

1. मेरे सहयात्री 17
2. मानोट से कुटरई 22
3. कुटरई से छिनगाँव 30
4. छिनगाँव से ढाड़पाथर 38
5. ढाड़पाथर से अमरकंटक 45
6. अमरकंटक 53
7. अमरकंटक से डिंडौरी 60
8. ऐसे स्नेही साथी कहाँ! 70
9. डिंडौरी से सारसडोली 78
10. सारसडोली से महाराजपुर (मंडला) 87
11. जबलपुर से छोटी बरमान 97
12. छोटी बरमान से होशंगाबाद 107
13. होशंगाबाद से हंडिया 118

सहायक नदियाँ

14. बुढ़नेर : बूढ़ी नदी और बूढ़ा यात्री 126
15. बुढ़नेर : बूढ़ी नदी और बूढ़ा यात्री 145
16. बंजर : बंजर तो कान्हा की राधा है 160
17. बंजर : बंजर का उद्‌गम बंजारपुर 168
18. बंजर : बंजर मैया तुम्हें प्रणाम! 174
19. शक्कर : रिक्तकुंभ शक्कर 183

20. अलविदा नर्मदा 191
21. मोरी नरबदा मैया 200
22. परिशिष्ट : सातवें आसमान पर हूँ! 205

कंचन बरसे मेह 212

रेखांकन

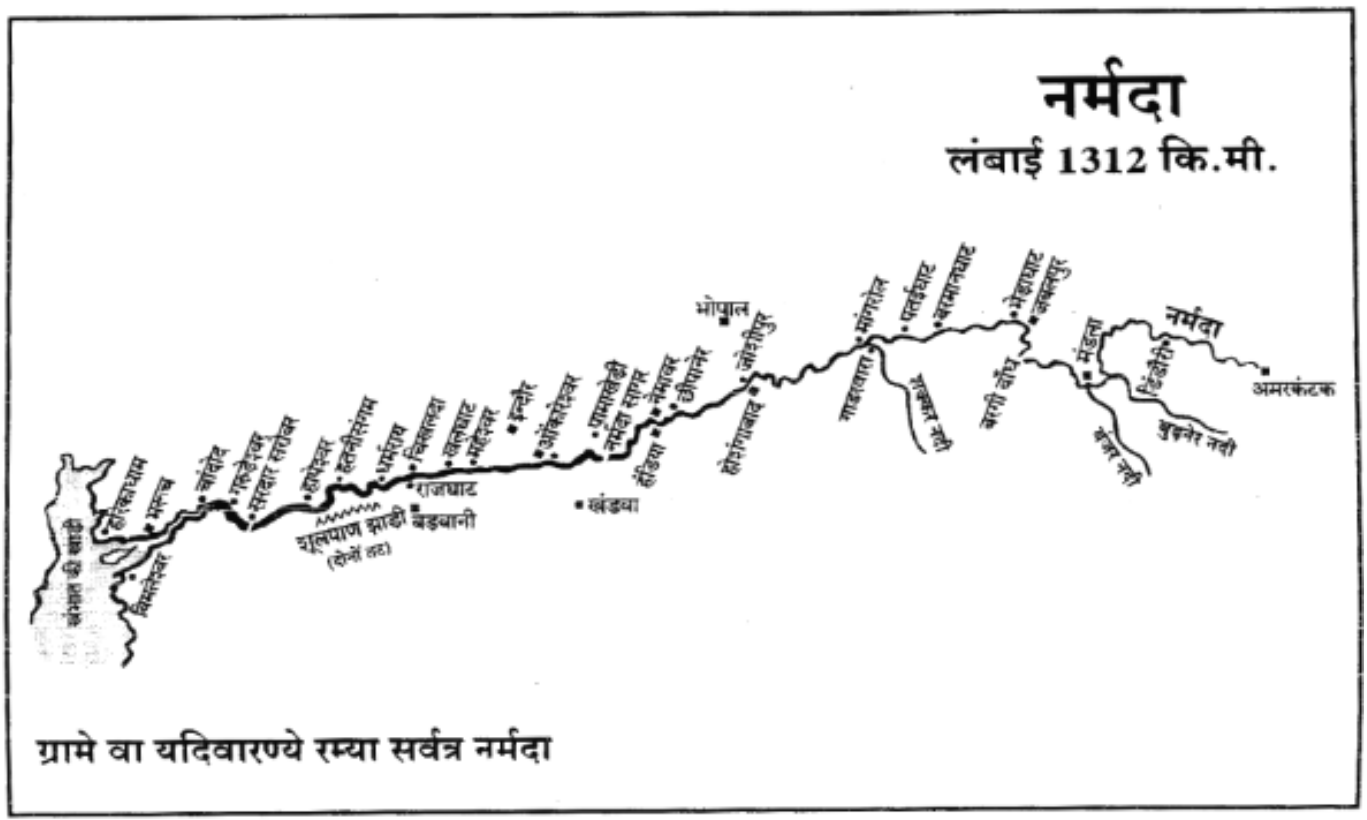

ग्रामे वा यदिवारण्ये रम्या सर्वत्र नर्मदा

1. मेरे सहयात्री

अगर वे वृद्ध मेरे सामने होते तो मैं उनके चरणों में अपना सिर रखता और उनके आशीर्वाद लेकर ही इस पुनरावृत्ति परिक्रमा पर निकलता।

1980 की बात है। मैं परिक्रमा में था, मंडला के निकट पहुँचने ही वाला था, तभी सामने से आते हुए एक वृद्ध दिखाई दिए। वेशभूषा से परकम्मावासी जान पड़ते थे। परकम्मावासी ही थे। मैंने पूछा, "आप उलटे कैसे चल रहे हैं?" उन्होंने कहा, "मेरी जिलहरी परिक्रमा है। इसमें समुद्र को नहीं लाँघते। इसमें दुहरी परिक्रमा होती है।"

मैं चकित। पचहत्तर वर्ष की उम्र के यह वृद्ध, बिना किसी संगी-साथी के कैसी कठिन परिक्रमा कर रहे थे। शूलपाण की झाड़ी में भीलों ने उन्हें लूट लिया था। चश्मा तक ले लिया था। तब से ऊँच-नीच का सही अन्दाज नहीं हो पाता। कई बार गिर चुके हैं। मैंने उनकी सहायता करनी चाही, पैसे देने चाहे, तो बोले "पैसे को मैं हाथ नहीं लगाता।" किसी तरह नहीं लिए।

मैं थोड़े दिनों के लिए चलता हूँ तो पैसे रखता हूँ, राशन रखता है और साथ में एक विश्वस्त साथी भी रहता है। अकेले चलने का साहस कभी नहीं कर सका। और ये वृद्ध अकेले, एकाकी, निस्संग, अकिंचन चल रहे थे। पता नहीं कब घर पहुँचेंगे, पहुँचेंगे भी या नहीं क्या पता! फिर भी अपनी मस्ती में चल रहे हैं।

उसी दिन मैंने निश्चय किया था कि अगर मैं 75 का होऊँगा तो थोड़ी ही सही, नर्मदा पदयात्रा जरूर करूँगा। लेकिन 75 की उम्र बहुत दूर थी, 22 बरस दूर। वहाँ तक पहुँच सकूँ अथवा न भी पहुँच पाऊँ !

परन्तु 3 अक्टूबर 2002 के दिन पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर गया। नर्मदा की प्रथम पदयात्रा 7 अक्टूबर 1977 के दिन शुरू की थी। उसे 7 अक्टूबर को 25 वर्ष पूरे हो जाएँगे। नर्मदा पदयात्रा की रजत जयन्ती को तो नर्मदा तट की पदयात्रा करके ही मनाया जा सकता है। मेरे चिरपोषित स्वप्न को साकार करने की घड़ी आखिर आ गई है।

यह तिथि इस यात्रा की निमित्त भले ही बनी हो, असली कारण यह है कि नर्मदा-सौन्दर्य के घेरे से मैं बाहर निकलना ही नहीं चाहता। बार-बार वहीं लौट जाना चाहता हूँ- जहाज के पंछी की तरह। मैं नर्मदा की पूरी परिक्रमा कर चुका हूँ। दोनों तटों को मिलाकर 2624 कि.मी. पैदल चल चुका हूँ। नर्मदा पदयात्री के रूप में यह मेरा पुनर्जन्म होगा।

1977 में जबलपुर से मंडला तक चला था। इस बार भी वहीं से चलता लेकिन बरगी बाँध के कारण 'अत्र लुप्ता नर्मदा' वाली स्थिति बन गई है। न वे गाँव रहे, न वे पगडंडियाँ, न वे किनारे। इसके बाद 1978 में मैं मंडला से अमरकंटक तक चला था। तय हुआ कि वहीं से चला जाए।

कान्ता ने पहले से ही कह रखा था कि मैं साथ चलूँगी। हमारे भरे पूरे परिवार से उसे कितना लगाव है, विशेष रूप से छह महीने के पौत्र वंशज से। वह तो उसके गले का हार है। किन्तु यह सारा सुख छोड़कर वह मेरे साथ नर्मदा की ऊबड़-खाबड़ पगडण्डियों पर चलेगी, धूप में झुलसेगी और

ठण्ड में ठिठुरेगी। अशोक तिवारी मेरे साथ नारेश्वर से लेकर चौबीस अवतार तक की चालीस दिन लम्बी पदयात्रा में चल चुका है। मेरे बेटे का सहपाठी रहा। यात्रा में मेरी वैसी ही देखभाल करता था, जैसी एक पुत्र अपने पिता की करता है। जब वह भी चलने को तैयार हो गया ती मैं पूरी तरह से निश्चिन्त हो गया।

साथ चलने के लिए मुम्बई से चार लोग आ रहे हैं। 64 वर्षीय रमेश शाह, 61 वर्षीय पत्नी हंसा, 36 वर्षीय पुत्र संजय और इस परिवार की अभिन मित्र 56

मेरे सहयात्री
19

वर्षीय गार्गी देसाई। न वे मुझे जानते हैं, न मैं उन्हें। उन्होंने मेरी दोनों गुजराती पुस्तकें पढ़ी हैं, बस इसी से आ रहे हैं। दिल्ली से अपोलो हॉस्पिटल के डॉ. अखिल मिश्र भी आएँगे। वे कवि भवानीप्रसाद मिश्र के भतीजे हैं। वे मेरी पुस्तकें पढ़कर ही आ रहे हैं। रमेशभाई और उनकी पत्नी कोई 20 बरस तक फ्रान्स, इंग्लैण्ड और अफ्रीका में रहे हैं। डॉ. अखिल सेमीनारों में विदेश जाते ही रहते हैं। ये सभी लोग नर्मदा की दूर-दराज की पगडण्डियों पर मेरे साथ चलेंगे।

कितना सुख मिलता है यह जानकर कि कोई दूसरा-सर्वथा अपरिचित, मुझ पर विश्वास करता है और मेरे साथ चलने का तैयार है। मुझे यह देखकर भी खुशी हो रही है कि नर्मदा-सौन्दर्य की गूँज दूर-दूर तक फैल रही है।

इस बार मेरा विश्वस्त साथी छोटू नहीं है। वह अपने गाँव चला गया है। उसकी जगह चलेगा गरीबा। नाम तो है सोहन, लेकिन उसकी बहन उसे गरीबा कहती है तो हम भी यही कहने लगे।

5 अक्टूबर 2002 को दोपहर दो बजे हम सभी बस से मंडला गए। वहाँ से बीस किलोमीटर दूर एक पहाड़ी पर स्थित गुरु-स्थान जाने के लिए जीप से निकले। रात हो गई थी। एक कच्ची सड़क पहाड़ी के ऊपर तक जाती है। इसका उपयोग कभी-कभार ही होता है इसलिए उस पर घास उग आई थी और सड़क मुश्किल से ही दिखाई देती थी। फिर भी जीपवाला हमें सही सलामत ऊपर तक ले आया।

मन्दिर के बरामदे में सोए। थोड़ी ही देर में खरटि शुरू हो गए। एक के बन्द होते ही दूसरे के शुरू हो जाते। खर्राटों की अन्त्याक्षरी ही समझिए। जुगलबन्दी भी हो जाती। एक महाशय तो खर्राटों का कीर्तिमान ही स्थापित करने पर तुले थे। इतना बता दूँ कि इस दौड़ में मैं भी था लेकिन कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली।

भोर वेला में नीचे के खेतों से उठते कुहरे को देर तक निहारता रहा। धूसर धुन्ध में कोहरे की झीनी चादर ओढ़े खेत कितने पावन लग रहे थे।

मुझे हमेशा ही लगा है कि प्रकृति के सौन्दर्य में एक पावन भाव होता है। मनुष्य द्वारा निर्मित सौन्दर्य में सदा ऐसा नहीं हो पाता। पावन होना तो दूर, कई बार

तो वह श्लील तक नहीं होता। बल्कि दिन पर दिन इस सौन्दर्य का मुखड़ा अश्लीलता की ओर होता जा रहा है। और हम और आप चूँ-चपड़ तक नहीं कर सकते, क्योंकि यह होता है कला के नाम पर !

फगनू रात में ही आ गया था। साठ बरस का है पर युवाओं जैसा बलिष्ठ और कद्दावर है। शरीर मजबूत और गठा हुआ है। अधिकांश दाँत गिर गए हैं इसलिए उम्र से अधिक बूढ़ा जान पड़ता है। वैसे मेरे भी सामने के दाँत नहीं हैं, पर हाल हो मैंने नये जड़वा लिए हैं। आजकल नकली दाँत दो प्रकार के होते हैं.. स्थायी भाववाले और संचारी भाववाले। मेरे स्थायी भाववाले हैं। संचारी भाववाले दाँतों को रात में हवेली खाली कर देनी पड़ती है।

यह वही फगनू है जो अंग्रेज परकम्मावासी मीरा (मेरिएटा मॅड्रल) के साथ यहाँ से अमरकंटक तक और वहाँ से डिंडौरी तक चला था। मीरा ने ही मुझसे कहा था कि फगनू को साथ ले जाइए। हमें दो सहायकों की आवश्यकता थी ही क्योंकि रमेशभाई और हंसाबहन सामान उठाकर नहीं चल सकते। इसलिए हमने फगनू के अलावा घनश्याम को भी साथ ले लिया। फगनू, घनश्याम और गरीबा-तीनों गोंड हैं।

सारा दिन उस पहाड़ी पर ही रहे। उसका लघु आकार उसे एक विशिष्ट जीवन्तता प्रदान करता था। यह पहाड़ी पेपरवेट जैसी लग रही थी। आसपास के खेत कहीं उड़ न जाएँ, इसलिए उनपर रखा पहाड़ी पेपरवेट !

रात का अँधेरा घिरते ही दिल्ली से डॉ. अखिल मिश्र आ गए। उन्हें लेकर आए हैं अरविन्द गुरु और उनकी पत्नी मंजरी। दोनों मंडला के कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक हैं। यह पूछने की धृष्टता मैंने नहीं की कि कौन सीनियर है और कौन जूनियर है। (कभी-कभी इसमें बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। एक बार मैं अपने पड़ोसी वर्माजी के घर गया था। पति-पत्नी दोनों वकील हैं। श्रीमती वर्मा से पूछा, "वर्माजी नहीं हैं?" उन्होंने कहा, "वे कोर्ट गए हैं।" पूछा, "आप नहीं गई?" उन्होंने कहा," आज मेरी छुट्टी है।" मैंने फिर पूछा, "उनकी नहीं है?" उन्होंने मृदु हास्य के साथ कहा, " वे लोअर कोर्ट में हैं, मैं तो हाईकोर्ट में हूँ!") दोनों ने पैर छुए। मंजरी ने कहा, "जबसे आपकी पुस्तकें पढ़ी हैं, तभी से मन में था कि

मिलते ही आपके चरण स्पर्श करूँगी।" और भी लोग ऐसा करते हैं। मैं बाधा नहीं पहुँचाता। एक तो वृद्धावस्था के कारण पूजनीयता का बोध यों ही घुस पड़ता है, दूसरे दरअसल चरणस्पर्श वे मेरा नहीं, नर्मदा का कर रहे हैं। मेरी हैसियत तो एक चिट्ठीरसा की है।

7 अक्टूबर 2002 को सुबह-सवेरे गुरुस्थान से नीचे उतरे और तीन किलोमीटर दूर नर्मदा पर बने मानोट के पुल के लिए चल पड़े।

दो महीने पहले पैर की एड़ी पर घर का ही दरवाजा ऐसा धड़ाम से लगा था कि दस दिन तक घर से बाहर नहीं जा सका था। परिक्रमा में कहीं गिर-गिरा गया और हड्डी दरक गई या टूट गई तो जो दुर्गत होगी सो होगी, जगहँसाई अलग होगी। लोग कहेंगे, इस बुड्ढे की तो मति ही मारी गई है।

अब पड़े रहो प्लास्टर में साल भर तक। किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने इस विचार को झिड़क दिया। यह समस्या मेरी नहीं, नर्मदा की है। इसकी चिन्ता मैं क्यों करूँ!

वह। नर्मदा को देखते ही हृदय छलक उठा। कैसा माधुर्य बिखेरती बह रही है

हमें विदा देने के लिए मंडला से नरेशचन्द्र अग्रवाल अपने पूरे परिवार के साथ आए थे और हमारे लिए ढेर सारी खाद्य सामग्री लाए थे। इनसे भी पुस्तकों के कारण ही परिचय हुआ था।

घाट पर सभी ने स्नान किया। द्वीप प्रवाहित किए और 'नर्मदे हर !' के घोष के साथ चल पड़े। मैं हौले-से बोला, "नर्मदा! तुम दूसरों के लिए भले ही नर्मदा हो, मेरे लिए तो मोक्षदा हो!"

2. मानोट से कुटरई

मौसम साफ था और हवा शरद का स्पर्श लिए थी। ऊँचे पेड़ों से धूप छन-छनकर आ रही थी। मेरे साथियों का उत्साह उफान पर था। उन्हें यहाँ मनचाहा एकान्त और शान्ति प्राप्त हो रही थी। कुछ दिन पूर्व ही वे

महानगरों की गहमागहमी, शोरगुल और आपाधापी में डूबे हुए थे। अब वे यहाँ वनों, पहाड़ों और हरे-भरे खेतों को निहार रहे थे, यहाँ की निस्तब्धता को आत्मसात कर रहे थे। और नदी से लगी ऊबड़-खाबड़, टेढ़ी-मेढ़ी खूबसूरत पगडंडियों पर पाँव-पाँव चलने के सुख का तो कहना ही क्या! फिर हम इक्के-दुक्के भी तो नहीं, कोई बारह लोगों का हँसता चहकता. दल था हमारा। छोटी-मोटी शोभायात्रा ही समझिए।

हर क्षण दृश्य बदलता रहता था। हर क्षण कोई नया मोड़, कोई अप्रत्याशित चट्टानी कगार या नन्हे-मुन्ने प्रपात सामने आ जाते थे। नर्मदा अपनी अथक गतिशीलता से बह रही थी और अपनी सुषमा से हमें आश्चर्यचकित कर रही थी। समूची धरती सुन्दर सपने जैसी मोहक लग रही थी। अगर हम प्रकृति से दोस्ती का हाथ बढ़ाएँ, तो वह हमें कितना कुछ देने को तत्पर रहती है।

पाँवों में दर्द और कन्धों में ऐंठन लिए शाम को सँकरी पहुँचे। भूतपूर्व सरपंच फग्गन सिंह के घर रात रहे। थककर हम लोग तो पसर गए लेकिन महिलाएँ खाना बनाने में जुट गई। डॉ. मिश्र स्टेथेस्कोप और बहुत सारी दवाइयाँ लेकर आए हैं। ज्यों ही लोगों को पता चला कि हमारे दल में डॉक्टर भी हैं तो मरीजों की भीड़ लग गई। वे न केवल उन्हें देखते थे बल्कि दवाइयाँ भी देते थे। न होती तो लिख देते। और यह सब वे निःस्वार्थ सेवाभावना से प्रेरित होकर करते थे।

मानोट से कुटरई
23

नवरात्र का आज पहला दिन है। गुजरात में पूरे नवरात्र में गरबा की धूम

रहती है। चूँकि हमारे दल की तीनों महिलाएँ गुजराती हैं, इसलिए घर के खुले आँगन में उन्होंने गरबा शुरू कर दिया। थोड़ी देर तक तो घर की और पास-पड़ोस की लड़कियाँ इसे कौतूहल से देखती रहीं, फिर एक-एक करके वे भी शामिल हो गईं। बदले में गाँव की महिलाओं ने गीत संगीत का अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। सांस्कृतिक आदान-प्रदान !

सरपंच के भतीजे ने हमें एक संस्मरण सुनाया कोई दस बरस पहले की बात है। ठंड के दिन थे। हम लोग आग ताप रहे थे। तभी एक बाबा नदी में नहाकर आया। नहाते समय पाँच रुपए का नोट भीग गया था तो वह उसे सुखाने लगा। अचानक वह हाथ से गिर गया। लोग परेशान हो उठे, किसी ने झपटकर निकाल लिया। नोट जला तो नहीं था पर काला पड़ गया था। लोगों की व्यग्रता देखकर वह बोला, "इसमें परेशान होने की क्या बात है, नोट नया आ जाएगा।" और वाकई उसके हाथ में नया नोट आ गया। फिर बोला, "मुझे नोट दोगुने करने की विद्या आती है।" लोग नोट देते तो वह राख की ढेरी में दबा देता, लोगों से आँख बन्द करने को कहता, मन्त्र पढ़ता और सबके सामने राख में से दोगुने नोट निकाल देता ! ताऊजी पाँच हजार के नोट ले आए, तो उसने कहा, "नहीं भाई, अब बड़ी रकम ले आओ तभी मैं अपनी विद्या दिखाऊँगा।" यहाँ-वहाँ से उधार लेकर ताऊजी ने उसे बीस हजार रुपए दिए। उसने वे राख में दबा दिए, आँखें बन्द करने को कहा और मन्त्र पढ़ने लगा। काफी देर बाद आँखें खोलने के लिए कहा और राख में से नोट निकाले। लेकिन वे बिना रंग के सादे नोट थे। उमने कहा, "एक जड़ी की कमी के कारण नोटों में रंग नहीं आ रहा। उसे लेने के लिए मुझे जंगल जाना होगा। तुममें से कोई एक मेरे साथ चलो।" एक युवक को उसके साथ कर दिया गया। जाते समय कहता गया, "आँखें बन्द करके बैठे रहना, नहीं तो मेरा मन्त्र काम नहीं करेगा।" कई घण्टों के

बाद भी जब वह नहीं आया तो लोगों को शक हुआ। आँखें खोलकर देरी को कुरेदा तो वहाँ कुछ भी नहीं था। कुछ सादे नोट जरूर थे। वे नोटों की फोटोकॉपी थे। साथ वाले युवक को झांसा देकर वह भाग गया। उधारी चुकाने में ताऊजी का खेत बिक गया।

24
तीरे-तीरे नर्मदा

कभी-कभी भाग्य लोगों को कैसा तोड़-मरोड़ कर रख देता है। ग्रामीणों के अजान का फायदा उठाने वाले धृतों की कमी नहीं। न केवल गाँवों में ऐसा होता है: शहरों में भी, शहरों की सड़कों पर, बाजारों में, रेलगाड़ियों में, फ्लैटों में कौन सी जगह धूतों के चंगुल से बच सकी है। और यह सिलसिला जारी रहेगा। जहाँ लालची होंगे वहाँ धूर्त होंगे ही क्या गाँव, क्या शहर।

सुबह हमारा कारवाँ दुपटासंगम के लिए बढ़ चला। डॉ. मिश्र का एक नौजवान मरीज उनसे इतना प्रभावित हुआ था कि अपने एक साथी को लेकर आगे का रास्ता दिखाने के लिए हम लोगों के साथ चला।

नदी के दोनों तटों पर हरियाली ओढ़े वन थे। पगडंडी बहुत पश्किन्न थी। कई जगह एक ओर ऊँची तीखी चट्टानी कगार रहती और दूसरी ओर नर्मदा। इनके बीच की सँकरी और जोखिमभरी पगडंडी से दब सिकुड़कर ही आगे जाया जा सकता था। हमारी मुश्किल तब और बढ़ जाती जब कगार से रिसते पानी के कारण पत्थरों पर काई जम जाती और पैर फिसलने लगते। रमेशभाई और हंसाबहन विलम्बित यात्री की तरह पीछे

रह जाते।

सामने का वनाच्छादित तट काफी पास आ गया। लगता था हम जंगल के जबड़े में घुस आए हैं। यहाँ एक जगह सभी ने स्नान किया। महिलाएँ मुँह अँधेरे ही स्नान कर लेती हैं. लेकिन यहाँ उन्होंने दोबारा स्नान किया। हमारे देश की महिलाएँ बाहर खुले में इस तरह स्नान कर सकती हैं कि अपने तन का एक भी अंग दिखने नहीं देतीं। अच्छे गद्य में भी यही बात होती है। अपने भीतर की कविता को वह दिखने नहीं देता।

दोपहर के खाने के लिए यह ठीक जगह थी तो आग जलाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी की गई। नदी तट के ऊँचे छतनार वृक्षों के तले हमने पकाया खाया। यह था असली वनभोज !

जारंगा और बिलगड़ा होते हुए आगे बढ़े। डाक्टर मिश्र मेरे साथ थे। वे जब स्वीकृति देते हैं, उसके बाद ही गुर्दे का प्रत्यारोपण होता है। उन्होंने कहा, "शरीर उस गुर्दे को सहज रूप से ग्वीकार करता है जो स्नेहपूर्वक, खुशी-खुशी दिया जाता

है। पैसे के लालच में या मजबूरी में दिये गए गुर्दे को शरीर उतनी सहजता से स्वीकार नहीं करता। मानो शरीर यह जानता हो कि अपना कौन है और पराया कौन है।"

दुपटासंगम में हमारे रहने की व्यवस्था गनपत के घर करके डाक्टर के मरीज वापस जाने लगे। अँधेरा हो चुका था, रास्ता खतरनाक था और इस बीहड़ में से उन्हें पूरे दस किलोमीटर जाना था। लेकिन वे मजे से चले जाएँगे तारों का उजाला जो था।

सवेरे चल दिए। नदी से लगी पगडंडी खतरनाक हो गई। एक जगह तो वह इतनी सँकरी ऊबड़-खाबड़ और फिसलनभरी हो गई कि रमेशभाई तो उस पर से जा ही नहीं सकते थे। उनके पैर के अँगूठे में फोड़ा निकल आया था और बेहद तकलीफ दे रहा था।

संयोग देखिए कि यहीं एक डोंगी मिल गई और समस्या हल हो गई।

तपती तिपहरिया में चकदेही पहुँचे। उस दिन वहाँ साप्ताहिक बाजार था। जबलपुर से यहाँ बस भी आती है। सुबह की बस से रमेशभाई और हंसाबहन जबलपुर चले जाएँगे।

जिस कुटी में हम ठहरे थे, वह गाँव से दूर नर्मदा-तट पर थी। सामने तट से अनेक ग्रामीण नर्मदा को पैदल पार करते हुए लगातार आ रहे थे। आज बाजार जो था। शाम होते-होते मेरे मित्र प्रेमदास शर्मा हम लोगों की खोज खबर लेने सुदूर दिल्ली से आए। एक बार पदयात्रा में साथ भी चले थे। हम लोगों के लिए ढेर सारी खाद्य सामग्री ले आए थे। रात हम लोगों के साथ रहेंगे, सबेरे खापा तक साथ चलेंगे, फिर अपनी जीप से लौट जाएँगे। हम लोगों ने उनकी जीप में रमेशभाई और हंसाबहन को जबलपुर भेजने का निर्णय लिया। उन्हें छोड़ने संजय जाएगा। मध्य रात्रि तक तो जीप वापस भी आ जाएगी।

जाने से पहले रमेशभाई मुझसे गले मिले। उनकी आँखें छलछला आई। मेरे हाथों को कसकर दबाया। काँपती हुई आवाज में मैं इतना ही बोल सका, "आप लोगों ने मुझपर कितना भरोसा किया।"

26 तीरे-तीरे नर्मदा

रमेशभाई हर बात के लिए हंसाबहन पर निर्भर रहते थे। जहाँ पगडंडी खतरनाक होती, हंसाबहन उनका हाथ पकड़कर उन्हें सहारा देतीं और बड़ी सावधानी से उन्हें वह जगह पार करा देतीं। एक पल के लिए भी उनका साथ नहीं छोड़ती थीं। हम उन दोनों के प्रेम और समर्पण को देखकर द्रवित हुए।

सवेरे चले तो प्रेमदास खापा तक साथ चले। वहाँ की पाठशाला में कोई उत्सव था। शिक्षक और छात्र एकत्र हुए थे। मैंने उन्हें अपने बारे में बताया और चौबीस बरस पहले जब यहाँ से निकला था, उसके बारे में भी बताया। उनके आग्रह पर अपनी पुस्तक 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' में से संबंधित अंश का पाठ भी किया। मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि खापा में जिस लुहार के घर मैं रात रहा था, वह अब नहीं रहा।

तभी एक शिक्षक ने बड़े ही विनीत भाव से कहा कि आज के कार्यक्रम के मुख्य अतिथि महोदय किसी कारण से नहीं आ पाएँगे। क्या करें, समझ में नहीं आ रहा। मैंने कहा कि आप जरा भी चिन्ता न करें। सुदूर दिल्ली से आए मेरे मित्र और मेजर जनरल रह चुके प्रेमदास शर्मा से बढ़कर मुख्य अतिथि हो ही नहीं सकता। शिक्षकों के आग्रह पर प्रेमदास को यह आसन ग्रहण करना पड़ा। स्वाभाविक ही उनके परिचय का दायित्व मुझे सौंपा

गया। 'बहुमुखी प्रतिभा के धनी, शिक्षाविद्, संवेदनशील, मृदुभाषी, खुशमिजाज, मिलनसार' आदि जितने भी विशेषण मेरी पकड़ में आए, उनसे मैंने अपने बालबन्धु को विभूषित किया, जो सच भी थे। (शाला-जीवन में वे बाँके अभिनेता भी रहे।) इसके बाद उनका भाषण शुरू हुआ। किन्तु जब उनका भाषण, जो निस्सन्देह बहुत ओजस्वी था, हम लोगों को अनंत लगने लगा, तो उन्हें वहीं बोलता छोड़कर हम लोग आगे बढ़ गए।

मेरा विचार है कि मुख्य अतिथियों और अध्यक्षों को भले ही वाहन पर लाया जाए परन्तु जाते समय उन्हें कोई वाहन उपलब्ध न कराया जाए, पैदल जाने के लिए छोड़ दिया जाए। तभी ये धुरन्धर लम्बे-लम्बे अछोर भाषण देने से बाज आएँगे। किन्तु अगर वे अपने ही वाहन में आएँ, जैसा कि प्रेमदास यहाँ आए थे, तो आप क्या कीजिएगा!

पगडंडी के दोनों ओर खिले जंगली फूलों की शोभा देखते हुए आगे बढ़े।

गानोट से कुटरई
27

शाम तक फड़कीघाट पहुँच गए। जिस कुटी में हमारा रैनबसेरा था, वह नर्मदा की खड़ी कगार पर एकान्त में थी। वहाँ चार-पाँच बाबा लाउडस्पीकर लगाकर चौपट सुर में गा रहे थे। उनका कार्यक्रम देर रात तक चलेगा और हमें लाउडस्पीकर की ऊँची घरघराहट में ही सोना पड़ेगा। जगह कम थी, दब सिकुड़कर ही सो सकते थे। मैं संजय के पास सोया था। वह जरा ज्यादा ही खरटि लेता है। सुबह गार्गी ने पूछा कि आप संजय के पास कैसे सो सके? तो मैंने कहा कि वह अगर लाउडस्पीकर के पड़ोस में सो सकता है तो मैं उसके पड़ोस में क्यों नहीं सो सकता! दरअसल हम

सभी लाउडस्पीकर का और उस संगीत सभा का कर्णभेदी शोर झेलने को मजबूर थे। इस शान्त मठ में तो छोटे ट्रांजिस्टर की आवाज भी शोर होती।

पर्वतों के बीच से बह रही नर्मदा ने यहाँ क्या ही नयनाभिराम दृश्य सँजोया है। इस पहाड़ी प्रदेश की पगडंडी में बेहद उतार-चढ़ाव हैं। नुकीले पत्थरों पर चलते समय गिर पड़ने का भय रहता है। एक जगह हाथ और पैरों के बल सरकते या रेंगते हुए उतरना पड़ा। महिलाएँ उतर गईं तो मैं भी किसी तरह लुढ़कते-पुढ़कते उतरा। आश्चर्य की बात यह थी कि महिलाओं ने खास्सर असुविधा का अनुभव नहीं किया। मानों उनमें कोई दैवी शक्ति आ गई हो!

इस नीरव निर्जन संसार में हम लोगों के सिवा और कोई नहीं। न किसी का स्वर सुनाई देता है, न किसी की पदचाप। गार्गी, संजय और अखिलेश हिमालय में खूब घूम चुके हैं। वे कहते हैं कि यहाँ जैसा निभूत एकान्त है, वैसा हिमालय में नहीं मिलेगा। वहाँ हर जगह पर्यटकों की गहमागहमी रहती है। यहाँ का पर्वतीय क्षेत्र एकान्तप्रेमियों के लिए वरदान है।

दोपहर तक मोहनबाबा की कुटी पहुँच गए। बड़ा ही मनोरम स्थान था। यहीं भोजन बनाने का कार्यक्रम बना। सभी पहले नहाने गए। नर्मदा तट पर एक नाई किसी की हजामत बना रहा था। तिवारी ने उससे कहा कि इसके बाद मेरी हजामत बना देना। उसने कहा, "हम हज्जाम नहीं दोस्त हैं, एक-दूसरे की हजामत बना रहे हैं। आप भी किसी को ले आइए, कैंची कंधा हम दे देंगे।"

अब तिवारी से भला कौन हजामत बनवाता !

पदयात्रा में में दाढ़ी नहीं बनाता। चार दिन के बाद दाढ़ी-मूँछ के सफेद बाल ऐसे लग रहे थे मानो मेरे चेहरे पर फफूँद लगी हो।

मोहन बाबा की कुटी में कंडे मिल गए तो फगनू और घनश्याम ने गाकड़ बनाए। महिलाओं ने दाल-सब्जी जरूर बनाई लेकिन आज के भोजन का प्रतिनिधि पकवान तो गाकड़ ही रहा।

तीसरे पहर चल दिए। यहाँ से हमें एक लम्बी और तीखी चढ़ाई चढ़नी पड़ी। कच्ची धूलभरी सड़क जरूर थी पर उस कँकरीली सड़क पर पैर फिसलते थे और बहुत सावधान होकर चलना पड़ता था।

पहाड़ी पर होने के कारण इसे टिकरा कुटरई कहते हैं। यहाँ रहने के लिए पाठशाला मिल गई। सामने ही दुर्गा प्रतिमा की स्थापना की गई है और मंच भी बनाया गया है। यहाँ रोज रामलीला होती है। आज ताड़का-अध होगा। गाँव के लड़के ही अपने कामचलाऊ साज-सामान के सहारे यह कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

रात में हमारे दल के सदस्यों ने भी इसका आनंद लिया। थोड़ी देर के लिए मैं भी गया। दर्शकों को विदूषक की बीहड़ हरकतों पर बड़ा मजा आ रहा था। जो राम बना था, वही दशरथ भी बना था। जो ऊँचा-पूरा लड़का ताड़का बना था, वही बीच-बीच में दानदाताओं के नामों की घोषणा भी करता था फलाँ की ओर से दो रुपए, अमुक की ओर से चार रुपए। तभी एक धमाका हुआ-मुंबई से आये मेहमानों की ओर से डेढ़ सौ रुपए। यद्यपि

यह पुरस्कार दिल्ली के डॉ. मिश्र ने दिया था, लेकिन ताड़का ने इसे मुंबईवालों के खाते में डाल दिया। डॉक्टर वहीं बैठे थे किन्तु उन्होंने भूल सुधार की कोई आवश्यकता नहीं समझी।

कार्यक्रम अभी आधे में ही था कि बिजली चली गई तो ताड़का का वध रह कर देना पड़ा। दूसरे दिन सुबह डॉक्टर ने इस कार्यक्रम का बेहद रोचक वर्णन सुनाया- एकदम मॅजे हुए साहित्यकार की तरह। डॉक्टर, गार्गी और संजय यहाँ से घर चले जाएँगे। उनका वापसी का रिजर्वेशन है। उनके साथ कान्ता भी जाएगी। उसे एक शादी में जाना है।

ये मेरे बेहद अच्छे साथी रहे। डॉक्टर मिश्र कभी फौज में कर्नल थे। दादा

बन चुके हैं पर आज भी युवा लगते हैं। बड़े ही जिन्दादिल और हँसमुख। चलने में हमेशा आगे रहते और बाद में आनेवालों का ताली बजाकर स्वागत करते। शाम को उनका सेवा-यज्ञ शुरू हो जाता। न जाने किस तरह वे हर मरीज के लिए समय निकाल लेते और दवाई भी देते। हमारे देश को ऐसे ही मानवतावादी चिकित्सकों की जरूरत है। डॉक्टर और संजय पहले दिन से ही अभिन्न हो गए थे। उनके बीच सहज मैत्री हो गई थी। दोनों बहुत अच्छे तैराक थे, एक घंटे से पहले पानी से नहीं निकलते थे। संजय 'आर्ट ऑफ लिविंग' को समर्पित है और पूरे देश में इसकी क्लास लेता है। छत्तीस का है फिर भी अविवाहित है। हम लोगों को इस बात की प्रतीक्षा है कि उसे किसी से प्रेम हो जाए और उसकी कुँआरी जिंदगी खत्म हो जाए। दुबली-पतली गार्गी में गजब की फुर्ती है। वह

तितली की तरह उड़ती रहती थी। हम लोग जब थककर निढाल हो जाते तो वह खाना बनाने के कार्य में जुट जाती। यही नहीं, दिन में कई बार वह हमें खाने के लिए कुछ न कुछ देती रहती। उसका हर काम बड़े ही व्यवस्थित ढंग से होता था।

ये सभी यहाँ से चले जाएँगे। ये वे लोग हैं जिन्हें एक सप्ताह पहले हम जानते तक न थे। पराए लोग थे लेकिन छह दिनों में ही कितने अपने हो गए थे। मुझे गुरुदेव के गीत की एक पंक्ति का स्मरण हो आया 'दूर के कोरिले निकट, पर के कोरिले भाई।' (दूर को पास ला दिया, पराए को भाई बना दिया।) यही तो नर्मदा कर रही है।

उनकी बस को आने में काफी देर थी इसलिए मैंने कान्ता को चोरी चोरी देखा और चल पड़ा।

3. कुटरई से छिनगाँव

"नर्मदे हर, मिट्टू, नर्मदे हर !"

जो भी मिलता, फगनू उससे 'नर्मदे हर !' जरूर करता। इस मामले में वह मनुष्य और पक्षी में भेद नहीं करता। एक गाँव में पिंजड़े के तोते से बोला, "नर्मदे हर, मिट्टू ! नर्मदे हर !" कद्दावर फगनू की आवाज स्त्रियों जैसी महीन है। जब वह 'न.. र्म..दे..ह..र !' शब्दो को खींचकर बोलता है, तब तो वह और भी महीन हो जाती है। हँसते समय तो उसकी आवाज महीन होते-होते गायब ही हो जाती है। लेकिन इसी समय फगनू का पोपला मुँह

बेहद प्यारा लगता है। गरीबा से उसकी अच्छी दोस्ती हो गई है। लाड़ से उसे भी मिट्टू क कहता है- चलो, मिट्टू !

फगनू की सबेरे की दिनचर्या तपस्वियों जैसी अनुशासनबद्ध है। चाहे जितनी भी ठंड हो, फगनू और घनश्याम अंधेरे में ही नहाकर आ जाते हैं। फगनू उघाड़े बदन रहता है। कच्छे के ऊपर तक गमछा रहता है, बस। नहाकर एक हाथ से दूसरे हाथ की हथेली पर गोपीचंदन घिसकर शरीर में जगह-जगह तिलक लगाता है। फिर पूजा करता है। घनश्याम न उघाड़े बदन रहता है, न बहुत सारे तिलक लगाता है। लेकिन थोड़ी देर के लिए पूजा वह भी करता है। तब वातावरण अगर की सुगंध से भर जाता है। दोनों पूरे परकम्मावासी जान पड़ते हैं। नंगे पाँव चलते हैं। गठीले शरीर वाला फगनू मजबूत हड्डी का बना है। उसके सीने का पंजर काफी बड़ा है और पेट की जगह बड़ा-सा गड्ढा है। दाँत नहीं हैं, दो खीसें भर हैं। खाने में अगर कड़ी चीज हो तो उसका खल-बट्टा हाजिर है- गिलास का खल और लाठी का बट्टा ! मूँगफली की लैया को इसी तरह कूटकर खा लेता है। उसके साथ

एक ही गड़बड़ी है- रात में उसे खाँसी उठती है, पर तंबाकू का ऐसा आदी हो चुका है कि उसे छोड़ नहीं पाता।

साधारण देहाती दिखाई देता फगनू अब हमारे, कुनबे का अंग है। अब हम उसे फगनू नहीं, फगनू दादा कहते हैं। इस इलाके का वह अच्छा जानकार है।

जिस बजरी वाली सड़क से हम लोग टिकरा कुटरई की चढ़ाई चढ़े थे, उसी से वापस उतरे, सिलगी पार की और कनेरी पहुँचे। वहाँ रहने की व्यवस्था तो हो गई पर जलावन की लकड़ियाँ नहीं मिल रही थीं। तभी फगनू बंदर की तरह एक पेड़ पर चढ़ गया और लकड़ियों का ढेर लगा दिया। हर पेड़ में कुछ न कुछ सूखी टहनियाँ रहती ही हैं। जिस त्वरा से वह पेड़ पर चढ़ गया था, उसे देखकर लगा कि उसने बुढ़ापे को धता बता दिया है। लेकिन घनश्याम तो फगनू से भी आगे है। एक दिन मैंने पूछा, "घनश्याम, तुम्हारी उम्र क्या है?"

"यही कोई साठ बरस।"

"क्या कह रहे हो?" फगनू ने कहा, "बासठ का तो मैं हूँ और तुम मुझसे बारह बरस बड़े हो।"

सुनकर हैरान रह गया। घनश्याम 74 का है। प्रायः मेरी उम्र का घनश्याम कितना चुस्त और फुरतीला है। वह फगनू जैसा कद्दावर तो नहीं, लेकिन चलने में जरा भी पीछे नहीं रहता। दोनों के पास सामान प्रायः कुछ नहीं।

सुबह आगे बढ़े। पगडंडी के दोनों ओर सिंदूरी रंग के छोटे-छोटे फूल बड़े मोहक लग रहे थे। फगनू ने कहा, "इन्हें रामफूल कहते हैं। बरमसिया भी कहते हैं, क्योंकि ये बारहों महीने रहते हैं। इनकी छड़ से छप्पर छाते हैं और बाड़ भी लगाते हैं।"

जैतपुरी में किसी घर से मुर्गे की बाँग सुनाई दी तो जवाब में फगनू बोला, "नर्मदे हर, मुर्गे ! नर्मदे हर !"

यहाँ एक घर से उसे दही मिला। दही बेहद खट्टा था, इसे तो वही खा सकता है। कहने लगा, "कल मही मिला था, आज दही, तो कल शायद घी मिले।"

कैसा प्रचंड आशावाद !

32 तीरे-तीरे नर्मदा

खेतों की हरियाली देखते ही बनती है। हरे रंग की बाढ़ सी आ गई है। सरसों का पीला ऐसा दमकता है कि उसके पास सोना भी बिछा दिया जाए तो मटमैला जान पड़ेगा।

मेरे हाथ में एक लाठी थमाते हुए फगनू ने कहा," आपको देने के लिए एक बाबा ने दी है। कहता था आप सभी के पास लाठी है, जिनके पास होनी चाहिए, उन्हीं बूढ़े दादा के पास नहीं है। इसे उन्हें दे देना।"

लाठी एकाध दिन ही मेरे पास रही, फिर अपने आप छूट गई।

हमने एक ग्रामीण से आगे का रास्ता पूछा। वह छाता लिए था। उसने छाते को दोनाली की तरह थामा और उसकी नोक से देर तक रास्ता समझाता रहा। उसने समझाया कम, उलझाया अधिक।

दूबा में एक घर के बाहर गली में बहुत सी स्त्रियाँ बैठीं थीं और घर के आँगन में बहुत सारे पुरुष आपस में गले मिल रहे थे। मैं समझा, नवरात्र का कोई अनुष्ठान होगा। पता चला कि दशगात्र का कार्यक्रम था। जिस ग्रामीण के घर यह भीड़ एकत्र हुई थी, उसने हमें बताया कि केवल तीन

दिन के बुखार में उसका जवान बेटा खतम हो गया था। दुख का मारा उसका जीर्ण-विदीर्ण चेहरा मानो पूरे इलाके की वेदना का प्रतीक था।

इस इलाके के कण-कण से सौंदर्य फूटता है, लेकिन यहाँ सभी कुछ सुंदर और मधुर नहीं है। अधिकांश लोग अल्प आयु में ही मर जाते हैं। चिकित्सा की प्राथमिक सुविधाएँ तक नहीं हैं। लोग बुखार और दस्त जैसी साधारण बीमारियों से ही ग्रस्त रहते हैं और आसानी से मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। पूरी यात्रा में मुझे केवल एक ग्रामीण मिला जिसके घर हम 24 बरस पहले रुके थे, बाकी सभी काल-कवलित हो चुके थे। लेकिन उसे भी लकवा मार गया था और उसके जीवन की लौ लड़खड़ा रही थी।

यहाँ की कँकरीली-पथरीली जमीन में कोदो-कुटकी जैसा मोटा अनाज ही उगता है। कठोर जमीन, कम वर्षा और सिंचाई के साधनों के अभाव के कारण खास कुछ होता-हवाता नहीं। खेतों में हरियाली तो है, पर पैदावार नाममात्र को

होती है। समय-समय पर सूखा खेती को तहस-नहस कर जाता है सो अलग। गरीब किसान छोटी-सी जोत पर किसी तरह जीवन बसर करते हैं।

दोपहर तक टाकिनघाट पहुँच गए। इसे कजलासंगम भी कहते हैं। यहाँ का घोर एकाकीपन स्तब्ध कर देने वाला था। नर्मदा यहाँ पहाड़ों से ऐसे घिर गई है, मानो किसी ने उसे बाड़े में बंद कर दिया हो। एक क्षण के लिए तो नर्मदा ठमक जाती है, फिर एक तीखा मोड़ लेकर, पहाड़ों को धता बताते हुए आगे बढ़ जाती है। इससे सामने का किनारा टापू जैसा लगता है।

साहस और शौर्य का जैसा इतिहास नदियाँ रचती हैं, प्रकृति का शायद ही और कोई अंग ऐसा कर पाता हो।

सब कुछ तो है यहाँ- खड़े पहाड़, निभृत एकांत, बाँके मोड़ और चारों ओर पसरा सन्नाटा। हम यहाँ दोपहर से पहले ही आ गए थे और आगे जा सकते थे। लेकिन यहाँ का सौंदर्य इतना लुभावना था कि फक्कड़ बाबा के शिष्य फट्टीवाले बाबा की कुटी में रह गए। खड़े पहाड़ की बीहड़ कगार पर जरा-सी जगह पर बनी इस कुटी से नीचे बहती नर्मदा कंठहार-सी जान पड़ती है।

फट्टीवाले बाबा आसपास के गाँवों से भिक्षा माँगकर गुजर-बसर करते हैं। भिक्षा में आज उन्हें मक्का के भुट्टे मिले थे। भिक्षा की यह पद्धति स्वागत योग्य है। तैयार आटा नहीं, भुट्टे। ऐसी भिक्षा में भिक्षुक की भी भागीदारी होती है। उसके हिस्से में भी करने को कुछ काम होता है। बातें होने लगीं तो बाबा बोले-

गुरु बिन कोन सहाई नरक में गुरु बिन कोन सहाई।

इसे समझाते हुए बोले, "अदालत में तो वकील हमारी पैरवी करता है, नरक में कौन है? वहाँ गुरु ही हमारा वकील है। वही कहता है कि यह मेरा शिष्य है, इसे इतना कष्ट न दिया जाए।"

हमारे देश में न जाने कितने प्रकार से गुरु की वंदना की गई है। उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक कहा गया है। फट्टीवाले बाबा कह रहे हैं कि गुरु को जाना तो था स्वर्ग में, लेकिन अपने शिष्य को नरक में देखकर वे भी वहाँ

जा पहुँचे

उसकी रक्षा करने। उनकी यह उपमा कितना ताजादम है!

आधी रात को उठा तो अर्धचन्द्र को देखकर विश्वास ही न हुआ कि यह चाँद है- लाल सुर्ख चाँद ! (आधी रात को ऐसा लाल रंग कहाँ से आया?) पहाड़ के पीछे डूबने ही वाला था। मानो किसी ने भट्ठी में डालकर तपाया हो और जब लपट जैसा लाल हुआ तो पहाड़ की निहाई पर रख दिया। किन्तु उस पर सूरज का हथौड़ा पड़े, इसके पहले ही वह चला गया। मुझे अफसोस हुआ कि मैंने उसका आटोग्राफ क्यों नहीं ले लिया।

यह कैसे हो सकता है कि प्राचीन काल के किसी ऋषि की नजर इस शांत. सुंदर, निर्जन स्थान पर न पड़ी हो और यहाँ उसने तपस्या न की हो। फिर भी किसी ऋषि का नाम इसके साथ जुड़ा नहीं, न ही इसे लेकर कोई किंवदंती ही है। सोचदा हूँ, क्यों न में ही एक गढ लूँ !

अपनी हिमालय यात्रा के बाद ऋषि दयानंद काशी गए थे और वहाँ से नर्मदा के उद्गम के लिए चल पड़े थे। नर्मदा क्षेत्र में वे 1856 से 1859 तक रहे। इसके बाद मथुरा गए और 80 वर्षीय विरजानंद को अपना गुरु बनाया।

किंवदंती के लिए इतना आधार पर्याप्त है। आज से मैं यह किंवदंती जारी कर रहा हूँ कि ऋषि दयानंद टाकिनघाट आए तो यहाँ का निर्जन सौंदर्य

उन्हें इतना भा गया कि यहाँ चार महीना रहे। 1857 के क्रान्तिकारी उनसे मिलने और उनसे सलाह-मशविरा करने यहाँ आते रहते थे। पहाड़ों में दुबकी यहाँ की नर्मदा को वे 'पर्वतगर्भा' कहते थे।

क्या मेरी यह किंवदंती उतनी ही आत्मनिर्भर और दीर्घजीवी होगी, जितनी कि प्राचीन किंवदंतियाँ हैं?

नहीं, दीर्घजीवी होना तो दूर, वह अल्पजीवी भी नहीं हो पाएगी। किंवदंती को कविता देनी चाहिए, यथार्थ नहीं। उसे आधा सच और आधा झूठ होना चाहिए। जब ऋषि दयानंद तीन बरस तक नर्मदा क्षेत्र में रहे, तब यह बिलकुल संभव है कि वे यहाँ भी आए हों और रहे हों। किंवदंती उड़ान भरती है कल्पना के हवाईअड्डे से, जबकि मैंने उसे खड़ा किया है इतिहास के फर्श पर। इतिहास यथार्थ

दे सकता है, कविता नहीं। नहीं भाई, किंवदंती गढ़ने के लिए जैसी कल्पनाशीलता होनी चाहिए, वह मुझमें नहीं। वैसे, इस बौद्धिक युग में कल्पनाशीलता बची ही कहाँ है?

जो भी हो, यह स्थान किसी के लिए भी बहुत अच्छा आध्यात्मिक लंगर सिद्ध हो सकता है।

सुबह नीचे उतरकर नदी के पास बैठा। पानी जहाँ चट्टानों से टकराकर बह रहा था, वहाँ के श्वेत जलकण धूप में मोती जैसे चमक रहे थे। मुझे लगा, इन मोतियों को तो मैं गिन सकता हूँ इतने अलग-अलग थे वे। किन्तु वे

इतनी तेजी से जा रहे थे कि गिन न सका। सोचा, इन्हें अगर अँजुरी में ले लूँ, तो शायद गिन सकूँ। किन्तु हथेली में आते ही वे पानी बन गए। जब तक नदी में थे, मोती थे, हथियाने गया तो पानी बन गए !

दोपहर के बाद चल पड़े। राखी में फगनू ने कहा कि इस घर में मीरा बहन रुकी थीं, तो थोड़ी देर के लिए हम लोग भी वहाँ बैठे। दिन में तीन-चार बार मेरे मुँह से निकल ही जाता है कि 'जब चौबीस बरस पहले यहाँ से निकला था...' तो फगनू भी शुरू हो जाता, 'जब मैं मीरा बहन के साथ चला था...' अगर मैं अपना ढोल पीहूँ, तो फगनू भी अपनी ढपली क्यों न बजाए !

शाम तक कन्हैयासंगम पहुँच गए। मंदिर में रहने की व्यवस्था हो गई तो गोस्वामीजी से मिलने गए। चौबीस बरस पहले उन्होंने ही हमें अपने घर में ठहराया था। घर की बहू से यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि दोनों भाई अब नहीं रहे। यही नहीं, तीसरे भाई जो सबसे छोटे थे और जबलपुर में अध्यापक थे, वे भी नहीं रहे। "आखिरी बार जब आए थे तो कहने लगे कि सेवानिवृत्ति के बाद अब बेटे के पास बैंगलोर जाकर रहूँगा। सोचा, जाने से पहले एक बार जन्मभूमि के दर्शन कर आऊँ- पता नहीं, फिर कब आना हो। दिन भर नर्मदा में तैरते रहे। जाते समय इसी आँगन की धूल को माथे पर लगाया और बच्चों की तरह फफक फफक कर रोए। इसके कुछ ही दिन बाद बैंगलोर में उनका हृदयाघात से देहांत हो गया। मानो जन्मभूमि को आखिरी बार देखने आए थे।"

जाने लगे तो रुकने का बड़ा आग्रह किया। "मेरे ससुर नहीं रहे तो क्या हुआ, हम लोग तो हैं। मेरी सास भी हैं। इसे आप अपना ही घर समझिए। फिर आप तो जबलपुर से आए हैं। जबलपुर में मेरा मायका है। आप आए हैं तो लगता है मेरे मायके के लोग ही आए हैं।"

मन प्रसन्न हो गया। कैसी आत्मीयता थी। लेकिन उस भोली बहन ने दूसरे ही क्षण जो वाक्य कहा तो प्रसन्नता कुम्हला गई। उसने कहा, "मायके से तो कुत्ता भी आए तो प्यारा लगता है।"

दरअसल यह मुहावरा है और बिलकुल सही है। लेकिन उसके लिए यह जगह सही नहीं थी। भूल से उसकी उँगली गलत सुर पर पड़ गई थी।

सुबह कन्हई पार की और आगे बढ़े। आज मुझ पर छिनगाँव पहुँचने की धुन सवार है। वहाँ की एक आदिवासी स्त्री की याद आज भी खुशबू की तरह मेरे मन में तैर रही है। उससे मिलने के लिए मैं बहुत व्यग्र था।

तीसरे पहर नदी के कछार से निकलकर पहाड़ियों पर चढ़ने लगे। बड़ी मुश्किल से छिनगाँव पहुँचे। मुझे आश्चर्य हुआ कि 24 बरस पहले इस दुर्गम पहाड़ी गाँव तक हम कैसे आ सके थे। छिनगाँव में जिस घर में हम रहे, उसके ठीक सामने दुर्गा प्रतिमा की स्थापना हुई थी। पंडितजी से कथा सुनने 25-30 ग्रामीण एकत्र हुए थे। कथा शुरू होने में देर थी तो मैंने श्रोताओं से कहा कि आपके इस गाँव में मैं 24 बरस पहले आया था और रात रहा था। फिर अपनी पुस्तक "सौंदर्य की नदी नर्मदा" से पूरा प्रसंग पढ़कर सुनाया जो संक्षेप में इस प्रकार है-यहाँ आते-आते अँधेरा हो चला था। दुर्भाग्य से दो शराबियों के कारण लोग हमें चोर समझ बैठे और किसी ने भी हमें आश्रय नहीं दिया। तब एक औरत को हम लोगों पर दया

आई और उसने हमें अपने खुले आँगन में सोने की अनुमति दी। वे शराबी उसी से उलझ पड़े लेकिन वह टस से मस नहीं हुई और दृढ़ता के साथ हमारा बचाव करती रही। अगर उसने हमें आश्रय न दिया होता, तो पता नहीं पर क्या बीतती।

मैंने इस पूरे प्रसंग को पढ़कर सुनाया। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि छिनगाँव में घटी यह घटना कभी छिनगाँव में ही पदूँगा सो भी ठीक दशहरे के

37 कुटरई से छिनगाँव

दिन। पढ़ने के बाद मैंने कहा, "उस बीहड़ रात को उस बहन ने हमारी वैसे ही रक्षा की थी, जैसे एक माँ अपने बच्चों की करती है। मैं यहाँ उसी से मिलने आया हूँ। क्या आप मुझे उसका घर बता सकते हैं?"

वहाँ युवकों की संख्या अधिक थी। उन्होंने कहा "चौबीस बरस पहले तो हम लोगों का जन्म भी नहीं हुआ था।"

बड़े-बूढ़ों ने कहा, "छिनगाँव में चार टोले हैं। आप किस टोले की बात कर रहे हैं?" मैंने कहा, "इसी टोले की। थककर चूर हो गए थे। आगे जाने की ताकत ही नहीं बची थी। उसके घर के पास से ही आगे के गाँव को रास्ता जाता था।"

उनमें जो सबसे बूढ़ा था, उसने कहा "वह बाई तो अब नहीं रही।"

मेरा दिल बैठ गया। वैसे इस अशुभ समाचार की आशंका तो थी। इस

इलाके में लंबी आयु कम ही लोगों को नसीब होती है। फिर भी उस ममतामयी नारी से मिलने और उसकी यत्किंचित सेवा करने का बहुत मन था। मैंने एक गहरी साँस ली और मौन हो गया। उसके चेहरे को याद करने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह किसी तरह याद नहीं आ रहा था। रात के अँधेरे में उसकी आवाज भर सुनी थी। सुबह देखा जरूर था, पर थोड़ी देर के लिए। इतने से कैसे याद रहता।

जहाँ स्मृति साथ नहीं देती, वहाँ कल्पना का सहारा लिया जा सकता है। मैं उसे अपनी 75 वर्षीय थकी माँदी आँखों से भले ही न देख सकूँ, मन की आँखों से तो देख ही सकता हूँ। मुझे लगा, उसका चेहरा बहुत कुछ वैसा ही था, जैसा मेरी माँ का था। या फिर सामने रखी दुर्गा जैसा।

हो सकता है यह मेरे मन का वहम हो। अगर ऐसा है तो भी मैं चाहूँगा कि मुझे यह भरम आखिरी साँस तक बना रहे।

छिनगाँव से ठाड़पाथर 39

4. छिनगाँव से ठाड़पाथर

छिनगाँव का कुआँ गाँव के बाहर एक घाटी में था। मेरे साथी बड़े सवेरे वहाँ जाकर नहा आए। मैं गया जरूर, पर नहाया नहीं ठंड के कारण

हिम्मत ही न हुई। मन को समझाया- बाबा नहाएगा तो नर्मदा में, कुओं-तालाबों पर नहीं। कै हंसा मोती चुगै, कै भूखे रहि जायें!

छिनगाँव से बरछा। कच्ची, धूल भरी सड़क से उतरने लगे तो नीचे दूर मैदान में से बहती धूप नहाई नर्मदा दिखाई दी। उस पर बना पुल भी दिखाई दे रहा था। इतने दिनों तक हम पानी और पर्वत के बीच डोल रहे थे। यहाँ पहाड़ भी खत्म और सुरम्य वनप्रदेश भी खत्म। अब प्रायः अमरकंटक तक नर्मदा मैदान में से बहती है।

पुल के पास ही है जोगीटिकरिया। वहाँ के पुजारी ने हमें अपने कमरे के बरामदे में ठहरा लिया। अपने हँसमुख और खुशमिजाज स्वभाव के कारण पंचमनाथ पुजारी किसी प्रहसन के पात्र जैसा लगता था। मेरे पूछने पर कि कैसे-कैसे बाबा यहाँ से निकलते हैं तो उसने कहा- सब रंग के बाबा निकलते हैं। कुछ बाबा बड़े कड़े होते हैं। आते ही हुकुम चलाते प्राक्क लाथो दध लाओ, घी लाओ, आटा लाओ, गाँजा लाओ।' कोई कहता है, 'घी न हो तो तेल लाओ।' एक ने कहा, 'सदाव्रत दो, कल का भूखा हूँ।' मेरे पास जो था, वह उसे दिया। डपटकर बोला, 'शुद्धि कहाँ है?' शुद्धि यानी घी। मैंने कहा, 'घी नहीं है महाराज।' इतना सुनते ही सब कुछ छोड़ कर चला गया। एक बाबा रात के अँधेरे में आया और आते ही बहुत-सी चीजें माँगी। मैंने कहा, 'नहीं है।' उसने कहा, 'अच्छा, धूने के लिए

ढूँड़ा ही ले आओ।' रात को डूंड़ा कहाँ से लाता? सो कहा, 'नहीं है।' वह नाराज होकर चीखा, 'फिर तुम नहीं बोले? मैं कुछ नहीं जानता। कहीं से भी लाओ। नहीं तो मैं तुम्हें मारूँगा।' मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'मार लो महाराज, पर ढूँड़ा नहीं है तो कहाँ से लाऊँ?' ऐसा कहकर मैं दरवाजा बंद करके सो गया। उसने कहा, 'सुबह तुम्हें मारकर जाऊँगा। कई

आश्रमधारियों को मार चुका हूँ।' लेकिन सबेरे जब बाहर निकला, तब वह जा चुका था। यह गरीब इलाका है। मदाव्रत में देने के लिए मेरे पास आटा भर रहता है। बाकी चीजें मैं कहाँ से लाऊँ? आटा देता हूँ तो कहते हैं 'हम तुम्हारे आटे के लिए थोड़े आए हैं। किस नंगे जिले में आ गए जहाँ कुछ भी नहीं मिलता।' ऐसा कहकर चल देते हैं।

पुजारी के पास बाबाओं के कई संस्मरण हैं। एक और किस्सा सुनाया-एक शाम दो बाबा आए। इसी परछी में एक कोने में एक बाबा ने आसन लगाया और दूसरे कोने में दूसरे बाबा ने। थोड़ी देर में कहीं से एक कुत्ता आया और एक बाबा के आसन पर सोने लगा। बाबा ने उसे भगाना चाहा लेकिन जब नहीं गया तो बाबा ने उसे डंडा मारा। इस पर दूसरा बाबा बहुत बिगड़ा तुमने उसे डंडा क्यों मारा, आखिर वो भी तो जीव है। पहले ने कहा कि मारता नहीं तो क्या करता, बिस्तर पर चढ़ा जा रहा था। दोनों में तू तू मैं में होने लगी और हाथापाई शुरू हो गई। तभी बजरंग बाबा आ गए। बड़ी मुश्किल से दोनों को अलग किया।

एक और किस्सा सुनाया एक बार एक महाराष्ट्रियन लड़का यहाँ आया था। हर समय ध्यान में बैठा रहता। एक बाबा ने पूछा, 'तुम्हारे गुरु कौन हैं?' उसने कहा, 'मेरे कोई गम नहीं हैं।' बाबा ने कहा, 'क्या कहा, गुरु नहीं हैं? तब क्यों हाथ पाँव तुड़वा रहे हो? जाओ, पहले गुरु बनाओ, फिर यह सब करो।'

एक वृद्ध बाबा ने यहाँ चातुर्मास किया था। भिक्षा के लिए केवल पाँच घर जाते थे। यदि पाँचों घरों से कुछ न मिला, तो उस दिन उपवास रखते थे। एक ग्रामीण अपने बूढ़ी माँ को काँवर में बिठाकर परकम्मा कर रहा है। बड़ा वजन था उसके पास। पैंतालीस किलो की माताराम रही होंगी। उतना

ही वजन दूसरे पलहे में रहता था। कोई नब्बे किलो वजन उठाकर चल रहा है।

पंचमनाथ पुजारी जब 48 बरस का था, तभी पत्नी का देहांत हो गया था।

अभी 70 का है और पूरी तरह से स्वस्थ है। घर आता-जाता रहता है लेकिन रहता यहीं है। कहता है- मैं बाहर भी हूँ और भीतर भी हूँ।

अगर हम लोग भी बीच-बीच में भीतर चले जाया करें और देखते रहें कि कहीं हमारी आत्मा को फफूँद तो नहीं लग गई, तो कितना अच्छा हो।

शाम को पास के गाँव के लोग दुर्गा प्रतिमा सिराने ले आए। ज्यों ही उन्होंने मूर्ति का नर्मदा में विसर्जन किया, तीन-चार नौजवान उस पर गिद्ध की तरह टूट पड़े। उसमें लगी लकड़ी निकालने के लिए लगे मूर्त्ति को खुरचने और खींचने। एक क्षण पहले जिस मूर्ति का बड़ी श्रद्धा के साथ नदी में विसर्जन किया गया था, वही अब नोच-खसोट की वस्तु बन गई थी। देवी वह तभी तक थी जब तक विसर्जन नहीं हुआ था, अब वह कबाड़ी का माल बन गई थी।

रात होते-होते बूँदा-बाँदी शुरू हो गई। दूसरे दिन भी लगातार पानी बरसता रहा। हम जा नहीं सकते। लेकिन किसानों को कई दिनों से इस वर्षा की प्रतीक्षा थी। उनकी फसल सूख रही थी, उसे नया जीवन मिला। वैसे किसानों को इससे कहीं अधिक पानी की जरूरत थी। बादलों को आकाश से नीचे उतारने की विद्या केवल वनों और पहाड़ों को आती है और हम

अपने अधिकांश वन काट चुके हैं। अब बादलों को आकाश से नीचे धरती पर कौन उतारे।

तीसरे दिन सबेरे आकाश मेघाच्छादित जरूर था, लेकिन पानी थम गया था, तो हमने सामान लादा और चल दिए। सफेद और सुरमई रंग के बादल आकाश में डोल रहे थे और लगातार अपना आकार बदल रहे थे। पगडंडी खाली और खामोश थी और कहीं-कहीं दलदली भी।

दोपहर तक लुकामपुर पहुँच गए। यहाँ की धर्मशाला में एक युवा संन्यासी पहले से ही था। बेचारे को मलेरिया ने तोड़ दिया है। तिवारी को दवाइयों की अच्छी जानकारी है। उसने उसे कुछ गोलियाँ देते हुए कहा, "पहले दिन चार, दूसरे दिन तीन, तीसरे दिन दो और चौथे दिन एक गोली खाना। बीच में छोड़ मत देना, नहीं तो मलेरिया अधकचरा रह जाएगा। और खाली पेट भी मत खाना, नहीं तो गोलियाँ पेट फाड़ देंगी।"

छिनगाँव से ठाड़पाथर 41

संन्यासी को बचपन से ही वैराग लगा था। गुरुस्थान हिमाचल प्रदेश में और शाखा गुजरात में सोमनाथ के पास है। कहता है "गुरु जब सोलहवाँ संस्कार करता है, तब संन्यास होता है।" दूसरे दिन बुखार के बारे में बोला, "हाथ-पैर से चला गया है, अब केवल छाती में है।"

कंडे मिल गए तो फगनू और घनश्याम ने गाकड़ बनाए। रात में कंडों की गरम राख पर कुत्ता सोया।

रात्रि के अंतिम प्रहर से ही ओस गिरनी शुरू हो गई थी। एक तो कड़ाके

की ठंड, ऊपर से ओस की बूँदनियाँ! सबेरे घना कुहरा। कुहरे के छँटने का काफी इन्तजार किया, लेकिन छँटा नहीं तो कुहरे और ओस की फुहार में ही चल दिए।

दोनों ओर के खेत धुले-धुले लग रहे हैं। हरे रंग का तो समुद्र ही है चारों ओर। हरे रंग के कितने अखाड़े हैं! खेतों का हरा अलग, पेड़ों का हरा अलग, यहाँ तक कि हर पेड़ का हरा अलग। धान का खेत हरे रंग का जूना अखाड़ा है। रमतिला का पीला तो मुझ में अजीब-सी उत्तेजना भर देता। उनके पीले खेतों में से चलता, तो लगता मैं वान गॉग के खेत में से जा रहा हूँ। बसोहली कलाकारों की तरह वान गॉग को भी पीला रंग बहुत प्रिय था।

चलते-चलते आसपास के सौंदर्य को मन में उतारता जाता। सोचता, क्या इस सौंदर्य की गूँज अपनी कृतियों में पैदा कर सकूँगा? लेकिन इसकी चिंता अभी क्यों करूँ? अभी तो इसका भरपूर आनंद लूँ, अपने हृदय में उतार लूँ और पकने के लिए वहीं छोड़ दूँ। समय आने पर वह स्वयं बाहर आएगा। इसमें समय लगता है। अगर मैं कलाकार हूँ तो मुझ में धैर्य होना चाहिए।

दोपहर को खाना नहीं बनाते। लेकिन रामघाट के प्रपातों को देख कर लगा कि आज खाना यहीं बने। देर तक मैं इन प्रपातों के पास मँडराता रहा।

शाम तक दूधीसंगम पहुँच गए। लेकिन नर्मदा का सीसघाट गाँव से दो किलोमीटर दूर है और वहीं दूधी नर्मदा से मिलती है। खेतों में से होते हुए जब संगम पहुँचे, तब थका-हारा सूरज डूबने जा रहा था। यहाँ की धर्मशाला में दो ही कमरे थे। एक में एक पागल रहता था और दूसरे में

एक क्रोधी बाबा। न तो उस दुर्वासा के साथ रहना संभव था, न उस पगले के साथ। अब क्या करें?

42 तीरे-तीरे नर्मदा

फगनू और घनश्याम पीछे रह गए थे। हमारा आधा सामान उनके पास था। अगर वे नहीं आए तो? बाहर खुले में सोना संभव न था। तब तो उस पगले से ही दोस्ती गाँठनी होगी। तभी दूर से आवाज आई, 'न..र्म..दे..हर!'

कैसी मीठी महीन आवाज! थोड़ी ही देर में दोनों आ गए। एक ग्रामीण ने कहा कि आप दूधी पार करके हर्रा जाइए, वहाँ कहीं न कहीं रहने की व्यवस्था हो जाएगी। आज सुबह से शाम तक चलते रहे थे और अत्यधिक श्रांत-क्लांत हो गए थे। लेकिन जाने के सिवा कोई उपाय भी न था।

रात के अँधेरे में अनजान, सुनसान जगह में चलना लोमहर्षक होता है। भरसक तेज चाल से चल रहे थे। गिरते-पड़ते हर्रा पहुँचे। किन्तु जिसके यहाँ आश्रय मिलने की संभावना थी, उसके यहाँ तीन दिन पहले ही किसी की मृत्यु हो गई थी। मौत यहाँ भी अपनी फसल काटने आ पहुँची थी। हम असमंजस में थे कि क्या करें, तभी उसी घर से निकला प्रताप सिंह बड़े प्रेम से हमें अपने घर ले गया। रात उसी के घर रहे। सुबह आगे बढ़े। अभी हर्रा में ही थे कि दूध की खोज में तुलसीराम के घर पहुँच गए। मैं उसके आँगन में बैठा गुनगुनी धूप का आनंद ले रहा था, तभी मेरा ध्यान उसके घर के दरवाजे पर गया। दोनों किवाड़ों पर क्या ही खूबसूरत नक्काशी की गई थी। तुलसीराम ने कहा, "इन किवाड़ों को मेरे दादा ने बनाया था।"

अब तो दोपहर का खाना यहीं बनेगा, ऐसा आकर्षण था उन किवाड़ों में।

तुलसीराम के दादा ने तो इन्हें महज किवाड़ समझकर बनाया था, लेकिन वह बन गई कलाकृति। कई बार कलाकृतियाँ सहज भाव से, अनजाने में ही बन जाती हैं। जब कलाकार कसम खाकर बैठता है कि मैं एक श्रेष्ठ कलाकृति की रचना करके ही दम लूँगा, तब उसके हाथ प्रायः निराशा लगती है।

शाम को चंदनघाट पहुँचे। धर्मशाला के पास ही नर्मदा पर सड़क का पुल है, पीछे बाँसों का सघन कुंज। धर्मशाला की देख-रेख करने वाला पुजारी युवा और हट्टा-कट्टा है। कहता है, कोई बाबा यहाँ गाँजा पीता है, अपशब्द बोलता है या लड़ाई-झगड़ा करता है तो मैं उसे मारकर भगा देता हूँ। कई बाबाओं को मार चुका है। एक बाबा ने कहा था कि मैं कई आश्रमधारियों को मार चुका हूँ। यह

आश्रमधारी कह रहा है मैं कई बार बाबाओं को मार चुका हूँ। हिसाब बराबर !

आधी रात को आकाश में शरद पूर्णिमा का चंद्र था। चंदन का घाट और पूनों का चाँद !

अपनी नर्मदा परिक्रमा के दौरान मुझे कई पूर्णिमाएँ देखने का अवसर मिला और हर बार मैंने नई-नई उपमाओं से चाँद और चाँदनी का वर्णन किया। किन्तु अब मेरे पास कोई नई उपमा नहीं। मैं खाली हो गया हूँ। लेकिन थोड़ी देर बाद विचार आया, यदि शबरी कहती कि राम को देने के लिए न तो मेरे पास आम हैं, न अनन्नास; मैं भला इतने बड़े राम को क्या

दे सकती हूँ? ऐसा सोचकर वह हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती, तो क्या यह ठीक होता?

शबरी से बेर की ही आशा की जाती है, अनन्नास या सेब की नहीं। मुझ से भी लोग मेरे ही स्तर की उपमा की आशा करते हैं, किसी बड़े लेखक के स्तर की नहीं। मुझे कोशिश करनी चाहिए।

लीजिए, मिल गई। चिड़िया जब अंडे को सेती है तो उसमें से बच्चा निकलता है। चाँद जब सूरज की किरणों को सेता है तो उसमें से चाँदनी निकलती है। तो चाँद है सूरज की हेचरी !

लीजिए, एक और उपमा सूझ गई। पंद्रह दिन तक चाँदनी बढ़ती है, फिर पन्द्रह दिन घटती है। यानी कभी ज्वार तो कभी भाटा। अब ज्वार-भाटा समुद्र में आता है, तालाब-कुओं में नहीं। तो भाई चाँद, तुम समुद्र हो, ये सूरज और तारे तो ताल तलैया हैं! ज्वार-भाटे का खेल वे क्या जानें!

सवेरे आगे बढ़े। बसंतपुर और कंचनपुर होते हुए ठाड़पाथर पहुँचे। इस बार की यात्रा में एक सुखद परिवर्तन देखने मिला। अधिकांश गाँवों में प्राथमिक पाठशालाएँ खुल गई हैं और बच्चे पढ़ भी रहे हैं। जहाँ भी शाला मिली, हम वहाँ जरूर गए और शिक्षक से अनमति लेकर मैं बच्चों को नर्मदा के बारे में बताता। अगर बच्चे जरा बड़े होते तो अपनी पुस्तक 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' में से उनके गाँव से संबंधित अंश पढ़कर सुनाता। नर्मदा-तट के कई गाँव में मैंने बच्चो के समक्ष रचना-पाठ किण उमी निष्ठा से जिस निष्ठा में नवंबर 2001 में भोपाल

के भारत भवन में साहित्यकारों और साहित्यप्रेमियों के समक्ष किया था। कभी वक्ता की मुद्रा धारण करके संक्षिप्त भाषण भी देता। मुझे भाषण देने का जरा शौक है और अगर बच्चे मिल जाएँ, फिर तो पूछिए मत। ठाड़पाथर की पाठशाला को देखते ही मेरी बाँछे खिल गईं। दीन-दुनिया से बेखबर शुरू हो गया-

प्यारे बच्चो, हर बच्चे को सबसे अधिक प्यार अपनी माँ से होता है। माँ के बिना वह रह नहीं सकता। इससे हुआ यह कि जो भी चीज हमें बहुत प्यारी होती है, उसे हम माँ कहने लगे। जैसे हमारा देश। हम उसे भारत माता कहते हैं। इसी प्रकार यह जो नर्मदा बह रही है, वह हमें इतनी प्यारी लगती है कि हम उसे भी माँ कहते हैं- नर्मदा मैया। बच्चो, तुम कितने भाग्यवान हो कि नर्मदा की गोद में पल-बढ़ रहे हो। पता नहीं बड़े होकर तुम इसी गाँव में रहोगे या और कहीं जाओगे। जहाँ भी जाओ, अपनी इस नदी को कभी मत भूलना। तुम जहाँ भी जाओगे, इस नदी का एक अंश तुम्हारे साथ जाएगा।

बच्चे, और शिक्षक भी, बड़े चाव से मेरी बातें सुनते। (मेरे भाषण से खुश होकर एक शिक्षिका ने तो हमें सदाव्रत भी दिया था।) अगर मैं शिक्षक होता तो बच्चों के दिलों में सौंदर्य के बीज बोता, सौंदर्य के प्रति ललक जगाता। सौंदर्य की यही ललक कालांतर में उनके समक्ष कला, संगीत या किताबों की दुनिया खोलकर रख देती। मुझे लगता है कि मैं प्रायमरी स्कूल का बहुत अच्छा शिक्षक हो सकता था। दुर्भाग्य से अपनी इस अद्भुत क्षमता का पता मुझे तब चला है, जब मेरा चादर बदलने का समय पास आ गया है।

5. ठाड़पाथर से अमरकंटक

चलते समय आसपास का दृश्य इतना आत्मविभोर कर देने वाला होता कि मुझे इससे कोई मतलब न होता कि हम रास्ता भटक गए हैं या किधर जा रहे हैं या कहीं जाना भी है या नहीं। यहाँ मनुष्य ने प्रकृति की लय को तोड़ा नहीं है। नर्मदा को निजी संपत्ति मानकर उसमें अपने कारखानों की गंदगी बहाने वाले महानुभाव का आगमन इस इलाके में जरा भी नहीं हुआ है। इसीलिए नर्मदा अपने स्वच्छ जल को, अपने मूल तत्त्व को, सुरक्षित रख सकी है। मुझे आशा नहीं थी कि इतने वर्षों बाद भी इस इलाके को मैं अविकृत देख सकूँगा।

घुमावदार ग्राम्यांचलीय सड़क से चलकर तीसरे पहर तक बिलासपुर पहुँच गए। छोटा-सा गाँव है यह। सोनसिंह के घर रहे। वह घर पर नहीं था, उसके बड़े भाई थे। काफी वृद्ध थे। मैंने पूछा, "क्या आप सबसे बड़े हैं?"

"नहीं, सबसे बड़ा तो वापस हो गया। मैं मँझला हूँ।"

"वापस हो गया" यानी दिवंगत हो गया।

सोनसिंह बड़ा सेवाभावी है। अनेक वर्षों तक निर्विरोध सरपंच चुना जाता रहा। गाँव के बाहर एक टीले पर उसने मंदिर बनवाया है, साथ में बगीचा भी लगाया है। दिन-रात वहीं रहता है। आधा गृहस्थ और आधा संन्यासी है।

शाम को टहलने निकला। पाठशाला की छुट्टी हो गई थी। छात्र और शिक्षक अपने-अपने घरों को जा रहे थे। कुछ शिक्षक मेरी ओर कौतूहल से

देखने लगे तो अपना परिचय देकर मैंने उन्हें अपनी पुस्तक 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' दिखाई।

देखते ही एक शिक्षक ने कहा, "इसे मैं पढ़ चुका हूँ। हमारी शाला में भोपाल से आई थी।"

तीन-चार दिन पहले मार्ग में एक शिक्षक मिले थे। मेरी पुस्तक देखकर बोले, "मैं इसे खरीदना चाहता हूँ।" मैंने कहा कि इसे मैं आगे भी दिखाना चाहता हूँ, वर्ना आपको सप्रेम भेंट कर देता।

मैंने देखा कि गाँवों में ऐसे लोग हैं जो किताबें पढ़ना चाहते हैं, पर वे उन्हें उपलब्ध नहीं। अगर मेरी उम्र कम होती तो मैं एक छकड़े पर किताबें लादकर गाँव-गाँव में फेरी लगाता और रचना-पाठ भी करता।

सुबह चल दिए। सोनसिंह का बनवाया मंदिर हमारे रास्ते में ही पड़ता था। वह वहीं मिला। मंदिर तो खास नहीं था, पर क्या ही सुंदर उद्यान था। वह एक ढलान पर था। तरह-तरह के पेड़ थे, पौधे फूलों से लदे थे। दस-बारह बरस पहले यह भूखंड ऊबड़-खाबड़ और उजड़ा हुआ था। हरियाली का नामो-निशान न था। सोनसिंह ने अपने हाथों से बड़े ही सुनियोजित ढंग से पेड़-पौधे लगाए। लेकिन पहले कुआँ खोदा। परिणाम मुग्ध कर देने वाला था। चुस्त हाथों में पड़कर कुदाली कैसा करिश्मा दिखा सकती है!

शाम तक भीमकुंडी पहुँच गए। धर्मशाला में ठहरे। यहाँ के बाबा का चेहरा हड़ीला और डरावना-सा था। उसका थोबड़ा तीन तहों वाला था। होंठ

कठोर मुद्रा में भिंचे हुए रहते और आवाज भी उखड़ी उखड़ी थी। किसी चिड़ियाघर से निकले वन-मानुष जैसा जान पड़ता था। लेकिन दिल का उतना ही अच्छा था। हमें जरा भी असुविधा न होने दी।

पास में ही आँगनबाड़ी थी। वहाँ के छोटे-छोटे बच्चे खाना खाने के बाद थाली माँजने नर्मदा आए थे और थालियों को पानी में फेंक रहे थे। वे उड़नतश्तरियों की तरह हवा में लहरातीं, फिर प्रवाह के साथ बहने लगतीं। बच्चे दौड़कर पकड़ लेते और फिर फेंकते या उछालते। पानी बच्चों के घुटनों तक भी न था।

नर्मदा भी तो अब आँगनबाड़ी की बच्ची ही है।

सवेरे चल दिए। घुघवा में छत्तरसिंह के घर रात रहे। सुबह आगे बढ़े। अब

आएगा फरीसेमर। चौबीस बरस पहले जब यहाँ से निकला था, तब दीवाली आने वाली थी, इसलिए इस गाँव के बैगाओं ने अपने घरों की दीवारों को सुंदर चित्रों से सजाया था। मैंने उनके स्कैच भी किए थे। आज भी करूँगा, जरूरत पड़ी तो रात भी रहेंगे।

लेकिन वहाँ एक चित्र नहीं था। दीवारें सूनी पड़ी थीं।

हो सकता है कुछ दिन बाद बनाएँ क्योंकि दीवाली को आने में अभी दस दिन की देर है। यह भी हो सकता है कि उन्होंने इस पारंपरिक कला को त्याग दिया हो। इसी इलाके में मुझे बैगा स्त्रियों के शरीर गुदनों से

छलकते दिखे थे। इस बार शायद ही गुदने वाली कोई स्त्री दिखी हो। उनका पारंपरिक पहनावा भी कम ही दिखाई दिया। लोकगीत के स्वर भी मुश्किल से सुनाई दिए। नवरात्र के दौरान अधिकांश जगह कर्कश और कर्णकटु लाउडस्पीकर पूरी ताकत से गला फाड़ते सुनाई दिए। केवल एक बार कुछ स्त्रियों को गाते सुना था-

नर्बदा मैया कुंवारी बहन है, कुंवारी बहन है, दूध की धारा है, नर्बदा मैया है।

कितना अच्छा लगा था। उनका गला मीठा और स्वर कोमल था। वे बहुत सहज ढंग से गा रही थीं। बरछा की उन स्त्रियों के मैंने नाम भी लिख लिए थे-तुलसी, चिरौंजी, फूलमती और कोसी। लेकिन देख रहा हूँ कि नगरीय सभ्यता लोक-संस्कृति को लगातार पीछे ढकेल रही है। महानगरों की सभ्यता में ऐसी भयानक शक्ति है कि वह सबको एक जैसा बना देती है। हम विविधता में एकता की बातें तो करते हैं, पर विविधता खत्म होती जा रही है।

फरीसेमर के बाद एक झरने को देखकर ठिठक कर खड़े हो गए। कहीं ऐसा न हो कि यह नर्मदा हो और गलती से हम इसे झरना समझ कर पार कर बैठें। नर्मदा इतनी छोटी है कि विश्वास ही नहीं होता कि यह नर्मदा है। एक बार तो यह पूछने का मन हुआ कि ओ झरने! हम कैसे मान लें कि तुम नर्मदा हो? क्या तुम्हारे पास कोई प्रमाणपत्र है?

अगर हम दूज के चाँद से पूछें कि ऐ लंबोतरे तारे, हम कैसे मानें कि तुम

चाँद हो, तो वह इस बेतुके सवाल का जवाब देने के बजाय मौन रहना ही पसंद करेगा। नर्मदा ने भी यही किया।

पहाड़ों की तलहटी में बसा छोटा-सा गाँव है दमगढ़। तीनों ओर पहाड़ ही पहाड़ नजर आ रहे हैं। इन्हीं पहाड़ों में है अमरकंटक। डिंडौरी से जो मैदान शुरू हुआ था, वह यहाँ खत्म हो गया। यहाँ से अमरकंटक की चढ़ाई शुरू।

दमगढ़ में जमुना प्रसाद के घर में हमें जो कमरा मिला, उसमें तीन ओर तो पूरी दीवार थी, लेकिन भीतर की दीवार आधी ही थी। रात को ठंडी हवा के झोंके बार-बार मेरी शाल में घुस जाते और मैं सिहर सिहर जाता। मेरे साथियों के पास तो ओढ़ने-बिछाने के लिये नाम मात्र को था। नींद उन्हें भी नहीं आई।

अभी यह स्थिति है तो दिसंबर-जनवरी के कँपकँपाते जाड़े में बाहर खुले में सोने वाले परकम्मावासियों पर क्या बीतती होगी। हो सकता है, कष्ट सहन करते-करते उनकी सहनशक्ति बढ़ जाती हो।

मेरे मित्र कहते हैं कि उन्हें न केवल जाड़ा पसंद है, बल्कि वे उसका आनंद भी लेते हैं। बात यह है कि उनके पास जाड़े से बचाव के सभी साधन उपलब्ध हैं। उनके पास प्रचुर गरम कपड़े होते हैं और पौष्टिक आहार की कमी नहीं। जाड़ा उनको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता। लेकिन गरीबों के लिए जाड़े का अर्थ बिलकुल दूसरा होता है।

सुबह दमगढ़ की चढ़ाई के लिए निकल पड़े। दमगढ़ से अमरकंटक तक कच्ची सड़क है। उसी से गुँथी है हमारी पगडंडी। सड़क घुमावदार है तो पगडंडी चढ़ाईदार। अमरकंटक कोई बड़ा पहाड़ नहीं। दमगढ़ से कुछ लोग

तो साइकिल से जाते हैं। सुबह जाते हैं और शाम को लौट आते हैं। साइकिल जाते समय तो काम नहीं आती, लेकिन लौटते समय खूब साथ देती है।

धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ रहे थे। मन में नर्मदा के उद्‌गम स्थल पहुँचने की उत्तेजना थी। और उत्तेजना में, विशेष रूप से उल्लासपूर्ण उत्तेजना में, आदमी में नई ताकत आ जाती है। मैं हाँफ जरूर रहा था, लेकिन थकावट नाम को भी नहीं थी।

ठाड़पाथर से अमरकंटक 49

दो घंटे में ऊपर आ गए। शाल वृक्षों से आच्छादित समतल भूमि पार की तो कपिलधारा पहुँच गए। कपिलधारा नर्मदा का सबसे पहला प्रपात है और सबसे ऊँचा भी। कुंड से निकल कर नर्मदा कुल सात किलोमीटर ही चली है कि पिता मेकल उससे कहते हैं, "जरा इस गहरी खाई में कूदकर दिखाओ तो! आगे तुम्हें दुर्गम पहाड़ों में से अपनी राह निकालनी होगी, छलांग लगानी होगी। देखूँ तो सही, तुम छलांग लगा सकती हो या नहीं!" एक सरिता, जिसे चले कुल सात किलोमीटर हुए हैं, जिसे कूदने का कोई अनुभव नहीं, जो अभी दुधमुँही बच्ची ही कही जाएगी, उसकी कैसी कठिन परीक्षा ली जा रही है! किन्तु नर्मदा भी तो पर्वत-कन्या है, पहाड़ की बेटी है, बिना आगा-पीछा सोचे खाई में कूद जाती है। पिता मेकल प्रसन्न हो जाते हैं इतनी छोटी और इतनी बहादुर !

खाई-खंदक से नर्मदा की यह पहली भिड़ंत है।

कपिलधारा के नीचे जो छोटा प्रपात है, उसका नाम है दूधधारा। मेरे साथी

कपिलधारा में नहाए, मैं दूधधारा में। यहाँ एक आदिवासी स्त्री जड़ी-बूटी बेच रही थी। तिवारी ने उससे कोई बूटी खरीदी।

शाम तक अमरकंटक पहुँच गए। रहने के लिए एक धर्मशाला में अच्छा कमरा मिल गया। कमर सीधी करने के लिए मैं लेटा ही था कि गरीबा सहसा मेरे पैर दबाने लगा। मैंने तुरंत रोक दिया। 'नहीं बेटे, थका जरूर हूँ, लेकिन इतना नहीं कि किसी को पैर दबाने पड़ें।'

पहले दिन से ही यह गोंड किशोर सबका चहेता हो गया था। महिलाएँ उसे पुत्रवत् स्नेह करने लगी थीं। "गरीबा, यह ला; गरीबा, वह ला" सुनाई पड़ता ही रहता था। उसकी सेवा-परायणता विस्मयकारी थी।

एक विचित्र बात यह है कि इस बार की यात्रा में प्रथम यात्रा की कोई स्मृति काम नहीं आई। दो-तीन जगह को छोड़कर शायद ही ऐसा कोई स्थान आया हो, जिसे देखकर लगा कि यहाँ मैं आ चुका हूँ। कोई परिचित धर्मशाला तक न मिली-कपिलधारा की वह धर्मशाला भी नहीं जहाँ पिस्सुओं की भरमार थी। वह टूट चुकी थी।

एक तरह से यह अच्छा ही हुआ। यह पुनरावृत्ति यात्रा न लगकर एकदम नई यात्रा लगी।

यात्रा के दौरान में दाढ़ी नहीं बनाता, यह झंझट नहीं पालता। तिवारी ने कहा "आपकी दाढ़ी-मूँछ इतनी बढ़ गई है कि आपको अंदाज नहीं हो सकता कि आपका चेहरा कैसा दिखाई दे रहा होगा।" हम सँवरते हैं दूसरों

के लिए, विशेष रूप से परिचितों के लिए। यहाँ मेरा कोई परिचित नहीं चाहे जितना लालबुझक्कड़ क्यों न दिखें, मुझे क्या फर्क पड़ना है!

तिवारी मूँछों के मामले में पहले से ही बढ़त लिए था- वह बड़ी-बड़ी मूँछें रखता है- उसमें 24 दिनों की बढ़ोतरी। अब उससे कौन कहे कि मित्र, तुम्हारी मूँछे तो आसमान छू रही हैं!

दूसरे दिन सुबह परकम्मावासियों की तरह पहले माई की बगिया गए। तपोवन जैसी जगह। यहाँ की हरियाली और यहाँ की शांति मन को भा गई। यहाँ एक बाबा ने कहा, "सत्य एक ऐसा हीरा है, जिसे आप तीनों लोक में भँजा सकते हैं। झूठ को नहीं भँजा पाएँगे।" उसकी इस बात का अनुमोदन भला कौन नहीं करेगा !

यहाँ से पहाड़ के किनारे-किनारे, शालवृक्षों के बीच से होती हुई एक कच्ची सड़क सोनमूड़ा जाती है। यहाँ सोन नदी का उद्गम है। प्रकट होते ही सोन खड़े पहाड़ से नीचे के मैदान में छलांग लगाती है। गिरती जलधारा को लोग ठीक से देख सकें, इसलिए एक छज्जा निकाला गया है। यहाँ से नीचे की हरी-भरी उपत्यका देखते ही बनती है। अमरकंटक सौम्य पहाड़ है। एक बार ऊपर आ जाने पर लगता ही नहीं कि हम पहाड़ पर हैं। चारों ओर समतल भूमि। जब आप सोनमूड़ा आते हैं और नीचे पसरे मैदान को देखते हैं, तभी अहसास होता है कि हम पहाड़ पर हैं।

अमरकंटक में एक सौंदर्य-त्रिभुज बनता है- कपिलधारा, माई की बगिया और सोनमूड़ा। त्रिभुज नहीं बल्कि चतुर्भुज। सौंदर्य की चौथी भुजा है यहाँ का सुंदर, सलोना, सर्वव्यापी शाल वन। पूरा पहाड़ उत्तुंग शाल वृक्षों से आच्छादित है।

ठाड़पाथर से अमरकंटक 51

अमरकंटक नाम लेते ही नर्मदा के साथ-साथ यहाँ के शालवन की एक बहुत ही सजीव छवि मेरे मन में उभरती है।

वहाँ से रेवा-कुंड, या नर्मदा-कुंड आ गए। इसी कुंड से नर्मदा अपनी यात्रा शुरू करती है। कुंड के चारों ओर कई छोटे-छोटे मंदिर हैं।

दूसरे दिन सबेरे घने कुहरे में ही कुंड के लिए चल दिया। आज नर्मदा से कुछ जरूरी बातें करनी हैं। चौबीस बरस पहले जब यहाँ आया था, तब दीवाली की रात को इसी कुंड में दीप प्रवाहित करके बोला था, "माँ नर्मदे, बदले में तू भी दीप जलाना, मेरे हृदय में। बड़ा अँधेरा है वहाँ, किसी तरह जाता नहीं। तू अगर दीप जला दे, तो दूर हो जाए।" लेकिन उसने अभी तक दीप नहीं जलाया। इसी सिलसिले में बात करनी थी। रास्ते में ही सोच लिया था कि इस बार जरा चतुराई से काम लूँगा। विनीत भाव से कहूँगा, "माँ, मैं तो तुम्हारा डाकिया हूँ। तुम्हारे सौंदर्य की चिट्ठियाँ बाँटता रहता हूँ। डाकिया तो मैं खैर अच्छा हूँ, लेकिन क्या तुम यह नहीं चाहती कि एक अच्छे डाकिए के साथ-साथ मैं एक अच्छा इनसान भी बनूँ? मेरे भीतर का अँधेरा तुम दूर क्यों नहीं कर रहीं?"

किन्तु, आश्चर्य की बात यह हुई कि कुंड पहुँचते-पहुँचते मेरा विचार बदल गया। अगर नर्मदा कहती (और इसी की संभावना ज्यादा थी) कि "बेटे, तुम खुद कुछ न करो और आशा करो कि मैं ही सब कुछ करूँ, तुम नए-नए कलुष जमा करते रहो और उम्मीद करो कि मैं ही उसे उलीचती रहूँ, तो यह कैसे हो सकता है? तुम मेरे साथ सहयोग नहीं कर रहे।" अगर वह

ऐसा कहती, तब तो मुझे लेने के देने पड़ जाते। पहले जरूर बुरा लगता, किन्तु बाद में समझ में आ जाता कि मेरी प्रार्थना केवल जिह्वा से है, अंतरतम से नहीं। तो ऐसी अधम प्रार्थना से कुछ नहीं होगा। कसूरवार मैं खुद हूँ।

अभी तक मैं ऊँघ रहा था, आज नर्मदा ने मुझे सोते से जगा दिया। मैं नए सिरे से प्रयास करूँगा। नर्मदा ने जो बीज डाला है, एक न एक दिन वह जड़ जरूर पकड़ेगा। मैंने एक नई स्फूर्ति का अनुभव किया।

(मेरा अनुमान है कि मुझ में बुराइयाँ शायद जयादा नहीं, पर ओछाइयाँ

बहुत हैं। इन्हीं से शुरू करूँगा। यह बुराई की सबसे कमजोर कड़ी है। इसे काबू करना जरा आसान रहेगा। बुराइयों से दूसरी खेप में निबदूँगा।)

हवा में अभी भी महीन कुहरा छाया हुआ था। लोगों का आना शुरू हो गया था। मंदिरों की घंटियाँ बजने लगी थीं। कड़ाके की ठंड में एक स्त्री नहाने के लिए कुंड में उतर रही थी।

यहाँ आए आज तीसरा दिन है। दोपहर के बाद बस पकड़कर घर के लिए चल देंगे। फगनू अपनी सुरीली आवाज में गरीबा से कह रहा है- चलो मिट्ठू ! अब घर चलो !

75 वर्ष की उम्र में मैं करीब-करीब उतना ही चला, जितना 50 की उम्र में चला था। अपने सामर्थ्य में मेरा विश्वास बढ़ा। फगनू जैसा साथी साथ में

हो तो आपको अपने ऊपर कुछ ज्यादा ही विश्वास हो जाता है।

बस में छह माह के पौत्र वंशज की बड़ी याद आ रही थी। चौबीस-दिनी दाढ़ी-मूँछ लिए घर पहुँचा। जाते ही बोला, 'बाबा आया है-आटा लाओ, दाल लाओ, चावल लाओ, शुद्धि लाओ, लेकिन सबसे पहले वंशज को लाओ !'

वंशज को देखते ही बोला, "नर्मदे हर ! मिट्टू, नर्मदे हर !"

6. अमरकंटक

अमरकंटक कोई बड़ा पहाड़ नहीं। लेकिन वहाँ से एक नहीं, दो नदियाँ निकलती हैं- नर्मदा और सोन। दोनों के उद्गम के बीच की दूरी कोई एक किलोमीटर होगी, लेकिन-

पत्ता टूटा डाल से, ले गई पवन उड़ाय अबके बिछुड़े कब मिलें, दूर पड़ेंगे जाय।

एक पत्ता टूटकर खंभात की खाड़ी में गिरा, दूसरा बंगाल की खाड़ी में। नर्मदा को पहाड़ की पश्चिमी ढलान मिली तो वह उस ओर गई और सोन को पूर्वी ढलान मिली तो वह पूरब को गई। करीब-करीब एक ही जगह से निकली दो नदियाँ विरुद्ध दिशाओं में बहकर बहुत दूर जा गिरीं।

यह तो हुआ भूगोल। किन्तु किसी अज्ञात कवि को इस भूगोल में भी कविता दिखाई दी। उसने कहा नर्मदा और शोणभद्र (इसे नद माना गया है। हमारे देश में तीन नद माने गए हैं ब्रह्मपुत्र, सिंधु और शोणभद्र) एक दूसरे को चाहते थे, दोनों का विवाह होने वाला था। एक बार नर्मदा ने अपनी दासी जुहिला के हाथ शोण के लिए सन्देश भेजा। काफी देर बाद भी जब जुहिला नहीं आई, तो नर्मदा स्वयं गई। उसने देखा कि शोण जुहिला से ही प्रेमक्रीड़ा कर रहा है! उसे शोण पर अत्यन्त क्रोध आया और कभी विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके पश्चिम की ओर चल दी। निराश और हताश शोण पूर्व की ओर चल पड़ा। चिरकुमारी होने के कारण नर्मदा अत्यन्त पवित्र नदी मानी गई। इसीलिए भक्तगण उसकी परिक्रमा करते हैं।

मेघ को लेकर कवि कालिदास ने मेघदूत की कल्पना की, तो किसी अज्ञात कवि ने एक नदी के चिरकुमारी होने की कल्पना की। मेघदूत एक विरही प्रेमी युगल की कहानी है तो यह कथा ऐसे प्रेमियों की कहानी है, जो युगल बनने से पहले ही हमेशा के लिए अलग हो गए।

यह सच है कि कालिदास की कल्पना कवियों और साहित्य-रसिकों द्वारा जितनी समादृत हुई, उतनी इस लोककवि की नहीं। किन्तु, कालिदास के प्रशंसक केवल प्रशंसा-भर करके रह गए। एक भी प्रशंसक, जिस पथ से मेघ गया था, उस पथ पर चला नहीं। पैदल चलना तो दूर, हवाई जहाज से भी नहीं गया। (जरा सोचिए, यह कितनी बड़ी खबर बन सकती थी कि कालिदास के काव्य का एक प्रशंसक हवाई जहाज से ठीक उसी मार्ग से गया, जिस मार्ग से मेघ गया था और उसका सचित्र वृत्तान्त भी प्रकाशित

किया।)

उधर उस अज्ञात कवि के नर्मदा को 'चिरकुमारी' कहने पर हजारों-लाखों लोग उसकी परिक्रमा पर चल पड़े! और याद रहे, मेघ जाता भर है, वापस नहीं आता। परकम्मावासी तो वापस भी आता है। वह दक्षिण तट से अमकंटक से समुद्र तक जाता है और उत्तर-तट से समुद्र से अमरकंटक वापस आता है। उस अज्ञात कवि के कारण नर्मदा को वह गौरव मिला, जो संसार में किसी नदी को नहीं मिला। सारे संसार में केवल नर्मदा की ही परिक्रमा की जाती है।

वह कौन था, कहाँ का था, कब हुआ था आदि बातें हम नहीं जानते। फिर भी इतना तो कह ही सकते हैं कि वह यहाँ के भूगोल से अच्छी तरह से परिचित था और एक भौगोलिक तथ्य को काव्यात्मक सत्य में बदल देने की उसमें अद्भुत प्रतिभा थी। 4 अप्रैल, 2003 की शाम को अमरकंटक पहुँचते ही मैंने मन ही मन उसे प्रणाम किया।

रहने की व्यवस्था कल्याण आश्रम में हो गई। प्रथम परिक्रमा के दौरान 1978 में मैं इसी आश्रम में रहा था। तब यहाँ केवल झोंपड़ियाँ थीं, आज अनेक विशाल भवन हैं। बहुत सारे पेड़ हैं और बहुत अच्छा उद्यान है। पौधों पर जितने फूल हैं, पेड़ों पर उतने ही पक्षी। आश्रम द्वारा, अपने नाम के अनुरूप, कई कल्याण-कार्य किए जाते हैं विशेष रूप से शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में।

हम आश्रम के मन्दिर की सायं-आरती में सम्मिलित हुए। थोड़ी देर बाद

मेरे एक साथी ने धीरे से कहा, "आगे गोविन्दाचार्य खड़े हैं।"

आरती सम्पन्न होने पर हम बाहर आए। वे भी आए। गोविन्दाचार्य ही थे। उन्होंने हम लोगों को नमस्कार किया, तो हम लोगों ने भी किया। छरहरा शरीर, काला रंग, तेजस्वी आँखें। बातें होने लगीं। उनकी बातों से उनकी मेधा झलकती थी। बहुत अच्छी हिन्दी बोल रहे थे। स्वाभाविक ही बातें राजनीति को लेकर थीं। राजनीति में मेरी जरा भी दिलचस्पी नहीं। न मैं अखबार पढ़ता हूँ, न ही उस भानमति के पिटारे में (जिसे आजकल लोग टीवी कहने लगे हैं) समाचार देखता हूँ। भूलकर भी नहीं। इसलिए चुप रहा।

तभी मेरे किसी साथी ने उन्हें मेरे बारे में बताया तो लगे मेरी पुस्तक की प्रशंसा करने !

मुझे आश्चर्य हुआ। इतने व्यस्त आदमी को भला किताब पढ़ने का समय कहाँ से मिला होगा! पता नहीं, इन्होंने मेरी किताब देखी भी है या नहीं! प्रशंसा तो बिना पढ़े भी की जा सकती है। नेता इसमें निपुण होते हैं। कहीं यह वही लटका तो नहीं! मैंने कहा, "अभी आपने मेरी किताब के बारे में जो कहा, क्या हाथ में गीता लेकर उसे दोबारा कह सकते हैं?"

"मैं 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' साथ लेकर चला हूँ। कहें, तो अभी मँगा कर दिखा दूँ।"

अब मैं क्या कहता! इन्हें तो किताब का नाम तक याद है। हाँ, उन्हें दूसरी किताब 'अमृतस्य नर्मदा' के बारे में कोई जानकारी न थी।

किन्तु इससे भी बड़ा विस्मय अभी बाकी था। मेरे किसी साथी ने कहा कि वेगड़जी नर्मदा की पूरी परिक्रमा कर चुके हैं, लेकिन 75वें वर्ष में प्रवेश करने पर दोबारा चल रहे हैं। सुनते ही उन्होंने मेरे पाँव छुए!

यह पलक झपकते हो गया। यह इतना अप्रत्याशित था कि उन्हें रोकने का मुझे समय ही न मिला। मैं मारे संकोच के गड़-सा गया। इतना बड़ा आदमी और ऐसी विनम्रता !

विनम्रता किसी में भी अच्छी लगती है, किन्तु जब वह किसी बड़े आदमी में सहज-स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है, तब उसकी द्युति कुछ और होती है। तब ऐसा प्रतीत होता है मानो वह हल्दी लगाकर स्नान करके निकली हो !

राजनीति और इनसानी रिश्ते दो अलग-अलग चीजें हैं। मैं गोविन्दाचार्य की नीतियों से असहमत हो सकता हूँ, लेकिन एक मनुष्य के नाते मैं उन्हें चाह भी तो सकता हूँ।

"आप लोग भृगु-कमण्डल देखना न भूलें।" इतना कहकर वे युवकों की-सी चपलता के साथ मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर गए।

हमारे दल के बारे में बताना तो भूल ही गया। कान्ता, गार्गी और डॉ. अखिल मिश्र तो पिछली यात्रा में भी थे। कुन्दनसिंह परिहार और शरद चौहान नए सदस्य हैं। परिहारजी कॉमर्स कॉलेज के प्राचार्य रहे और कहानी लेखक भी हैं। शरद मेरे भानजे का दोस्त है और बड़ा ही गुणी और

खुशमिजाज है। पार्थिव शाह दिल्ली से आए हैं और प्रसिद्ध फोटोग्राफर हैं। छोटा बेटा नीरज भी है। लेकिन ये दोनों अमरकंटक तक ही हैं। फगनू दादा तो हैं, लेकिन गरीबा नहीं है। उसकी जगह आ गया है मेरा पुराना विश्वस्त साथी छोटू जो मेरे साथ कई बार चल चुका है।

दूसरे दिन दोपहर तक नर्मदा-कुंड, सोनमुड़ा, माई की बगिया और कुंड के बाहर स्थित कल्चुरीकालीन प्राचीन मन्दिर देखे। तीसरे पहर कपिलधारा गए। अक्टूबर में दो धाराएँ थीं। पानी कम हो जाने के कारण अब केवल एक धारा रह गई थी। उसके दोनों ओर मधुमक्खी के कई छत्ते लगे थे। इसलिए यहाँ स्नान न करके दूधधारा में स्नान किया और फिर भृगु-कमंडल निकल गए। नर्मदा-कुंड से उत्तर की ओर कोई 7 कि.मी. दूर धूनीपानी तक सड़क गई है। यह हरा-भरा एकान्त स्थान है। यहाँ से पगडंडी से चलकर भृगु-कमंडल पहुँच गए। यहाँ एक चट्टान की खड़ी दीवार में एक छोटा-सा छेद है जमीन से कोई एक मीटर ऊपर। आश्चर्य की बात यह है कि उसमें हाथ डालने पर वहाँ पानी मिलता है। यही है भृगु कमंडल। यह पहाड़ के एक छोर पर है।

रात को पुनः नर्मदा-कुंड गए- आरती देखने। हम लोग यह भी देखना चाहते थे कि कुंड से बाहर निकलकर नर्मदा किस मार्ग से प्रवाहित होती है। कुंड और उसका परिसर तो स्वच्छ है, लेकिन कुंड के अहाते से बाहर निकलते ही स्थानीय लोगों ने नर्मदा की जो गत बना रखी है, उसे देखकर ग्लानि ही होती है। पूजा-सामग्री बेचने वाली लड़की ने हमें रात के अँधेरे में वहाँ जाने से रोक दिया-बड़ी गंदगी है वहाँ। लोग मानो घात लगाए बैठे हैं कि नर्मदा बाहर निकले और हम उसमें अपनी गंद बहाएँ।

भगवान जितने मन्दिरों में निवास करते हैं, उतने ही स्वच्छता और शुचिता में रहते हैं। हमारे सन्त यदि इस बात का पुरजोर प्रचार करें तो प्रभु सेवा के साथ साथ यह उनकी बहुत बड़ी देश-सेवा होगी। धर्म और गंदगी साथ-साथ नहीं रह सकते।

तीसरे दिन सुबह पार्थिव और नीरज वापस चले गए। पार्थिव को अगले महीने जर्मनी जाना है। वहाँ उसके चुने हुए फोटो की प्रदर्शनी है।

बाकी के हम आठ नर्मदा के दक्षिण-तट की पदयात्रा के लिए चल पड़े। कितनी छोटी है नर्मदा ! क्या अग्निशिखा की तरह 'जलशिखा' शब्द हो सकता है? जलशिखा-सी यह नदी समुद्र तक पहुँचते-पहुँचते मशाल का रूप ले लेती है। जिस नदी को यहाँ एक बच्चा भी फलाँग सकता है, उसी नदी का पाट वहाँ 20 कि.मी. चौड़ा हो जाता है।

अमरकंटक से कपिलधारा तक नर्मदा सीधे-सपाट मैदान में से होकर बहती है। उसका रास्ता रोकने के लिए एक चट्टान तक नहीं, वह सीधी रेखा में बह सकती थी, लेकिन वह तो बहती है टेढ़ी-मेढ़ी, आड़ी-तिरछी। एक जगह तो वह इतनी चक्राकार बहती है कि लोगों ने उसका नाम ही रख दिया चक्रतीर्थ। नर्मदा अकारण ही इतनी आड़ी-टेढ़ी बहती है। मुझे तो इसका एक ही कारण समझ में आता है- उसकी वक्रगतिप्रियता! यह उसकी अपनी शैली है। सीधे सपाट बहना गंगा की शैली है।

कपिलधारा तक का मार्ग आसान है। लेकिन अधिकांश परकम्मावासी कपिलधारा नहीं जाते। सड़क पकड़कर डिंडौरी चले जाते हैं। दोपहर के पहले ही

हम लोग कपिलधारा पहुँच गए। यहाँ से एक पगडंडी शालवन में से होती हुई, नर्मदा के प्रायः संग-संग, पकरीसोंढ़ा तक जाती है। हम लोग इसी वनमार्ग से चले। यहाँ का शान्त सौन्दर्य देखते ही बनता है। मानो नीरवता के किसी मोहक संसार में आ गए हों।

धीरे-धीरे पेड़ों का घेरा घना होने लगा। सभी पेड़ शाल के थे और बौर से लद गए थे। इस कारण सजे-सँवरे लग रहे थे। नीचे गिरे सूखे पत्तों ने जमीन को इस तरह बँक दिया था कि वह दिखाई ही नहीं देती थी। उन पर चलते तो चर-चर की आवाज होती। उनका रंग ललामी लिए पीला था और पेड़ों में लगे पत्तों के हरे रंग से जरा भी कम आकर्षक नहीं था। उपेक्षितों का अपना सौन्दर्य होता है। वे निस्तेज भले ही हो गए हों, निरर्थक नहीं। आखिर वे भी तो इस वन-प्रदेश के अंश हैं।

बीच-बीच में नर्मदा दिख जाती। उसके तट पर बाबाओं की दो-एक कुटी भी मिली। आश्चर्य की बात यह थी कि हम पहाड़ उतरकर मैदान में आ गए और हमें पता तक न चला कि पहाड़ उतर गए हैं। लगा मानो समतल भूमि पर चल रहे हैं। दमगढ़ की घाटी से जब चढ़े थे, तब खड़ी चढ़ाई थी और लगा था कि पहाड़ चढ़ रहे हैं। उतरते समय लगा ही नहीं कि पहाड़ उतर रहे हैं।

पहाड़ खत्म तो खूबसूरत शालवन भी खत्म। अमरकंटक हरा-भरा पहाड़ है, एड़ी से चोटी तक शाल का परिधान पहने (या शाल ओढ़े) भद्र पहाड़। अमरकंटक का नाम मेकल भी है। मुझे उसका एक और नाम रखने की

अनुमति दी जाए, तो मैं उसका नाम रखूँगा शालभद्र।

शालभद्र नाम लेते ही शोणभद्र की याद हो आई। पहाड़ का यह पश्चिमी सिरा है, उधर पूर्वी छोर पर शोणभद्र है- उपेक्षित और अपमानित।

मेरा विचार है कि जिसने भी नर्मदा परिक्रमा की परम्परा चलाई, उसे शोण के प्रति थोड़ी उदारता दिखानी थी। उसे यह नियम बनाना था कि अमरकंटक का पहाड़ उतरते ही परकम्मावासी पहाड़ के किनारे-किनारे चलकर शोणभद्र तक जाएगा, उसे एक झलक देखकर वापस आएगा, फिर आगे बढ़ेगा। अगर वह

परकम्मावासी को मांडू भेज सकता है, जो नर्मदा से काफी दूर है, तो शोणभद्र तक क्यों नहीं? आखिर कभी नर्मदा और शोण के बीच मधुर सम्बन्ध रहे, दोनों का विवाह होने वाला था। अमरकंटक में पड़ोसी तो वे आज भी हैं। उसे इतनी इज्जत तो मिलनी चाहिए थी। इस बहाने अमरकंटक के पहाड़ की आधी परकम्मा भी हो जाती।

मेरा विश्वास है कि इस छोटी-सी पदयात्रा का अनुमोदन तो नर्मदा भी कर देती। नर्मदा आखिर माँ है और मुझे पूरी विनम्रता के साथ कहने दीजिए कि अब तो वह शोण की भी माँ है।

लेकिन जो हो गया, अब उसे बदला नहीं जा सकता।

मेरे साथी आगे निकल गए थे। मैं तेजी से उनकी ओर बढ़ लिया।

7. अमरकंटक से डिंडौरी

क्या गार्गी और कान्ता में कोई दैवी शक्ति आ गई है? आज पहले ही दिन हम प्रायः 18 कि.मी. चले थे और उन्होंने जरा भी थकान महसूस नहीं की। बल्कि आते ही खाना बनाने में जुट गई। इतना चलने के बाद जो पहला गाँव पड़ा, वह था पकरीसोंढ़ा- नर्मदा किनारे पसरी छोटी-सी बस्ती। रात को पाठशाला के बरामदे में सोए और ठंड में ठिठुरे।

दूसरे दिन रास्ते में किंरगी पड़ा। पहली यात्रा के दौरान मैं यहाँ दो दिन रहा था। जिनके घर रहा था, उनका नाम था केहरसिंह। सोचा, उनसे मिलते चलें। वे तो कहीं बाहर गए थे लेकिन उनकी पत्नी मिलीं। थोड़ी देर बैठकर आगे बढ़े और तीसरे पहर तक पचधार (भीमकुंडी) पहुँच गए। रात यहीं रहेंगे।

कोई डेढ़-दो घंटे बाद प्रसन्नता और उल्लास से भरी एक किशोरी आई और लगी हम सभी के पैर पड़ने। हम कुछ समझे नहीं। तब उसने कहा, "मैं केहरसिंहजी की बेटी हूँ। जब वे घर आए तो माँ ने उन्हें आप लोगों के बारे में बताया। बहुत खुश हुए और मुझ से कहा कि जाओ, उन लोगों को हमारे घर लिवा लाओ। आज आप हमारे घर रहेंगे। आपको चलना ही होगा।"

वह धूप में कोई 4 कि.मी. पैदल चलकर आई थी और इतना ही वापस जाना होगा। परायों से ऐसा प्यार! हम गहरे तक प्रभावित हुए।

केहरसिंह की बेटी का नाम मुहती है। ग्यारहवीं की परीक्षा दी है। पढ़ने में तेज है। उसके साथ एक युवती और है जो रिश्ते में उसकी मामी लगती है।

श्यामल, सुंदर चेहरे वाली वह युवती इतनी लज्जालु है कि पूछने पर सिर भर हिलाती है। मुहती अपने भावपूर्ण स्वर में बार-बार एक ही बात कह रही है- आप लोगों को हमारे घर चलना ही होगा!

गार्गी और कान्ता का दिल भर आया। कान्ता से रहा न गया। उसने मोहती के कपोलों को चूमा, माथे को सूंघा और उसे दोनों भुजाओं से बाँध लिया। मैं माँ-बेटी को ठगा-सा देखता रहा। फिर उसे स्नेह-भाव से समझाया कि जिस प्रकार नदी वापस नहीं जा सकती, उसी प्रकार परकम्मावासी भी वापस नहीं जा सकता।

कान्ता ने कहा, "बेटी, खाना खाकर जाना।"

किन्तु अभी नवरात्र चल रहे हैं और उन दोनों का व्रत है। हमारे पास फलाहार की व्यवस्था थी। वह उन्होंने लिया।

उन्हें निराश लौटाना हमारे लिए कम कष्टप्रद नहीं रहा।

यहाँ के लोकगीत-रीना और सुआ गीत-सुनने की ललक रहती ही है।

भाग्य से यहाँ की लड़कियाँ हमें वे गीत सुनाने को तैयार हो गई। आसानी से तैयार नहीं हुईं। यहाँ खुशमिजाज, हरफनमौला शरद का कौशल काम कर गया। उसे कोई लोकगीत आता था। उसने उसे गाना शुरू कर दिया और इसी के साथ लगा नाचने ! हमारे दल की महिलाओं ने भी गीत गाए। अब तक उन लड़कियों की झिझक दूर हो गई थी और अपनी सुरीली आवाज में उन्होंने सुआगीत शुरू किया-

सीता ला हरके लैगे रावण, सीता ला हरके रावण

दे माई मोला भिक्खा मोर सुआ हो, दे माई मोला भिक्खा। भिक्खा लेके निकले सीता, रावण चुरा के लैगे भोर सुआ हो। दौड़ो-दौड़ो बचाव लछमन, दौड़ो-दौड़ो बचाव लछमन रावण चुराके लैंगे मोर सुआ हो...

जब वे अपने कोमल करुणाद्र स्वर में 'दौड़ो-दौड़ो बचाव लछमन' कहतीं तो श्रोता भाव-विह्वल हो जाते। रामायण-महाभारत का यह कैसा राष्ट्रव्यापी प्रभाव है कि दूर-दराज के लोकगीत भी उनसे अछूते न रहे। लोकगीतों के जादू को ग्रामीण परिवेश-चाँदनी रात, अलाव, पेड़-पौधों और डोर-डंगर से अलग नहीं

किया जा सकता। वहाँ उनका माधुर्य कुछ और ही होता है.। परिवेश से कटकर वे अपना बहुत कुछ सौंदर्य खो बैठते हैं।

दल में सदस्य ज्यादा हैं, इसलिए सामान भी ज्यादा है। अकेले छोटू के बस की बात नहीं। हमें एक सहायक की जरूरत है। पता करने पर एक

की जगह दो चलने को तैयार हो गए। सवेरे आ जाएँगे।

थोड़ी देर में उनमें से एक की पत्नी आकर बोली, "हमारे चार बच्चे हैं और घर में खाने को कुछ नहीं। अगर आप हमें पेशगी देते जाएँ, तो मैं खाने की कोई व्यवस्था कर सकूँ।" उसे सौ रुपए पेशगी के रूप में दे दिए गए।

ठंड कल से भी ज्यादा है।

दूसरे दिन शाम को सिवनी-संगम पहुँचे। यहाँ सिवनी नदी नर्मदा से मिलती है। यहाँ कोई गाँव नहीं है। छोटा-सा मंदिर और धर्मशाला है। लेकिन बड़ और पीपल के विशाल पेड़ हैं और बड़े-बड़े चबूतरे हैं। यहाँ का नीरव एकांत मुझे इतना भा गया था कि पिछली यात्रा में यहाँ चार दिन रहा था। यहाँ के रतिराम तिवारी का स्नेहपगा आतिथ्य आज 24 साल बाद भी भूला नहीं था। लेकिन इस बार उन्होंने जो स्वागत किया, उसने तो उस प्रथम स्वागत को कहीं पीछे छोड़ दिया। उनकी पत्नी, बेटा, बहू-पूरा परिवार हम लोगों की आवभगत में लग गया। हम लोगों ने अपने को आत्मीयता के एक ऐसे घेरे में पाया, जहाँ प्यार ही प्यार था। दिल्ली के अखिल और मुंबई की गार्गी चकित हैं कि सर्वथा अनजान लोगों का ऐसा आत्मीय स्वागत हो सकता है।

साथ भोजन बना और साथ बैठकर खाया। पिछले गाँव से बोझा उठाने के लिए जो दो ग्रामीण साथ चल रहे थे, वे आपस में कह रहे थे, "कितने दिनों बाद आज भरपेट खाना खाया।"

इधर गाँवों में दाने-दाने को तरसते नर कंकाल, उधर शहरों में वेग से बढ़ता मोटापा ओबेसिटी। ओबेसिटी सार्थक शब्द है वह सिटी की उपज है। गाँवों

में मुझे शायद ही कोई मोटा या थुलथुल मिला हो।

हम लोग चबूतरे पर बैठे बातें कर रहे थे तभी अँधेरे को चीरती और तेज

रोशनी फेंकती एक बड़ी कार आकर रुकी और उसमें से उतरे मेजर जनरल रह चुके मेरे बालबंधु प्रेमदास शर्मा। हम लोगों की खोज खबर लेने सुदूर दिल्ली से आए थे। मेरी समझ में नहीं आया कि उसे सलामी दूँ या गले से लगाऊँ। कल हम लोगों के साथ पैदल चलेंगे, परसों वापस जाएँगे।

सुबह चलने लगे तो तिवारीजी के पूरे परिवार ने रुकने का बड़ा आग्रह किया पर जाना जरूरी था। तीसरे पहर के मध्य तक पथरकुचा पहुँच गए। नर्मदा-तट पर बनी रामकली बाई और उसके बेटों की झोंपड़ियाँ इतनी भा गई कि वहीं रह गए। पदयात्रा का यह बहुत बड़ा सुख है- जहाँ मन करता, वहीं डेरा डाल देते।

यहाँ इसी गाँव के एक निवासी ने हमें बताया, "छह दिन पहले की बात है। 42 परकम्मावासियों को समुद्र पार कराने के लिए एक नाव कतपोर से मीठी तलाई के लिए चली। नाव एक टापू के निकट पहुँची, तभी काले बादल घुमड़ आए, ठंडी हवाएँ चलने लगीं और बिजली भी कड़क जाती। आकाश काला हो गया और तेज बारिश होने लगी। समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगीं। तूफान जोर पकड़ता जा रहा था। नाविक ने तुरंत लंगर डाल दिया और हम लोगों से कहा कि किसी भी हालत में नाव को मत छोड़ना, कुछ नहीं होगा। भूलकर भी टापू पर मत जाना। थोड़ी ही देर में ज्वार आएगा और वह डूब जाएगा। लेकिन कुछ लोग इतना डर गए कि

मना करने पर भी तैर कर टापू पर चले गए। हम 21 लोग नाव को कसकर पकड़े रहे और 21 ही टापू पर गए। जो वहाँ गए, उनमें से अधिकांश मर गए, जो नाव को पकड़े रहे, वे सभी बच गए। मैं भी नाव को पकड़े रहा और बच गया। यह 3 अप्रैल 2003 की घटना है और गुजरात के अखबारों में भी छपी थी। वह एक भयंकर दुर्घटना थी और आज भी उसकी याद मुझे कँपा जाती है।"

'नौकाडूबी' की यह कहानी मन को बहुत उदास कर गई। कई बार हम स्वयं अपने दुर्भाग्य का कारण बनते हैं।

नहाने गए। पानी जरा भी गहरा नहीं। पानी में कई चट्टानें हैं। एक जगह सपाट-सी चट्टान पाकर शरद ने नदी के प्रवाह में ही शीर्षासन लगा दिया। सिर पानी में, धड़ बाहर !

64 तीरे-तीरे नर्मदा

रामकली और उसके बहू-बेटे हम लोगों के उनके घर रुकने के कारण पुलकित थे। छाया के लिए किसी ने बाहर आँगन में वृक्षों के बीच में एक बड़ी-सी प्लास्टिक शीट तान दी। इसे देखकर कान्ता ने कहा, "लगता है यहाँ किसी की शादी होने वाली है।"

रामकली मनिहारिन है, आसपास के गाँवों में चूड़ियाँ बेचती है। शाम घिरते ही उसने कान्ता को लाल चूड़ियाँ पहनाईं, गार्गी को भी पहनाईं। सिंदूर देकर कान्ता से कहा- माँम भर-लो। उसका मन रखने के लिए कान्ता ने माँग भर ली।

इसी घर से हवन-पात्र मिल गया तो उसमें अग्नि प्रज्वलित की गई। चंदोवे के नीचे, आँगन के मध्य में उसे रखा गया। दो पटे बिछा दिए गए। शरद ने हम दोनों से कहा, "अभी नवरात्र चल रहे हैं। मैया के तट पर हवन हो जाए। आप दोनों हमारे बुजुर्ग हैं, हम सभी चाहते हैं कि यह कार्य आपके द्वारा संपन्न हो।"

कर्म-कांड से मैं दूर ही रहता हूँ। साफ मना कर दिया। किन्तु जब सभी ने कहा तो कुछ खीझ और कुछ अकुलाहट के साथ पटे पर बैठ गया। पास के पटे पर कान्ता बैठी। शरद ने कहा, "मैं जब 'स्वाहा' बोलूँ, तब आप दोनों अग्नि में आहुति दें, बस।" मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि शरद को अनेक संस्कृत श्लोक कंठस्थ थे। श्लोकों के बीच में ज्यों ही वह 'स्वाहा' बोलता तो हम आहुति देते। पास-पड़ोस के ग्रामीण एकत्र हो गए थे और बड़े चाव से देख रहे थे।

तभी हवन रोककर शरद ने घोषणा की, "शादी की पचासवीं सालगिरह को लोग धूमधाम से मनाते हैं। कई लोग तो उसी शादी को दोबारा रचाते हैं। हमारे वेगड़जी की शादी को पचास बरस पूरे होने में बस दो बरस की देर है। क्यों न शादी की उस पचासवीं सालगिरह को माँ नर्मदा के सान्निध्य में हम आज ही मना लें?"

शरद का षड्यंत्र अब जाकर समझ में आया! इसकी जानकारी केवल हम दो को ही नहीं थी। यही नहीं, उन्होंने रामकली बाई को भी इसमें शामिल कर लिया था। तभी तो उसने कान्ता को चूड़ियाँ पहनाई थीं और माँग भरवाई थी। अब तो हम भी इस नाटक में खुशी-खुशी शामिल हो गए। संयोग से कान्ता ने उस दिन जो साड़ी पहनी थी, उसमें वह दुलहन जैसी लग भी रही थी। और मैं... मैं कितना

अंड-बंड दिखाई दे रहा था!
तभी शरद ने घोषणा की, "अब दूलहे की पगड़ी रस्म होगी।"
मैंने घबराकर कहा, "पगड़ी रस्म तो मरने के बाद होती है, मैं तो अभी जिन्दा हूँ !"
"क्षमा करें, दूलहे को साफा बाँधा जाएगा।"
गार्गी बहन की रंगीन चूनर से डॉ. मिश्र ने साफा बाँधना शुरू किया। उन्हें यह काम यह सोचकर सौंपा गया था कि उन्हें मरीजों को पट्टी बाँधने का अनुभव होगा ही। लेकिन उनसे अकेले जब यह नहीं बना, तो दो-तीन लोगों ने मिलकर कसकर बाँधा। कान्ता ने कहा, "खूब फब रहे हो!"
शरद ने कहा, "अब परिहारजी दूलहे का टीकाकरण करेंगे।"

मैंने फिर टोका, "टीकाकरण तो डाक्टर करते हैं। फिर शादी का कोई टीका निकला हो, ऐसा सुना तो नहीं।"
"क्षमा करें, परिहारजी दूलहे को तिलक लगाएँगे।"

शरद का संस्कृत श्लोकों का पाठ भी निरंतर चलता रहता। गनीमत थी कि वे गायत्री मंत्र थे। अगर उसे गरुड़ पुराण याद होता, तो उसी से हम दोनों की शादी करवा देता।

इसके बाद उसने जबर्दस्त घोषणा की, "दिल्ली से पधारे प्रेमदास शर्मा कन्यादान करेंगे।"

कन्यादान की रस्म पूरी होने पर कान्ता ने कहा, "शर्माजी, आज से आप

मेरे वालिद हुए।"

परिहारजी के अंगोछे से वर-वधू का गठबंधन हुआ। गार्गी ने गुजराती विवाह गीत गाया। स्थानीय महिलाओं ने वहाँ के गीत गाए, हमने एक-दूसरे को मालाएँ पहनाई और विवाह संपन्न! नर्मदा इतनी पास बह रही थी कि लगा यह विवाह नर्मदा के बैठकखाने में संपन्न हुआ हो। शरद ने पुरोहित और उद्घोषक की दुहरी भूमिका बड़ी जुगत से निभाई। वह गाँववालों को न्यौता देना भी नहीं भूला

था। पास-पड़ोस के काफी लोग आ गए थे। सभी को चना-चिरौंजी का प्रसाद दिया गया।

प्रीतिभोज शर्माजी की ओर से था। वे अपने साथ दिल्ली से एक नेपाली रसोइया ले आए थे और नाना प्रकार के व्यंजन भी। उस नेपाली ने क्या ही स्वादिष्ट पुलाव बनाया था ! हमने उसे दूँस-दूँस कर खाया। खीर भी बनी लेकिन अविस्मरणीय तो बस पुलाव था।

दूसरे दिन सबेरे चलने लगे तो रामकलीबाई ने मुझसे कहा, "हम अपनी बेटी का गौना अभी न करेंगे, बाद में लेने आना।"

बड़ी तेज सास निकली यह तो! मैंने कहा, "विदा की क्या जरूरत है, मैं तो घर जमाई बनने के लिए तैयार हूँ।"

दो बरस बाद हमारी शादी की 50वीं सालगिरह आएगी। उस अवसर पर

हमारे घर में कोई न कोई आयोजन होगा ही। लेकिन वह वैसा ही होगा, जैसे हजारों होते हैं- जाना-बूझा औपचारिक आयोजन। उसमें कौतूहल का भाव न होगा। उसमें न तो शरद जैसा अनाड़ी पुरोहित होगा (जिसने बगैर भाँवरों के ही हमारी शादी करवा दी) और न रामकली बाई जैसी स्नेहमयी सास। न पगड़ी रस्म होगी, न टीकाकरण और न ही प्रेमदास जैसा कन्या का पिता। उसमें नाटकीयता का कोई तत्त्व न होगा। तब उसमें रस ही कहाँ रह जाएगा? वह होगा आयोजन, यह था उत्सव नर्मदा तट पर सहसा उग आया प्यारा-सा उत्सव !

रामकलीबाई को कान्ता से ऐसा नेह हो गया है कि करबेमट्टा तक वह साथ चलेगी। वहाँ उसका मायका और दो बेटियों की ससुराल है। करबेमट्टा ज्यादा दूर नहीं। एक टीले पर देवी-स्थान है और वहाँ नाना प्रकार के त्रिशूल गड़े हैं। जैसे तने में से डगालें निकलती हैं और उनमें से छोटी डगालें और फिर टहनियाँ, उसी प्रकार एक बड़े त्रिशूल में से कई छोटे-छोटे त्रिशूलों को निकलते देखकर चकित रह गया था। आज उन्हें दोबारा देखूँगा और अपने साथियों को भी दिखाऊँगा।

किन्तु जब ऊपर गए तो देखा उन कलात्मक त्रिशूलों में से एक भी न था। कुछेक छोटे-छोटे त्रिशूल जरूर थे लेकिन बड़े आकार के सर्वांग सुंदर त्रिशूल गायब थे। विदेश के किसी संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहे होंगे।

यहाँ से प्रेमदास अपनी गाड़ी में चले गए। उनके साथ गार्गी, डॉ. मिश्र और परिहारजी भी चले गए। जाते समय डॉ. मिश्र बहुत भावुक हो उठे। रामकलीबाई अपने मायके गई। जाने से पहले बार-बार कहती रही,

"माया-ममता बनाए रखना।" हम पाँच आगे बढ़े।

तीसरे पहर तक लिखनी पहुँच गए। नर्मदा-तट पर छोटो लेकिन दो मंजिल वाली धर्मशाला है, उसी में रहे। गाँव पास में ही है। शाम को कुछ स्त्रियाँ जवारे सिराने आईं। उनमें से एक ने कान्ता से कहा, "बहन, मेरे घर टीवी है। चाहो तो देखने चले आना।"

कान्ता ने कहा, "हमें टीवी की नहीं, ढिबरी की जरूरत है।"

टीवी बनाम ढिबरी! मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि टीवी पर ढिबरी भारी पड़ी। शाम तक ढिबरी आ गई।

अगले दिन चरकुटिया में कबीरपंथी मुन्नासिंह के घर रहे। उस दिन रामनवमी थी। उसके यहाँ पूजा-पाठ और भजन-कीर्तन का आयोजन था। इसमें हम लोग भी शामिल हुए। सबेरे चल दिए। मड़ियारास में नर्मदा का किनारा काफी ऊँचा है और मंदिर और धर्मशाला भी है। सबेरे से लेकर तीसरे पहर तक स्नानार्थियों की भारी भीड़ रहती है। यहाँ हमने दोपहर का विश्राम किया और आगे बढ़े।

आगे गोमती (मछरार) पड़ी। उसकी मुख्य धारा में काई के कारण बड़ी फिसलन थी। वह सँकरी ही थी, मैं तो उसे लाँघ गया लेकिन कान्ता के लिए यह संभव न था। प्रवाह में पैर रखकर ही वह उसे पार कर सकती थी। उसने हाथ बढ़ाया तो मैंने उसका हाथ थाम लिया। पहले उसने लाठी जमाई, फिर प्रवाह में पैर रखा। रखते ही फिसला और हम दोनों धड़ाम से पानी में गिरे।

पानी गहरा नहीं था। किसी तरह उठे। चोट-वोट तो दूर, खरोंच तक नहीं आई। कान्ता ने कहा, "मैं तो गिरी ही, आपको भी गिराया।"

बात सच थी। लेकिन इस समय सच से ज्यादा जरूरी झूठ था- एक प्यारा-सा झूठ। मैंने कहा, "तुम भले ही गुरुत्वाकर्षण के कारण गिरी हो, मैं तो किसी और ही आकर्षण से गिरा हूँ।"

तब तक शरद आ गया था। उसने कहा, "रोज आप अलग-अलग नहाते थे, गोमती की इच्छा थी कि आज साथ नहाएँ।" कमर तक के कपड़े भीग गए थे। गीले कपड़ों में ही चल दिए। थोड़ी देर में सूख भी गए।

रात लछमनमड़वा में रहे। यहाँ उस साध्वी की सहज ही याद हो आई जिनसे मैंने कहा था कि नौकरी के कारण एक साथ परिक्रमा नहीं कर सकता, छुट्टियों में थोड़ी-थोड़ी करके करता हूँ, तो उन्होंने कहा था, "बेटा, इसकी चिंता न करना। बूंदी का लड्डू पूरा खाओ तो मीठा, चूरा खाओ तो मीठा।"

यहाँ से डिंडौरी दूर नहीं। दस बजे तक पहुँच गए। घाट पर नीमाबाई और उसकी बहन ने धर्मशाला बनवाई है और परकम्मावासियों को भोजन भी कराती हैं। नीमाबाई के साँवले-सलोने मुखड़े पर दूध से सफेद दाँत ऐसे लग रहे थे मानो मोती जड़े हों। वह बहुत ही भले ढंग से मुसकराती। उसका चेहरा जितना कोमल था, मुसकान उतनी ही पवित्र।

यहाँ यात्रा समाप्त हो गई। शाम को घर चले जाएँगे।

अमरकंटक से डिंडौरी तक की पूरी यात्रा में कान्ता साथ रही। मुझे खुशी है कि 67 वर्ष की आयु में वह यह पदयात्रा कर सकी। लेकिन मार्ग सरल था, प्रायः मैदान में से ही चलना हुआ। आगे डिंडौरी से मंडला तक की यात्रा बहुत कठिन होगी। यहाँ नर्मदा पहाड़ों में से बहती है। पगडंडी ऊबड़-खाबड़ और खतरनाक है। ऊँची-नीची राहों पर चढ़ते-उतरते चलना बहुत मुश्किल होगा। पैर भी रपटेगा। यात्रा की कठिनाइयों को देखते हुए मैं चाहता हूँ कि कान्ता न चले। और वह कह रही है कि मैं जरूर चलूँगी। "मार्ग के खतरों से डरकर न चलूँ इस भरोसे मत रहना।"

सच बात यह है कि इस उम्र में वह मुझे अकेले जाने देना नहीं चाहती। घर पर रहेगी तो दिन-रात उसे मेरी ही चिंता लगी रहेगी। वह मेरी हिफाजत के लिए चलना चाहती है। यह बात अलग है कि कल ही गोमती में वह खुद तो गिरी ही थी, मुझे भी गिराया था। लेकिन उसे समझाना व्यर्थ है। वह चलेगी जरूर।

दो बहनें भी थीं। युवा ही थीं। मैंने उनसे पूछा, "रास्ते में कोई तकलीफ

"कैसी तकलीफ ! मैया ने हमें फूल की तरह रखा है।"

माँ नर्मदे ! इस जिद्दी औरत को भी फूल की ही तरह रखना!

8. ऐसे स्नेही साथी कहाँ !

नर्मदा का तो मानो मैंने सीजन टिकट ही ले रखा है- एक अक्टूबर-नवंबर का, दूसरा मार्च-अप्रैल का। पदयात्रा के लिए यह समय सबसे उपयुक्त है। न ज्यादा सर्दी, न ज्यादा गरमी। भारी वर्षा के कारण पिछले अक्टूबर में हम नहीं जा सके थे। नर्मदा उफन पड़ी थी और कीचड़ और फिसलन के कारण किनारे से चलना संभव नहीं था।

अक्टूबर में हम तो नहीं चल पाए, लेकिन स्कॉटलैंड का माइकल चला। उसका जन्म मुंबई में हुआ था इसलिए भारत के प्रति उसके मन में बचपन से ही लगाव रहा। कभी उसने पटियाला और अजमेर के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाया भी था। 2000 में वह समुद्र से अमरकंटक तक की नर्मदा के उत्तर तट की पदयात्रा कर चुका था। अब अक्टूबर 2003 में अमरकंटक से सागर संगम तक दक्षिण तट की पदयात्रा के लिए भारत आया था। जब वह हमारे घर आया, तब पानी झमाझम बरस रहा था। हमने कुछ दिनों के लिए उसे रोक लिया था। लेकिन उसके पास समय सीमित था और क्रिसमस पूर्व वापस जाने का रिजर्वेशन भी हो चुका था। इसलिए वह अमरकंटक चला गया। किन्तु करंजिया से उसका फोन आया कि नर्मदा तट की कीचड़ से सनी पगडंडियों पर चलना जरा भी संभव नहीं, इसलिए

मैं सड़क से चल रहा हूँ। फिर डिंडौरी से फोन आया कि मैं सड़क पर फिसलकर गिर पड़ा और यहाँ एक होटल में पड़ा हूँ। इस खबर ने हमारी रही-सही आशा पर भी पानी फेर दिया और हमने यात्रा स्थगित कर दी।

ऐसे स्नेही साथी कहाँ! 71

लेकिन मार्च 2004 में चले। 15 मार्च को जबलपुर से बस से चलकर दोपहर तक डिंडौरी पहुँच गए। पदयात्रा डिंडौरी से शुरू होगी और महाराजपुर (मंडला) में समाप्त होगी। अमरकंटक, डिंडौरी और मंडला- कहीं भी रेल नहीं है। (कहने को तो मंडला में डेढ़ पसली की नैरोगेज रेल जरूर है, पर वह उसे जबलपुर से सीधे नहीं जोड़ती, इसलिए यात्रियों के लिए उसकी कोई खास उपयोगिता नहीं।) इतने बड़े भूभाग में रेल का न होना दर्शाता है कि यह प्रदेश कितना विपन्न और गरीब होगा।

पहले साथ चलने के लिए मुझे लोगों को मनाना पड़ता था, फिर भी कोई चलने को तैयार न होता था। अब इतने ज्यादा लोग चलना चाहते हैं कि मना करना पड़ता है। अनावृष्टि की तरह अतिवृष्टि भी कोई सुखद स्थिति नहीं। आखिर हम कितना राशन और कितना सूखा नाश्ता लेकर चल सकते हैं। बहुत बड़े बरतन लेकर चलना भी संभव नहीं। यात्री दल सीमित हो तभी यात्रा का आनंद है। किन्तु सहयात्री इतने आत्मीय हैं कि मना करना संभव नहीं। इस प्रकार हम 15 यात्री हो गए। प्रमुख हैं तपेन भट्टाचार्य और उनकी पत्नी दीप्ति। पति-पत्नी घूमने के बेहद शौकीन हैं। हिमालय के दुर्गम स्थलों का फेरा कई बार लगा चुके हैं। बंगला की अनेक कविताएँ तपेन बाबू को कंठस्थ हैं। इतना ही नहीं, मेरी दोनों परिक्रमा पुस्तकों का बंगला अनुवाद भी उन्होंने ही किया है। (मेरी परिक्रमा पुस्तकें

गुजराती, हिंदी, मराठी, बंगला और अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुकी हैं।)

अहमदाबाद से फोटोग्राफर जोगेश ठाकर आए हैं। मेरी परिक्रमा पुस्तक पढ़कर वे नर्मदा-लोक में खो से गए। पुस्तक के कई अंश उनके मन को इतना उद्वेलित करते रहे कि उनसे रहा न गया और एक दिन मुझसे मिलने जबलपुर आ गए। जब मैंने उन्हें बताया कि मेरी पदयात्राएँ अभी चल रही हैं तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा और वे मेरे साथ जोशीपुर (होशंगाबाद) से सांडिया तक पैदल चले। नर्मदा-सौंदर्य से वे इतने अभिभूत हो उठे कि दूर-दराज के इलाकों में वे स्वतंत्र रूप से जाते रहे; कभी अकेले तो कभी परिवार के साथ और वहाँ की दृश्यावली को अपने कैमरे में कैद करते रहे। नर्मदा के चुने हुए फोटोग्राफों की कई प्रदर्शनियाँ कर चुके हैं। इस बार उनके साथ उनकी पत्नी पूनम, बेटी चाँदनी और

भतीजी मौलिका भी आई हैं। ठाकर कभी-कभार पूनम को लाड़ से पूजो कहकर बुलाते हैं, फिर इसका अर्थ भी समझाते हैं- पूनम का 'पू' और जोगेश का 'जो'-पूजो। पूनम बहन कहती हैं कि इस नाम से मुझे केवल ठाकर ही बुला सकते हैं, बाकी लोग पूनम ही कहेंगे। ठाकर इस बार मूवी कैमरा लेकर आए हैं, हमारी यात्रा का फिल्मांकन करते चलेंगे। किन्तु वे और बेटी चाँदनी केवल चार दिन ही चल पाएँगे। ठाकर पर व्यावसायिक दबाव है और चाँदनी की अगले माह से परीक्षाएँ शुरू हो रही हैं। पूनम बहन और मौलिका पूरी यात्रा में साथ रहेंगी।

चाँदनी बातूनी है लेकिन मौलिका बिरले ही बोलती है। दोनों सलवार-कुर्ता पहनती हैं। उन पर यह पहनावा फबता भी खूब है। दीप्ति और पूनम को

हमने हमेशा साड़ी में देखा था लेकिन वे भी सलवार-कुर्ता पहने हैं। यात्रा के लिए यह पहनावा बहुत सुविधाजनक भी है। अकेली कान्ता साड़ी पहने है। उसने कभी सलवार कुर्ता नहीं पहना। 68 वर्ष की आयु में पहनना न तो उसे अच्छा लगेगा, न मुझे। अगर पहनती तो ऐसा लगता मानो गाय पर जीन कसा हो।

दुर्ग से आए कान्तिभाई को शुरू में साहित्य से लगाव रहा, बाद में फोटोग्राफी से प्यार हो गया। उनमें एक कलाकार की दृष्टि है। मृदु और विनोदी स्वभाव के कान्तिभाई जरा बहरे हैं। मेरा विचार है कि बहरे प्रायः भले होते हैं। मैंने शायद ही कोई आदमी देखा हो जो बहरा और बुरा हो। कारण शायद यह हो कि दुनिया की काफी गंद सुनने से वह बच जाता है। बहरापन अच्छा आदमी बनने में सहायक होता है। अगर मंथरा बहरी होती तो राम को वन न जाना पड़ता।

खुशमिजाज शरद के बिना तो हमारी यात्रा हो ही नहीं सकती। उसकी फुलझड़ियों का हमें इंतजार रहता है। यह इलाका इतना विपन्न है कि अधिकांश गाँवों में न तो कोई मंदिर है, न धर्मशाला। हमें ग्रामीणों के घरों में ही रहना होगा। अपने हँसमुख और मिलनसार स्वभाव के कारण रात्रि-निवास के लिए आवास खोजना शरद के लिए बाएँ हाथ का खेल है। दाहिने हाथ से वह हिसाब लिखता है। हिसाब के मामले में वह बहुत चौकस है। कितना ही थका क्यों न हो, इसमें जरा भी प्रमाद नहीं करता। दल का कोषाध्यक्ष भी वही है।

मेरा भानजा आनंद अपनी युवा पत्नी रितु और नन्ही बेटी सेजल को घर

छोड़कर आया है। वह उनकी इच्छा के विरुद्ध आया है। उसकी माँ (और मेरी बहन) कहती है सिद्धार्थ की तरह वह इन दोनों को सोता छोड़कर आपके साथ चल रहा है। 1977 में जब मैं अपनी प्रथम नर्मदा पदयात्रा पर निकला था, तब आनंद के पिता और मेरे बहनोई हरिभाई का मुझे भरपूर सहयोग मिला था। वे तो अब नहीं रहे लेकिन उनके दोनों बेटों का मुझे और भी ज्यादा सहयोग मिल रहा है।

साथ में तीन सेवक हैं। गरीबा तो हम लोगों के साथ पहले भी चल चुका है। हम जानते थे कि इस बार अधिक सदस्य होने के कारण अकेले गरीबा से काम नहीं चलेगा, इसलिए उसी के गाँव के उसके दो हमउम्र दोस्तों को भी साथ में लिया है- कमलेश और शिवदीन। तीनों गोंड हैं।

हम सभी दोपहर की कड़ी धूप में डिंडौरी पहुँचे। सीधे नर्मदा-तट पर स्थित नीमाबाई की धर्मशाला गए। मेरे साथी मेरे यात्रा-वृत्त में नीमाबाई की 'पवित्र मुसकान' के बारे में पढ़ चुके थे और उससे मिलने को बहुत उत्सुक थे। मुझे डर था कि उसे देखकर कहीं वे यह न कह दें कि मैंने अतिशयोक्ति की है और मेरा वर्णन सत्य से परे है। मेरी विश्वसनीयता दाँव पर लगी थी। मुझे यह देखकर बहुत खुशी हुई कि मेरे साथी नीमाबाई से मुझ से भी ज्यादा प्रभावित हुए। ठाकर इतना अधिक कि उस पर एक छोटी वीडियो फिल्म करने का मन बना चुके हैं। नीमाबाई और उसकी बहन दोनों ही विधवा और निस्संतान हैं। दोनों ने अपना अपना खेत बेचकर यह धर्मशाला बनवाई है और परकम्मावासियों को भोजन भी कराती हैं। हम सभी को तुरंत भोजन करने बिठा दिया। भोजन बिलकुल घर जैसा था। हम लोग 15 थे, शाम को फगनूदादा आ गए तो 16 हो गए। फगनूदादा नर्मदा पदयात्रा के लिए सदा तैयार रहते हैं। आधे गृहस्थ

और आधे वीतराग हैं। परकम्मावासियों की तरह नंगे पाँव चलते हैं और चिलचिलाती धूप में भी उघाड़े बदन रहते हैं। इस इलाके के अच्छे जानकार हैं।

हमने देखा कि जब बड़ी संख्या में परकम्मावासी आ जाते हैं तो नीमाबाई के बरतन छोटे पड़ते हैं। हम लोगों ने उसे बाजार से उसकी पसंद के दो बड़े बरतन ले दिए। दुकानदार ने कहा कि आप इन पर अपना नाम खुदवा लीजिए तो हमने मना कर दिया और नीमाबाई का ही नाम खुदवाया। हमारे इतने बड़े काफिले को

उसने जो भोजन कराया था, क्या उसने उस पर अपना नाम खुदवाया था?

यद्यपि मार्च का मध्य है लेकिन रात को बहुत ठंड पड़ती है। कमरा बड़ा था फिर भी 16 लोगों के लिए थोड़ा छोटा था। पास-पास सोए। रात में जब नींद खुली तो देखा भयंकर आवाजें आ रही हैं। ध्यान से सुना तो पता चला कि ये भट्टाचार्य के खर्राटे हैं। वे राग भीमपलासी प्रस्तुत कर रहे थे। अजीब संगीत-सभा थी गायक ऊँघ रहा और श्रोता सो रहे !

शान्तिनिकेतन के आदि-पर्व में वहाँ दीनूबाबू रहते थे-दिनेन्द्रनाथ ठाकुर, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के परम प्रिय भतीजे और रवीन्द्र संगीत के भंडारी। उनका घर सड़क के किनारे था। रात को वहाँ से निकलने वाले गाड़ीवानों की कोशिश रहती कि उनके घर के सामने से आधी रात तक निकल जाएँ। आधी रात के बाद उनके खरटि शुरू हो जाते और गाड़ीवानों का कहना था कि उनके खर्राटों को शेर की दहाड़ समझकर हमारे बैल मारे डर

के इधर-उधर भागने लगते थे।

भट्टाचार्य ने दीनूबाबू की परंपरा को न केवल जीवित रखा है बल्कि आगे बढ़ाया है, क्योंकि वे आधी रात होने का इंतजार नहीं करते, सोते ही शुरू हो जाते। उनके खरटि थरथराहट से शुरू होते और गड़गड़ाहट से होते हुए घरघराहट में खत्म होते। फिर नीरव शांति छा जाती। लेकिन थोड़ी देर बाद फिर विस्फोट होता। पूरी रात में इनकी कुल प्रसारण अवधि एकाध घंटे से अधिक न होती लेकिन ज्यों ही खर्राटों की एक खेप खत्म होती तो मन में यह धुकधुकी लगी रहती कि अगली खेप आई कि आई। इसी आशंका में शेष रात बीतती। वैसे, उन खर्राटों में एक सांगीतिक अनुशासन था। शुरू का गर्जनभरा निनाद बाद में लयात्मक ध्वनि में बिखर जाता। यह सच है कि खर्राटे हम सभी लेते थे इस दौड़ में महिलाएँ भी शामिल थीं लेकिन कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली ! उनके खर्राटों की काट हम में से किसी के पास भी न थी। हमारे खरटि तो बस यूँ आए और यूँ गए।

सबेरे शरद ने मुझ से कहा कि आप दल के मुखिया हैं, आपको भट्टाचार्यजी के खर्राटों पर पाबंदी लगाने के लिए अध्यादेश जारी करना चाहिए। इस प्रस्ताव को खारिज करते हुए मैंने कहा कि इससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का हनन होगा। इसलिए इस विषय में मैं कुछ नहीं कर सकता।

ऐसे स्नेही साथी कहाँ! 75

भट्टाचार्य और दीप्ति की आँखों में एक-दूजे के लिए शुभ्र स्नेह के अलावा और कुछ नहीं। लेकिन जब हम भट्टाचार्य के खर्राटों की महिमा बखानते हैं तो दीप्ति उनका पक्ष न लेकर हम लोगों के दल में शामिल हो जाती है

और बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है। बुरा मानना तो दूर, भद्र पुरुष भट्टाचार्य हमारी बातों का रस लेते और मुसकरा देते। वे प्रायः विश्व शांति की बात करते हैं, उनका यह प्रिय विषय है। रात्रि की शांति भंग करने वालों को कम से कम विश्व शांति की बात नहीं करनी चाहिए।

ठाकर परिवार अमरकंटक से शाम तक आएगा। इसलिए हमें यहाँ आज भी रुकना है। सोचा, क्यों न रामघाट जाकर वहाँ के छोटे-छोटे प्रपातों को दोबारा देख लिया जाए। इसलिए सामने तट गए और छोटे-छोटे गाँवों से होते हुए भरी दोपहर को रामघाट पहुँचे। इस तट पर रामघाट, सामने तट पर लछमनमड़वा। हमारे साथी नहाने के लिए प्रपातों के पास गए तो भट्टाचार्य भी वहीं जाने लगे। दीप्ति ने चिल्लाकर कहा, "कोई करतब दिखाने की जरूरत नहीं, यहीं किनारे बैठकर नहा लो।" लेकिन भट्टाचार्य नहीं माने, वहीं गए। फिर तो दीप्ति खुद भी वहीं जाकर नहाई। पानी जरा भी गहरा नहीं। नदी पार करके सामने तट गए और शाम तक डिंडौरी वापस आ गए। प्रायः 15 कि.मी. चलना हुआ। कल से जो पदयात्रा शुरू होगी, यह मानो उसका पूर्वाभ्यास था। नीमाबाई की छोटी-सी रसोई में शानदार भोजन हमारी बाट जोह रहा था- हलुआ, पूड़ी, आलू-गोभी की सब्जी और रायता- क्या खूब !

रात को कुछ चतुर-सुजान अच्छी खासी ठंड के बावजूद कमरे में न सोकर बाहर बरामदे में सोए। किन्तु कान्तिभाई भट्टाचार्य के पास ही सोए। वे जरा बहरे हैं, खरटि उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। कान्तिभाई के पास शरद सोया। दरअसल ये दोनों भी इसी ध्वनि-संप्रदाय के सदस्य हैं। कभी-कभार इन तीनों के खर्राटे समूह-गान का रूप ले लेते तो उस त्रिवेणी संगम में स्नान करके हम धन्य हो जाते। ऐसा लगता, मानो प्राचीनकाल

के राजाओं की तरह महाराज तपेन भट्टाचार्य अपनी सेना के साथ दिग्विजय करने निकल पड़े हैं।

नर्मदा-पदयात्राएँ शुरू करने से पहले मैं डिंडौरी कई बार आया हूँ। यहाँ

नर्मदा को पैदल पार करते ग्रामीण खूब देखने को मिलते थे। साप्ताहिक बाजार के दिन तो उनका ताँता लगा रहता। सिर पर लकड़ियों का गट्ठर उठाए आदिवासी महिलाएँ, बाजार से सौदा लेकर घरों को लौटते ग्रामीण अथवा मुख्य प्रवाह आने पर एक दूसरे का हाथ पकड़कर नदी पार करती स्त्रियाँ स्केच करने के लिए कितने बढ़िया विषय थे। कभी किसी का पैर डगमगाता और वह गिर पड़ता, लेकिन दूसरे ही क्षम्म हँसता हुआ खड़ा हो जाता और गीले कपड़ों में ही आगे बढ़ता। मनुष्य और नदी के बीच की इस रस्साकशी में कैसा रोमांच था। ग्रामीणों के चुस्त-चपल अंगों को और उनके सौष्ठव को अपने चित्रों में ला सकूँ तो कितना अच्छा हो। नदी पार करते ग्रामीणों के कारण नदी सजीव हो उठती। छोटे-छोटे टापुओं पर उग आई ऊँची घास की आड़ में स्त्रियाँ नहातीं और कपड़े बदलतीं। हर बार मैं यहाँ के अनुपम सौंदर्य की छाप लिए घर लौटता।

किन्तु इनमें से अब कुछ भी नहीं रहा। नदी के एक ओर है चेकडेम (नदी के लिए मानो 'रास्ता बंद !') दूसरी ओर है बड़ा पुल और यहाँ पक्का लंबा घाट। अब यहाँ सीमेन्ट कंक्रीट का बोलबाला है। लोगों को सुविधा जरूर हो गई है लेकिन नर्मदा का सौंदर्य छिन्न-भिन्न हो गया है। पहले हम प्रकृति से संस्कृति में आए। यह बहुत अच्छा हुआ। लेकिन अब संस्कृति को विज्ञान के बुलडोजर से रौंदते हुए विकृति की ओर जा रहे हैं। ऐसा

करने से तो पृथ्वी का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा।

भोर की नर्मदा को देखते ही मेरा मन आनंद से भर उठा। हम सभी ने नर्मदा-स्नान किया, उगते सूर्य को प्रणाम किए और नर्मदा के आशीर्वाद का पाथेय लेकर 16 लोगों का हमारा दल 17 मार्च 2004 को सुबह-सवेरे, नर्मदा-तट की पदयात्रा के लिए चल पड़ा। चले तो थे हम बड़े जोर-शोर से, लेकिन जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि हमारे पास बहुत अधिक सामान है और यह तीन सेवकों के बस की बात नहीं। इतना अधिक बोझ लेकर चलना हमारी मजबूरी है। कोई 7-8 दिन तक ऐसा एक भी गाँव नहीं पड़ेगा जहाँ छोटी सी भी दुकान हो और हम कुछ खरीद सकें। इसलिए इतने बड़े दल के लिए पर्याप्त राशन और सूखा नाश्ता लेकर चलना जरूरी था। ठाकर के तरह-तरह के कैमरों और तीन पायों वाले स्टैंड

का वजन अलग था। हम डिंडौरी से ही दो और सहायक लेना चाहते थे, लेकिन गेहूँ की कटाई चल रही थी, ज्यादातर लोग खेतों पर काम करने गए थे, इसलिए बहुत खोजने पर भी कोई नहीं मिला। जैसे-तैसे चल तो पड़े पर जल्द ही समझ में आ गया कि हमें दो नहीं तो एक सहायक तो मिलना ही चाहिए। सामने जो भी मिलता, उसीसे पूछते, लेकिन कोई भी तैयार न होता। आखिर हम थककर एक जगह बैठ गए और चिंता में पड़ गए कि हमारी आगे की यात्रा कैसे हो पाएगी।

9. डिंडौरी से सारसडोली

आखिर कब तक बैठे रहते। चलने के सिवा कोई चारा न था। गरीबा और

कमलेश ने एक तरकीब निकाली। एक लाठी पर जितने झोले टाँगे जा सकते थे, टाँगे और लाठी का एक-एक छोर पकड़ कर चले। वे दो हंस, जिन्होंने इसी तरह एक कछुए को लाठी से लटका कर आकाश की सैर कराई थी, इस दृश्य को देखते तो जरूर खुश होते।

लेकिन समस्या का यह कोई हल नहीं था।

थोड़ा आगे बढ़े तो सामने से एक ग्रामीण आता दिखाई दिया। उसके चेहरे पर दोस्ती का भाव था। मुझे यह देखकर बड़ा अचरज हुआ कि वह ठाकर से बड़े प्यार से बातें कर रहा था और ठाकर के कहने पर वह हमारे साथ चलने को तैयार भी हो गया! पास में ही उसका गाँव था। घर जाकर एक थैले में उसने जरूरी सामान लिया, हमारा बोझ उठाया और हमारे साथ हो लिया। ठाकर ने ऐसा कौन-सा मंतर फूंका कि वह इतनी आसानी से हमारी मदद करने को तैयार हो गया!

ठाकर हमारे घर से दो दिन पहले निकले थे ताकि अपने परिवार के सदस्यों को अमरकंटक दिखा सकें। जबलपुर से अमरकंटक की बस डिंडौरी होकर जाती है। तब बस में ही उनकी इससे पहचान हुई थी। नाम है जीवन। जीवन शहर में मेहनत-मजदूरी करता था और अपने गाँव जा रहा था। यहाँ दोबारा भेंट हुई। ठाकर ने उसे हमारी परेशानी बताई तो वह तुरंत बोझा उठाकर साथ चलने को तैयार हो गया। दो दिन पहले हुई एक छोटी-सी आकस्मिक मुलाकात कितनी काम आई।

डिंडौरी से सारसडोली 79

दोपहर को एक पहाड़ी उतरते समय हमें एक ढलवाँ राह फलाँगनी पड़ी।

इसके बाद एक खड़ी अर्धवृत्ताकार पहाड़ी मिली। मैं और भट्टाचार्य उसकी चपटी चोटी पर चढ़े। दूर तक लहराती नर्मदा स्वच्छ, शुभ्र और जीवंत लग रही थी। ढलान पर गेहूँ के खेत थे। जब बयार चलती तो खेत झुक-झूम उठते। हमें लगा कि इस ढलान से उतरते और सुनहरी फसल से लहराते खेतों से गुजरते हमारे दल का फिल्मांकन बहुत रोचक होगा। ठाकर और आनंद इस काम में लग गए। हम सभी उस पहाड़ी ढलान पर चढ़े और दोबारा उतरे। उतरते समय शरद पीपे की तरह लुढ़कता हुआ काफी नीचे जा गिरा। हम घबरा गए। लेकिन बाद में हमारी घबराहट हँसी में बदल गई जब पता चला कि शरद ने यह करतब जान-बूझकर दिखाया था ताकि फिल्म जीवंत लगे। दुर्भाग्य से उस समय ठाकर के कैमरे का फोकस नदी की ओर था, इसलिए यह लोमहर्षक दृश्य फिल्म में आने से रह गया।

शाम को करनघाट पहुँचे। नदी के निकट शांत, एकांत, निर्जन स्थान। एक बाबा के सिवा यहाँ और कोई नहीं। रात यहीं रहे, सुबह चल दिए। चलते समय अपने-आप जोड़ियाँ बन जाती थीं भट्टाचार्य और दीप्ति, कान्ता और पूनम, ठाकर और आनंद, मौलिका और चाँदनी, फगनूदादा और मैं। जो साथ चलते थे, वे वार्तालाप किए बिना नहीं रह पाते थे। किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, साथ चलना मुख्य और बातचीत गौण होती गई। अंत-अंत में तो हम लोग 'हाँ-हूँ' पर उतर आए।

पथरीली पगडंडी से जा रहे थे। दुर्भाग्य से भट्टाचार्य का पैर पत्थर पर पड़ते ही पत्थर सरक गया और मजबूत कद-काठी के भट्टाचार्य लहरा कर धम्म से बैठ गए। थोड़ी देर तक वैसे ही बैठे रहे। जब पीड़ा कम हुई तो हमारे साथियों ने उन्हें सहारा देकर उठाया। उनका सामान दूसरों ने ले लिया। किसी ने अपनी लाठी उनके हाथ में थमा दी। हालाँकि वे धीरे-धीरे लंगड़ाते

हुए चल रहे थे, फिर भी उन्होंने अपनी यात्रा बदस्तूर जारी रखी।

पहले दिन से ही एक कुत्ता हम लोगों के साथ हो लिया था। वह रामघाट भी चला था और करनघाट भी आया था। लेकिन उसके बाद नहीं दिखा। आनंद ने

बताया कि सुबह वह पास के गाँव चला गया था और वहाँ उसने बड़ा हाथ मारा-एक मुरगे को ही मार डाला। मुरगे के मालिक ने उसे इतना मारा कि अधमरा हो गया और कुँकुआता हुआ वापस चला गया। उसे मुरगे का शिकार बहुत महँगा पड़ा। इस कुत्ते की क्षतिपूर्ति के रूप में एक दूसरा कुत्ता जाने कहाँ से आ गया। लेकिन उसे हम लोगों का व्यवहार अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं लगा, इसलिए हमें भगवान भरोसे छोड़कर वह भी चला गया।

खरमेर-संगम तक पहुँचते शाम हो आई। यहाँ भी कोई गाँव नहीं। एक बड़ी-सी कुटी देखकर आश्वस्त हुए कि रहने की व्यवस्था हो जाएगी। लेकिन जाकर देखा तो कुटी में ताला लगा था और वहाँ कोई नहीं था। खरमेर के उस पार एक गाँव दिखाई दे रहा था। हमने वहीं जाना ठीक समझा। अँधेरा घिरने से पहले वहाँ पहुँच जाना चाहते थे इसलिए बोझा लादा और चल पड़े। लेकिन थोड़ा ही चले थे कि कुटी का बाबा आ गया। बोला- कहीं मत जाइए, यहाँ सारी व्यवस्था हो जाएगी। इसलिए रात वहीं रहे।

कान्तिभाई शाही तबीयत के आदमी हैं। सबेरे उठते ही पहले अँगड़ाई लेते हैं, फिर जम्हाई और अगर चाय में देर हो गई तो उबासी का अंबार लगा

देते। लेकिन एक्यूप्रेशर के अच्छे जानकार हैं। किसी का माथा दुख रहा है, किसी के पैर में पीड़ा है, तो किसी के कंधे में दर्द है, वे एक-एक करके अपने मरीजों के पाइन्ट दबाते। दर्द कहीं भी हो पाइन्ट पैर के तलुए में रहता। पाइन्ट के दबते ही मरीज की हलकी-सी चीख निकल जाती और उसे पीड़ा और राहत का अनुभव एक साथ होता- अधिकतर राहत का। रोज शाम को उनका यह कार्यक्रम शुरू हो जाता। दो-एक तो उनके स्थायी मरीज बन गए थे। मैं सोचता, चिकित्सा की इस पद्धति में अँगड़ाई, जम्हाई और उबासी के पाइन्ट होते हैं या नहीं। वैसे प्रातः कालीन खुमारी को दूर करने का यह उनका अपना तरीका था और किसी को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

खरमेर संगम के बाबा बहुत पहले नर्मदा परिक्रमा कर चुके हैं। शूलपाण झाड़ी का अनुभव सुनाते हुए बोले, "बोरखेड़ी से चले पहला ही दिन था। लुटते लुटते मेरे पास केवल एक चादर बची थी। थका-माँदा शाम को एक भील की

झोंपड़ी जा पहुँचा। उसने रहने दिया, खाने को ज्वार की रोटी भी दी। सवेरे आगे बढ़ा। कोई आधा किलोमीटर ही चला था कि सामने से वही भील आ गया। चादर की ओर इशारा करके बोला- मूक! यानी रख दे। मैंने चादर तो दे दी लेकिन हँसी भी आ गई। मैंने कहा- कल मैं तुम्हारे घर ही तो था, तभी ले लेते, इतनी जहमत उठाने की क्या जरूरत थी। उसने कहा- कल तुम मेरे मेहमान थे।"

कल जो मेहमान था, आज शिकार है!

खरमेर पार करते समय शरद अचानक फिसल कर नदी में गिरा। हम सोचते थे कि फिल्मांकन को रोचक बनाने के लिए वह जान-बूझकर गिरा होगा, लेकिन बाद में पता चला कि वह सचमुच में फिसल कर गिरा था! एक चट्टान ने उसे दुलत्ती मार दी थी। भाग्य से दुलत्ती हलकी ही थी। ज्यादा चोट नहीं आई।

अब नर्मदा के दोनों ओर पहाड़ हैं। पहाड़ों के मध्य ही नर्मदा वस्तुतः अपने सही रूप में होती है। वहाँ उसकी छटा देखते ही बनती है। हम मानो चट्टानों के उपवन में से जा रहे हैं। कई जगह चट्टानों पर पानी के छपछपाते रहने के कारण नए-नए रूपाकार बन गए हैं- प्रत्येक आकृति दूसरे से भिन्न। ये प्रकृति के शिलालेख हैं।

नदी के साथ-साथ चलने के कारण दो दिन से हमें कोई गाँव देखने नहीं मिला था। इसलिए सोचा कि दोपहर तक नदी के साथ चलेंगे, इसके बाद ऊपर से चलेंगे ताकि किसी गाँव में रात बिता सकें। दोपहर के बाद जब ऊपर चढ़े तो सूखी-कँटीली झाड़ियों से पाला पड़ा। सभी के शरीर पर जगह-जगह खरोंचें आईं। अंततः ऊँचे पठार पर आ गए। मरवारीघाट पहुँचते शाम हो गई। पेड़ों के नीचे बने चबूतरों पर सोए।

निकलना तो चाहते हैं मुर्गे की पहली बाँग के साथ, लेकिन निकल नहीं पाते। फोटोग्राफी के लिए सबसे अच्छा समय सबेरे का होता है। उठते ही ठाकर अपना काम शुरू कर देते। इस कार्य में आनंद उनका अभिन्न साथी है। दोनों बारीक से बारीक विवरण पर सूक्ष्मता से ध्यान देते। बेहतर फिल्मांकन के लिए कभी किसी ऊँची चट्टान पर चढ़कर, कभी पानी में उतरकर तो कभी उकहूँ बैठकर फिल्म उतारते।

यहाँ से चले तो लगा कि पहाड़ों के गलियारे में से जा रहे हैं। चलने में मौलिका सबसे आगे रहती है और दीप्ति सबसे पीछे। पत्नी को छेड़ने के इरादे से भट्टाचार्य बोले, "कभी ढाका में ताँगों का बड़ा चलन था। सभी घोड़े तो अच्छे नहीं होते, कुछ मरियल भी होते हैं। एक ताँगेवाले का घोड़ा इतना गया-गुजरा था कि सबसे पीछे रहता। तो ताँगेवाला कहता है न शेर का बाच्चा! सबको खदेड़ दिया!" दीप्ति ने इसे सुना जरूर, पर कुछ बोली नहीं।

रात कनई संगम में रहे। पच्चीस वर्ष पहले की यहाँ की एक घटना मुझे अनायास याद हो आई। संकोचवश उसे लिखा नहीं था, लेकिन अब सोचता हूँ, देर से ही सही, मुझे उसे लिख देना चाहिए। अपनी प्रथम पदयात्रा के दौरान हम जिनके घर रात रहे थे, उन्हें गाने-बजाने का बड़ा शौक था। भोजनोपरांत उन्होंने अपने भजन सुनाने शुरू किए। थोड़ी देर तक तो हम सुनते रहे, लेकिन दिन भर चलते रहने के कारण बेहद थक गए थे, नींद के झोंके भी आ जाते थे, लेकिन वे रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। उनका गला बेसुरा था, गाने में जरा भी मिठास नहीं थी। मन मारकर सुनते रहे। मन में यह डर भी था कि यह महफिल सूर्योदय तक न खिंचे। उनके साथ उनका नौकर भी था। ज्यों ही भजन पूरा होता, वे उससे कहते तुम भी तो गाते हो, एक भजन तुम सुनाओ। ऐसा कहकर तुरंत दूसरा भजन शुरू कर देते ! उसे गाने का मौका ही न देते। जब देखा कि हमारे लिए और जगना संभव नहीं, तो अंत में उसे गाने के लिए कहा। प्रथम पंक्ति में ही हमारी नींद गायब हो गई। कैसा सुरीला गला था! तन्मय होकर सुनते रहे। भजन कब पूरा हो गया, पता ही न चला। हम चाहते थे

कि वह और भी भजन सुनाए, सुनाता ही रहे, तभी उन्होंने कहा, "काफी रात हो गई है, आप लोग थक गए हैं, कार्यक्रम समाप्त करते हैं।" नौकर अगर मालिक से अच्छा गाएगा, तो उसे इसका दंड भोगना ही पड़ेगा।

दूसरे दिन ठाकर, उनकी बेटी चाँदनी और आनंद घर चले गए। सामने तट से उन्हें बस मिल जाएगी। आनंद चार-पाँच दिन में वापस आ जाएगा।

शाम को सँकरीटोला पहुँचे। गिनती के घर। मंगलसिंह पोसाम का घर जरा बड़ा था, उसी में रुके। इसमें पाँच भाइयों का परिवार साथ रहता है। घर में प्रायः सभी तरह के जानवर थे। घोड़ा, गाय, बैल, बकरी, सूअर, मेमने, कुत्ते और

डिंडौरी से सारसडोली 83

बिल्ली। आँगन में मुर्गे मुर्गियाँ कुड़कुड़ करते घूमते रहते। एक मुर्गा बड़े घमंड से अकड़-अकड़ कर चल रहा था मानो इस घर का मालिक वही हो। जहाँ हमने खाना बनाया, वह बकरी बाँधने की जगह थी और जहाँ हम सोए, वह गाय बाँधने की। गायें बकरी से थोड़ी ही बड़ी होती हैं। पास के गाँव में सौ से भी अधिक गायें हैं लेकिन दूध 5 लीटर भी नहीं होता। कहीं हरियाली नहीं, कँकरीली-पथरीली बंजर जमीन। आदमी को ही खाने को नहीं, जानवर को कहाँ से खिलाएँ।

रात को खाना खाने बैठे। ढिबरी का प्रकाश पर्याप्त नहीं था। कहीं से एक बिल्ली आई और मेरी थाली में से रोटी उठाकर ले गई! यह तो सरासर ज्यादती थी। अगर वह मुझसे माँगती, तो क्या मैं इनकार करता? अपनी दरियादिली दिखाने के लिए मैंने उसकी ओर एक रोटी और फेंकी। उसने

नहीं ली। शायद उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँची हो।

ये पशु-पक्षी आखिर हमारे छोटे भाई-बहन ही तो हैं। जब ऋषि ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहा था, तब इस कुटुम्ब में उन्होंने पृथ्वी के समस्त पशु पक्षियों को भी शामिल किया होगा।

रात का घुप्प अँधेरा, जबर्दस्त सन्नाटा। हौले से उठा और बाहर आया। अँधेरे में चारो ओर की पहाड़ियाँ अपने वास्तविक आकार से कहीं बड़ी लग रही थीं। मैं इन पहाड़ियों की रूपरेखा को बड़ी तन्मयता से देखता रहा। पहाड़ी के पीछे से आधा चाँद निकला। पहाड़ियों ने उसकी अगवानी की। इन पहाड़ियों के साथ तो उसका रोज का उठना-बैठना है।

दिन चढ़ा तो आगे बढ़े। हवा गरम और ठहरी हुई थी। दोपहर होते-होते सूरज दहकने लगा। सभी के चेहरे काले पड़ गए थे। भट्टाचार्य ने दीप्ति को छेड़ा, "तुम्हारी सूरत बड़ी डरावनी लग रही है।"

"सुना दीदी, क्या कहा इन्होंने। कल मुझे शेरनी कहा था, आज डरावनी कह रहे हैं, कल शायद भुतनी कहें। अरे, तुम्हें ऐसी बातें करनी चाहिए या मुझे चंद्रमुखी कह कर हौसला बढ़ाना चाहिए?"

कान्ता ने कहा, "दीप्ति, तुम नानी बन चुकी हो। नानियाँ कहीं चंद्रमुखी होती हैं?"

"तो क्या डरावनी होती हैं?"

दीप्ति की बातें मजेदार होती हैं। हिन्दी वह बंगला लहजे में बोलती है। उसकी हिन्दी में बंगला का छौंक रहता है।

मौलिका, शरद और कान्तिभाई कन्हारी सबसे पहले पहुँचे। मालोबाई ने अपने यहाँ रहने की इस शर्त पर अनुमति दी कि आप मैया की परकम्मा कर रहे हैं, इसलिए पहले मैं आपके पाँव पखारूँगी, फिर रहने दूँगी। शरद ने कहा कि आप जैसी भोली और निष्पाप महिला के पाँव तो हम लोगों को पखारना चाहिए। यह बहस चल ही रही थी कि हम लोग भी पहुँच गए। मैंने कहा, "देखो, हम लोग 15-16 जनें हैं, किस-किस के पाँव पखारोगी। ऐसा करो, हमारे दल में यह जो कन्या है, तुम उसीके पाँव पखारो। कुँआरी कन्याएँ वैसी भी पूजनीय मानी जाती हैं।"

आखिर वह इस बात पर राजी हो गई। पर मौलिका राजी नहीं हुई। मौलिका को समझाने का काम पूनम बहन को सौंपा गया। पूनम बहन अपनी भतीजी को बेटी से कम नहीं चाहतीं। मौलिका कभी-कभी उनकी गोद में सिर रखकर सो जाती और पूनम बहन बड़ी मृदुता से उसके बालों को सहलातीं। मौलिका उनका कहना टाल न सकी। उस आदिवासी नारी ने बड़ी श्रद्धा से मौलिका के पाँव पखारे, तब कहीं हमें वहाँ रहने मिला। हमारा आटा खत्म हो गया था। मालोबाई ने हमें आटा दिया। गाँवों में घर तो छोटे होते हैं, पर उनमें बहुत ज्यादा प्यार होता है। रोज हमें नए-नए ग्रामीणों का स्नेह-स्पर्श मिलता तथा इन्हीं नए स्वजनों के कारण हमारा हर दिन आलोकित हो उठता।

रात को गीत-संगीत का कार्यक्रम हुआ। भजनों की अगुआई फगनूदादा ने की। मालोबाई ने रीना गीत सुनाए। दूसरे दिन जाने लगे तो रास्ता दिखाने दूर तक साथ चली।

सारसडोली ज्यादा दूर नहीं, जल्दी ही पहुँच गए। गाँव का नाम इतना भा गया कि यहीं रह गए। कहते हैं, पहले यहाँ सैकड़ों सारस आते थे, इसी से इसका नाम सारसडोली पड़ा। किन्तु अब एक भी सारस नहीं। सभी आदमी के पेट में चले

गए। गाँव में कुछेक छोटी-छोटी दुकानें हैं। एक दुकानदार के पास फोन भी है। कान्ति भाई की बाँहें खिल गईं। घड़ी घड़ी फोन करने चले जाते। कहते यहाँ फोन बहुत सस्ता है!

नर्मदा कल भी नहीं मिली थी, आज भी नहीं मिली। दो दिन से कुएँ पर स्नान हो रहा है। नर्मदा का तट इतना विकट है कि हमें मजबूरन छोड़ना पड़ा। किन्तु यहाँ से कोई 5 किलोमीटर दूर सलैयाघाट में नर्मदा है। मार्ग बहुत कठिन है, लेकिन हमें खाली हाथ ही तो जाना है। तीसरे पहर तक भी निकलें तो भी शाम तक वापस आ सकते हैं। वहाँ जाने के लिए कुल सात लोग तैयार हुए फगनूदादा, भट्टाचार्य, दीप्ति, पूनम बहन, शरद, कान्ता और मैं।

पगडंडी पहले तो बहुत आसान रही, लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गए, हमारी मुश्किलें बढ़ती गईं। मार्ग कई मोड़ों पर घूमता, बल खाता जाता था। हम चट्टानों से होते हुए एक छोटी-सी घाटी में उतर रहे थे- जमे हुए कदमों से और एक के पीछे एक। पत्थरों के कारण फिसलने का अंदेशा हरदम बना रहता था। यहाँ चलना मुश्किल और गिरना आसान था। मैं बराबर सोचता रहा कि लंगड़ा कर चलते भट्टाचार्य को यहाँ लाकर मैं

नादानी कर बैठा हूँ। किन्तु पगडंडी जितनी कठिन-कठोर होती गई, भट्टाचार्य की दृढ़ता उतनी ही बढ़ती गई। काफी देर तक चलने के बाद दूर पहाड़ों के मध्य में नदी का एक छोटा-सा टुकड़ा दिखाई दिया। हमारे लड़खड़ाते कदम सँभल गए। पैरों में नई ताकत आ गई।

एकाएक नर्मदा तक पहुँच गए। मानो किसी नाटक का परदा खुल गया हो। तीखे मोड़ के कारण नदी मानो दुहरी हो गई है। ऐसा लगा मानो कोई बच्चा अपने पैर का अँगूठा मुँह में लेने की चेष्टा कर रहा हो। नदी इतनी धीमी वहनी है, मानो है ही नहीं। उड़ते-उड़ते चिड़िया अपने डैनों को स्थिर कर लेती है फिर भी उड़ान जारी रहती है, उसी प्रकार नदी ने अपने प्रवाह को स्थिर कर लिया है फिर भी बह रही है। पहाड़ों ने नर्मदा को इतना छिपाकर रखा है कि बाहरी दुनिया उससे प्रायः अनजान रह जाती है। लगा, यहाँ जरूर किसी ऋषि ने तपस्या की होगी। हम उन्हें भले ही साक्षात न देख पाएँ, लेकिन एक सुगंध के रूप में वे आज भी विद्यमान हैं। हमारी आत्मा एक अकथनीय तृप्ति से भर उठी। महिलाओं ने कहा कि यहाँ आने

में उन्होंने जो जोखिम उठाया था, वह बिलकुल सही था।

यहाँ की मूक अभिव्यंजना ने हमें बाँध लिया। यहाँ कोई नहीं था-इक्का-दुक्का मछुआरा तक नहीं। हाँ, नदी-तट पर चिता की अधजली लकड़ियाँ जरूर पड़ी थीं। ऐसा भव्य निबिड़ एकांत या तो टाकिनघाट में था, या यहाँ है। यहाँ स्मशान की सुविधा भी है जो वहाँ नहीं थी। दोनों ही स्थान आध्यात्मिक एकांतवास के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। तभी सिर से पैर तक

काला लिबास पहने एक आदमी दिखाई दिया। कहीं मुर्दे जलाने वाला डोम तो नहीं! लेकिन वह तो था एक युवा परकम्मावासी। हमने तो नदी का किनारा छोड़ दिया था लेकिन वह बिलकुल नदी के किनारे-किनारे कूदता-फाँदता चला आ रहा था। वह कौन है, कहाँ से आया है, हम यह सब जानना चाहते थे, पर वह बात करना नहीं चाहता था, चुपचाप आगे निकल गया। नदी का तट उसने इस बीहड़ में भी छोड़ा नहीं था। कुछ लोग होते हैं जो जान हथेली में लेकर परिक्रमा करते हैं, प्रायः अकेले।

नर्मदा की इस वीथिका में से बाहर जाने का मन नहीं कर रहा। लेकिन घाटी पर शाम उतर रही थी, देर करना ठीक नहीं। फिर भी महिलाएँ अपने आपको रोक नहीं पाईं, तीनों ने स्नान किया और गीले कपड़ों में ही चल दीं। पथरीली पगडंडी और सीधी चढ़ाई। अँधेरा घिरने से पहले हम पगडंडी के खतरनाक हिस्से को पार कर लेना चाहते थे। अपने को ठेलते हुए से निस्तब्ध घाटी में बिना बोले जा रहे थे-गूँगों की तरह। शब्द कितने अनावश्यक थे !

10. सारसडोली से महाराजपुर (मंडला)

हम आधी दूर भी नहीं पहुँचे थे कि सूरज डूब गया और अँधेरा छाने लगा। अँधेरा कितना ही घना क्यों न हो, पूरा अंधकार कभी नहीं होता। अँधेरी से अँधेरी रात में भी तारों का कोमल प्रकाश रहता ही है। इसी प्रकाश में हमें अपनी पगडंडी का अहसास हो जाता था। फिर पगडंडी का खतरनाक हिस्सा पार करके सपाट मैदान में भी आ गए थे। अब पगडंडी समतल, सीधी और थोड़ी चौड़ी भी हो गई थी। हमने कदम तेज कर दिए। जब

पड़ाव पर पहुँचे तो देखा कि हमें लेकर हमारे साथी काफी चिंतित थे और टॉर्च और लाठी के साथ हमारी खोज में निकलने ही वाले थे कि हम पहुँच गए।

दूसरे दिन घंटे डेढ़ घंटे में मेंहदवानी पहुँच गए। रहने के लिए एक घर में बढ़िया जगह मिल गई। यह बड़ा गाँव है, यहाँ साप्ताहिक बाजार भरता है और बस भी आती है। आज रात को मेरा भानजा आनंद आएगा, इसीए यहाँ रुक गए हैं। यहाँ दो-तीन होटलें तो हैं, पर फोन नहीं। फोन न होने का दुःख कान्तिभाई ने होटल में जाकर भजिए और आलूबंडे खाकर दूर किया। समोसे की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

आधी रात को आनंद तो आया ही, मेरा छोटा बेटा नीरज 'भी आया। उसे भी फोटोग्राफी का शौक है। दोनों हमारे लिए प्रचुर खाद्य सामग्री ले आए हैं। रसद ठीक समय पर आई।

88तीरे-तीरे नर्मदा

यात्रा के प्रायः आरंभ से ही भट्टाचार्य मोच की परवाह किए बिना लाठी के सहारे लँगड़ाते हुए चल रहे थे। एक क्षण के लिए भी उनके मन में वापस जाने का विचार नहीं आया। लेकिन कल से दीप्ति भी लँगड़ा कर चल रही है। सुबह उठते ही भट्टाचार्य ने कहा, "आज हम लोगों ने घर जाने का निर्णय लिया है। मुझे अपनी चिंता नहीं। लेकिन दीप्ति के पैर में भी मोच आ गई है और उसकी तकलीफ बढ़ती जा रही है। इसलिए हमें जाना ही होगा।" हमें उनकी बात ठीक लगी। मोच की उपेक्षा करना ठीक नहीं। यहाँ से उन्हें बस भी मिल जाएगी। तभी दीप्ति आ गई। कान्ता का हाथ अपने

हाथ में लेकर बोली, "दीदी, जाना जरा भी अच्छा नहीं लग रहा। पर क्या करूँ, और आगे चलना संभव नहीं।" कहते-कहते वह रो पड़ी, आँखों में आँसू छलछला आए।

"यह क्या दीप्ति, तुम रो रही हो?"

"नहीं, मैं रो नहीं रही।" उसने आँसू पोंछते हुए कहा और दोबारा रो पड़ी। आँसू कान्ता की आँखों में भी थे। दोनों ने झिलमिलाते आँसुओं के पार एक-दूसरे को देखा। हठात् कान्ता ने उसे अपनी बाँहों में भर लिया। " अपना खयाल रखना। घर जाने के बाद मिलने आती रहना। अब तुम दोनों हमारे परिवार के सदस्य हो।"

भट्टाचार्य के मुँह से तो शब्द ही नहीं निकल रहे थे। हम उन्हें दूर तक छोड़ने गए। शेष यात्रा में ऐसा एक भी दिन नहीं बीता, जब हमने अपने इन प्यारे सहयात्रियों को याद न किया हो। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि एक लेखक और उसकी पत्नी तथा उसका अनुवादक और उसकी पत्नी चारों एक नदी के संग दस दिन तक साथ चले हों। अब वे महज अनुवादक नहीं, जिस पुस्तक का अनुवाद करेंगे, उसमें स्वयं भी होंगे।

उन्हें विदा करने के बाद हम लोग भी चल पड़े। थोड़ी देर में ठेलाघाट आ गए। ऊँची पहाड़ी पर स्थित जिस कुटी में मैं रात रहा था, वह खंडहर हो चुकी थी। यहाँ से नर्मदा की जो शोभा दिखाई दे रही थी, वह स्तब्ध कर देने वाली थी। हमारी ओर पहाड़ हैं, लेकिन सामने तट पर एक स्वच्छ घाटी फैली हुई थी। हरे भरे खेत थे और दूर पहाड़ भी थे। जब भी कोई अत्यंत सुंदर दृश्य देखता तो सोचता, सदा के लिए इसे अपने मन के परदे पर अंकित कर लूँ। लेकिन थोड़ी ही देर में उससे

भी सुंदर दृश्य दिखाई देता और फिर उससे भी सुंदर! तब सोचता, मैं तो सौंदर्य के खलिहान में आ गया हूँ, यहाँ सौंदर्य के एक-एक दाने का क्या हिसाब !

कभी नदी के पाट में से चलते, कभी खड़ी चढ़ाई चढ़ते, तो कभी तीखी ढलानों से उतरते नर्मदा के संग-संग चल रहे थे। उतार-चढ़ाव और खाई-खंदक ज्यादा से ज्यादा आ रहे थे लेकिन दृश्य भी एक से एक सुंदर आ रहे थे। नर्मदा पहाड़ों और चट्टानों से लड़ती भिड़ती जरूर है, पर उनके प्रति उसके मन में सम्मान का भाव भी है। ये पहाड़ उसे बहलाते हैं, लाड़ करते हैं और चकित भी करते हैं। नर्मदा को भी पहाड़ी अवरोधों से जूझना खूब आता है।

बिसवानी में नन्हेलाल के घर रहे। पहुँचते शाम हो चली थी फिर भी नर्मदा नहाने गए। कल सलैयाघाट में काले लिबास में जो परकम्मावासी मिला था, वह यहाँ भी मिला लेकिन बात यहाँ भी नहीं हुई। वह किनारे किनारे ही आया होगा, पथ कितना ही दुर्गम क्यों न हो।

सुबह चलने के लिए तैयार हो रहे थे। पास की झोंपड़ी के युवा पति पत्नी हमें कौतूहल से देख रहे थे। पास में उनका छोटा बेटा खेल रहा था। नन्हेलाल ने हमसे कहा, "बाजू की झोंपड़ी में इसकी बूढ़ी माँ अकेली रहती है। बहू-बेटे उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते, खास तो बहू, इसलिए अलग रहती है। इसे अपना खाना तो बनाना ही पड़ता है, कुएँ से पानी भी लाना पड़ता है। बड़ी दुखियारी है। आप इन्हें समझाइए, शायद आपके

कहने का असर हो।"

संयोग से तभी वह वृद्धा अपनी झोंपड़ी से बाहर निकली। छोटा-सा सूखा शरीर, झुर्रियों भरा चेहरा, बिखरे बाल। उसकी रीढ़ की हड्डी असाधारण रूप से झुक गई थी। उसे देखकर लगा मानो उसकी जिंदगी में से सभी रस सूख चुके थे। वह उदास, निर्विकार नजरों से हमें देखने लगी। देखकर दुख हुआ, पर उसके बहू-बेटे को हम भला क्या समझाते।

हमारे दल के सदस्यों के पास टॉफी थी। गाँव के बच्चों को बाँटते रहते थे। एक ने टॉफी देने के लिए बच्चे को अपने पास बुलाया। वह डरता-सहमता आया। टॉफी लेकर जाने वाला था कि मैंने उसके हाथ में दस रुपए का नोट रख दिया। वह

दौड़कर गया और नोट अपनी दादी को दे दिया! दादी ने उसे अपनी गोद में ले लिया।

हम भीतर तक द्रवित हुए। बेटे ने भले ही माँ को त्याग दिया हो, पोते ने अपनी दादी को नहीं त्यागा। दुखियारी दादी की एकमात्र खुशी यह पोता ही है। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ मानो कम हो गईं, आँखों में चमक आ गई और क्षीण-सी मुसकान भी आ गई।

इस पावन दृश्य के प्रभाव से बेटा भी अछूता न रह सका। माँ को अपनी बाँहों में भर लिया। "माँ, आज से तुम हमारे साथ रहोगी, हमेशा हमेशा के

लिए।" हमें कुछ कहना नहीं पड़ा। उस अबोध बालक ने हमारा काम कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से कर दिया था, अपने भटके हुए माँ-बाप को सही राह पर ला दिया था।

दोपहर डोकरघाट में बिताई। सूने खेतों और बंजर जमीन को पार करते हुए शाम को शक्तिघाट पहुँचे। यहाँ न तो कोई गाँव है, न कोई घाट। नदी से लगी जमीन थोड़ी अच्छी है इसलिए पास के मुंडी गाँव का एक किसान अपने परिवार के साथ यहाँ रहता है और खेती करता है। हम उसकी झोंपड़ी की ओर गए। आँगन में एक बच्चा सूखी रोटी खा रहा था। हमें देखते ही रोता हुआ घर में घुस गया। बच्चे का रोना सुनकर एक वृद्धा बाहर आई। हमारे साथ की महिलाओं को देखकर आश्वस्त हुई और बैठने के लिए बड़ी-सी चटाई बिछा दी। घर में तो जगह नहीं है, पर हम आँगन में सो सकते हैं। आँगन काफी बड़ा था और उस पर मंडप था जो डगालों और पत्तों से बना था। आसपास एक भी घर नहीं। बरसात में ये लोग अपने गाँव चले जाते हैं और यह जगह जलमग्न हो जाती है।

शाम से ही बदली हो रही थी। आधी रात को बूँदा बाँदी शुरू हो गई। पहले बुँदनियाँ, फिर बड़ी-बड़ी बूँदें। फिर तेज वर्षा। पत्तों से ढँके मंडप में से पानी टपकने लगा। सभी हड़बड़ा कर उठ बैठे। घर के भीतर जो ढिबरी टिमटिमा रही थी, वह बुझ गई। घुप्प अँधेरा। हमारे पास मोमबत्ती थी, वह जला ली। एक छोटी-सी मोमबत्ती भी कितनी महत्त्वपूर्ण हो सकती है! लेकिन बाद में बौछार के साथ हवा का जोर का झोंका आया और वह भी बुझ गई। अँधेरे में ही बाकी रात

काटनी पड़ी। अभाव की स्थिति में भी रहा जा सकता है।

बंजारों की तरह चल दिए। बादल बिखर गए थे और हवा शांत थी। रात गोरखपुर में रहे। यहाँ से रास्ता आसान है। आसान इसलिए है क्योंकि हमने नर्मदा का किनारा छोड़ दिया है। वह बहुत ज्यादा दुर्गम है। वैसे यह रास्ता भी बीच-बीच में सुरम्य वन-प्रदेश में से जाता है। जगह-जगह महुआ के फूलों की गंध हमारा स्वागत करती। सिंगारपुर होते हुए शाम को देवगाँव पहुँचे। यहाँ नर्मदा और बुढ़नेर का संगम है। रास्ते में हम जो सेवक लेते थे, वे आते-जाते रहते थे। जीवन कब का चला गया था। लेकिन अधेड़ बुद्धलाल और युवा गोविंदा यहाँ तक आए थे। बुद्धलाल को बराबर संदेह रहता कि उठाने के लिए उसे सबसे भारी गठरी दी गई है, इसलिए वह दूसरों से अदला-बदली करता रहता। लेकिन थोड़ी ही देर में उसे लगता कि इससे तो पहला वाला बोझा ही हलका था! उसे हमेशा अपना बोझा भारी और दूसरों का हलका लगता।

सोचता हूँ, मैं ही बुद्धलाल से कौन कम हूँ! मुझे हमेशा अपने दुखों की गठरी भारी और दूसरों की हलकी लगती है। अगर इनकी अदला-बदली हो सकती होती तो समझ में आ जाता कि इन सब में तो मेरी गठरी ही हलकी है!

गरीबा ने मुझे बताया था कि गोविंदा बहुत अच्छा गाता है। लेकिन इतना शरमाता है कि किसी के सामने नहीं गाता। हमने उसे गाने के लिए कई बार कहा, पैसे का लालच भी दिया, पर वह किसी तरह तैयार नहीं हुआ। आखिर कल मैंने उसे अकेले में गाते सुन ही लिया। वह बहुत धीमी आवाज में, मंद-मंद स्वर में गा रहा था। उसके स्वर में अद्भुत मिठास थी, उसके बोल में टीसते हुए दर्द की गूंज 'थी। एक ही पंक्ति को वह हुलास

के साथ दुहराए जा रहा था। मैं उसकी स्वच्छ सुरीली आवाज के घूँट पर घूँट पीता रहा। उसका गीत समाप्त होने से पहले ही मैं वहाँ से परे हट गया ताकि उसे यह न लगे कि किसी ने उसके गीत को जूठा कर दिया।

यहाँ से ये दोनों अपने-अपने गाँव लौट गए।

संगम पर पक्की और बड़ी धर्मशाला है, रात इसी में रहे। सुबह-सबेरे

92तीरे-तीरे नर्मदा

बुढ़नेर ओस में धुली पँखुड़ी जैसी लग रही थी। वह चट्टानों में से बह रही थी। सुंदरता के लिए कितना कम चाहिए नदी और चट्टानें, बस !

बुढ़नेर पार करके झुरझुरी रेत पर चले। फिर रेतीले कछार पर चले जहाँ किसानों ने टमाटर लगा रखे थे। फिर खेतों में से चले। शाम को रामनगर पहुँचे। कभी यह गोंड राजाओं की राजधानी रहा। यहाँ नर्मदा तट पर गोंड राजा हृदयशाह द्वारा 17वीं शताब्दी में निर्मित महल है। अब वह खाली पड़ा है। महल के बाहर नर्मदा-तट पर हर मंगलवार को साप्ताहिक बाजार भरता है। संयोग से कल मंगलवार है, कल यहीं रहेंगे, परसों जाएँगे। हाट की छपरी जैसी दुकानें खाली पड़ी थीं- साफ-सुथरी, लिपी-पुती। इन्हीं में से एक में रह गए। दुकानदार कल दोपहर को आएगा, तब तक तो रह ही सकते हैं।

तभी एक वृद्ध आए। बोले, "मंडला से एक सज्जन आए थे और आपके लिए यह चिट्ठी दे गए हैं।" चिट्ठी पूनम बहन के लिए थी। उसमें परेशान

करने वाली खबर थी। उनके अस्सी वर्षीय पिता का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया है और अस्पताल में हैं। सबसे बड़ी संतान होने के कारण मौलिका उनकी लाड़ली पौत्री है। दोनों को तुरंत अहमदाबाद लौट जाना चाहिए। अब हम कल यहाँ नहीं रुकेंगे, सबेरे महल देखकर चल देंगे।

सुबह महल देखने गए। काश, यह महल बोल पाता। उससे बातें कर के कितनी खुशी होती। किन्तु मैं कल्पना तो कर ही सकता हूँ-

इसे बनाते समय वास्तुकारों ने इस बात का ध्यान रखा होगा कि इसमें हवा और प्रकाश का अग्रवागमन अबाध गति से होता रहे। महल में ऐसे गवाक्ष विशेष रूप से बनाए होंगे, जहाँ से नर्मदा सतत दिखाई देती रहे। वैसे तो राज परिवार का हर सदस्य रोज सबेरे नर्मदा-दर्शन करता होगा, लेकिन बरसात में जब नदी उफन पड़ती होगी तो उसके रौद्र रूप को देखने पूरा परिवार ऊपर की मंजिल पर एकत्र होता होगा। महल के प्रांगण में बने स्नानागार के जल की कल-कल ध्वनि वातावरण में ताजगी भर देती होगी। सुबह हो या शाम, गीत-संगीत की स्वर-लहरियाँ बराबर सुनाई पड़ती होंगी।

प्रजा अपने राजा से आसानी से मिल सकती होगी। राजा का छोटा भाई प्रधान मंत्री अथवा सेनाध्यक्ष होता होगा। राज्य की सेना छोटी रहती होगी जिसमें पैदल, घुड़सवार, बल्लमधारी एवं धनुषधारी सैनिक शामिल रहते होंगे। रात गहराते ही महल असंख्य दीपों और मशालों से जगमगा उठता होगा। प्रवेशद्वार बंद हो जाते होंगे और महल पर शांति और निस्तब्धता छा जाती होगी।

पहली नजर में लगा कि आदिवासी राजाओं के लिए इतने बड़े महल की क्या उपयोगिता रही होगी। किन्तु कल्पना के नेत्रों से देख सकता हूँ कि इसमें केवल राजा और उसका परिवार ही नहीं रहता होगा, उनके दादा-दादी, नाना-नानी, चाचे-ताऊ, चाचियाँ, मौसियाँ, चचेरे मौसेरे भाई-बहन सभी रहते होंगे। पारिवारिक बंधन बहुत सशक्त रहे होंगे। इन्हें मिल-जुलकर रहना बहुत अच्छा लगता होगा। किलकिलाते बच्चों की भरमार रही होगी। हृष्ट-पुष्ट किशोरों को धनुर्विद्या और घुड़सवारी सिखाई जाती होगी। तैराकी की प्रतियोगिताएँ आयोजित होती होंगी। युवकों में गजब का हौसला होता होगा। संध्या-समय महल की महिलाएँ नर्मदा-तट पर टहलने निकलती होंगी। घूमना-फिरना सभी समय और सभी स्थानों पर निरापद रहता होगा और अपराध नाम मात्र को होते होंगे।

लोग प्रकृति से सहयोग करते होंगे, स्पर्धा नहीं। वे अपने आपको भूमि का सेवक मानते होंगे, स्वामी नहीं। उनका विश्वास होगा कि भूमि में एक आत्मा होती है तथा यदि हम उसका सम्मान करेंगे, तो वह अपनी उपज से हमें मालामाल कर देगी। बरसात का पानी थामने के लिए वे जगह-जगह तालाब बनवाते होंगे। वृक्ष लगाना उनका प्रिय शौक रहा होगा। आम और महुआ उनके प्रिय पेड़ और गेंदा उनका प्रिय पुष्प रहा होगा। उन्हें जड़ी-बूटी का अच्छा ज्ञान रहा होगा और इन्हीं से वे रोगों का उपचार करते होंगे।

गठीले और मजबूत शरीर वाले गोंड स्त्री-पुरुषों के उजले दाँत तो देखते ही बनते होंगे। स्त्रियों के अनहुँके अंग गुदनों से ढँके रहते होंगे। उनके लचीले शरीर से श्रम की सुगंध आती होगी। मेलों में राज्य के दस्तकार अपने दस्तकारी के सामान को बेचने आते होंगे। उनके पास मिट्टी, लकड़ी और धातु से बनी तरह तरह की मूर्तियाँ और खिलौने रहते होंगे। दस्तकार और

नहीं होगा, जैसा आज है। गहनों की इक्का-दुक्का दुकान ही होगी। महिला चाँदी के कंठहार और बाजूबंद की ओर आसक्ति से देखती होंगी। अधिकांश महिलाएँ सस्ते और साधारण गहने खरीद कर ही संतोष कर लेती होंगी। मेले के एक छोर पर ढोल-नगाड़ों के साथ नृत्य हो रहे होंगे तो दूसरे छोर पर नट अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे होंगे। झाड़-फूंक वाले ओझा भी रहते होंगे। इन मेलों में युवक-युवती एक दूसरे को अपनी आँखों में बसा लेते होंगे और आगे जाकर विवाह-सूत्र में बँध जाते होंगे। लोग सीधे, सरल, मेहनती और रूढ़िवादी होंगे। वे जो थे, वही बने रहना चाहते होंगे।

कुछ इस तरह का रहा होगा कोई चार सौ बरस पूर्व का जन-जीवन। जो महल कभी मदमस्त गोंड नर-नारियों की चपल धड़कनों से भर उठता होगा, वही महल आज सुनसान और वीरान पड़ा है और उसमें रहने वाले लोग समय की धुंध में खो गए हैं। जब 25 बरस पहले यहाँ आया था, तब यहाँ बंदरों और चमगादड़ों का बोलबाला था, लेकिन अब इसकी देखभाल की जा रही है और बेहतर स्थिति में है।

मंडला यहाँ से 22 किलोमीटर दूर है और शाम तक पहुँचना जरूरी है। इसलिए साप्ताहिक बाजार देखे बगैर ही चल पड़े। आगे जाने पर एक अकेला पहाड़ दिखाई दिया। वह 'काला पहाड़' है। हमें जल्दी न होती तो वहाँ जरूर जाते। दिन भर नीरस और उबाऊ सड़क पर चलते रहे। धूप अलग चमड़ी उधेड़ रही थी। हरियाली नाममात्र को नहीं। दरअसल डिंडौरी

से ही हम प्रायः सूखी, चटकी, बंजर जमीन पर से चल रहे हैं। लेकिन मंडला के पास आते ही हरियाली शुरू हो गई। रास्ता अब सघन अमराई में से है। खेतों में गन्ना और कछार में साग सब्जी। चारों ओर हरियाली। आखिर हमें नर्मदा का 'ग्रीन कार्ड' मिल ही गया !

महिलाओं की ऊर्जा पर मैं दिस्मित हूँ। निर्जन क्षेत्रों में लंबी-लंबी दूरियाँ तय कीं। थक कर निढाल हुईं फिर भी खाना बनाने के कार्य में जुट गईं और सबको खिलाकर बाद में खाया। स्त्रियाँ अपने अनुमान से कहीं अधिक कर सकती हैं। इस यात्रा से स्वयं महिलाओं का अपने शक्ति सामर्थ्य में विश्वास सुदृढ़ हुआ।

जब हम महाराजपुर (मंडला) पहुँचे तब सूरज बादलों में छुप गया था और

नदी की ओर से ठंडी हवाएँ चल रही थीं। हमने बंजर पार की ओर बंजर और नर्मदा के संगम में स्नान किया। मंडला सामने तट पर है, नाव से जाएँगे, लेकिन तभी जोरों से पानी बरसने लगा और हवा के कारण नदी में लहरें उठने लगीं। जो लड़का नाव खेता था, मैं उससे बात कर चुका था प्रति सवारी दो रुपए और अगर मामा-भानजे हों तो ग्यारह ग्यारह रुपए। मैं इसके लिए भी तैयार था क्योंकि मेरा भानजा आनंद मेरे साथ था। लेकिन इस अंधड़ में वह लड़का भाग गया था। अगर होता तो भी मौसम के इस बिगड़े मिजाज में हम उसकी छोटी-सी नाव में बैठकर नदी पार करने का साहस न करते।

कोई आध घंटे बाद पानी थम गया। तभी एक दिव्य पुरुष प्रकट हुए- मेरे

मित्र नरेशचंद्र अग्रवाल। वे और पुत्र आलोक दो गाड़ियाँ लेकर हमें लेने आए थे। घर पहुँचते ही आनन-फानन में थालियाँ लगा दी गईं। हम लोग औपचारिकता के फेर में नहीं पड़े, भोजन पर टूट पड़े। सारा भोजन डकार गए। घर की महिलाएँ जरूर खुश हुई होंगी- ऐसे कद्रदाँ रोज-रोज कहाँ मिलते हैं!

रात को घर आ गए। घर आते ही अच्छी-अच्छी खबरें आने लगीं। पूनम के पिताजी की हालत सँभल गई है और जल्दी ही घर आ जाएँगे। दीप्ति का पैर बिलकुल ठीक है और भट्टाचार्य का लंगड़ापन प्रायः समाप्त हो चुका है। कान्तिभाई दादा बन गए हैं, उनकी पुत्रवधू ने बेटे को जन्म दिया है। आकाशवाणी का जबलपुर केन्द्र मेरी पुस्तक 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' का प्रसारण करने जा रहा है। एक राष्ट्रीय टी.वी. चैनल हमारी पदयात्रा के समाचार जरा विस्तार से देना चाहता है। उसका संवाददाता और कैमरामेन हमें हमारे पिट्ठुओं के साथ नर्मदा-तट ले गए और वहाँ हमें ऊबड़-खाबड़ चट्टानों पर चलते फिल्माया। फिर प्रश्न पूछे। कान्ता से पूछा, "वेगड़जी तो नर्मदा के प्रति लगाव के कारण ये यात्राएँ कर रहे हैं। आप क्यों चल रही हैं?"

"वेगड़जी को नर्मदा से लगाव है तो मुझे वेगड़जी से लगाव है।"

दुर्भाग्य से यह वाक्य रिकार्ड नहीं हो पाया तो उसने यही प्रश्न दोबारा पूछा। इस बार उसने कहा, "सीता अगर राम के पीछे चौदह बरस तक वन में चलीं, तो मैं चौदह दिन तो चलूँ।"

ये उस नारी के शब्द थे, जिसने पिछले 48 वर्षों से मुझे बनाने-सँवारने में अपना सब कुछ होम कर दिया है। और ये उस नारी के शब्द भी हैं, जिसे साथ ले चलने में मैं हीले हवाले कर रहा था !

निस्संदेह में अच्छा पति नहीं। लेकिन इस देश में केवल अच्छी पत्नियाँ ही होती हैं, अच्छे पति नहीं। राम से लेकर गांधी तक कोई भी तो अच्छा पति नहीं था। फिर मैं अकेला ही कहाँ से कसूरवार ठहरता हूँ!

11. जबलपुर से छोटी बरमान

राहु एक चंचल बिलौटा है और पूनम का चाँद खीर का कटोरा। मौका पाते ही खीर चट करने के इरादे से वह उस पर झपटता है। (लुटेरे भला कहाँ नहीं!) क्षीर-ग्रहण की यह कोशिश ही चंद्र ग्रहण है। आज शरद पूर्णिमा है, चंद्र ग्रहण है और आज ही हम लोग नर्मदा परिक्रमा पर निकल रहे हैं। लेकिन बादलों के कारण हमें यह शायद ही देखने मिले।

इस बार हमारा दल कृष्ण पक्ष के चंद्र के समान है- क्रमशः घटता जाएगा। चलते समय 40 हैं लेकिन रात को ही 20 रह जाएँगे। वे हमें विदा करने

आए हैं। किन्तु घाट पर खड़े-खड़े विदा नहीं देंगे, सात किलोमीटर तक साथ चलेंगे, हम सब मिल-बैठकर भोजन करेंगे, तब घर जाएँगे।

17 अक्टूबर 2005 को हम सभी ग्वारीघाट में एकत्र हुए। दिन भर रुक-रुक कर बूँदा-बाँदी होती रही। इस कारण तीसरे पहर ही निकल पाए। नाव से नर्मदा पार करके दक्षिण-तट पर आए और 'नर्मदे हर !' के घोष के साथ चल पड़े। रात का पड़ाव हमारे आत्मीय श्री चौहान के फार्महाउस में है। सभी के भोजन की व्यवस्था भी उन्हीं की ओर से है। वहाँ पहुँचते रात हो गई। हमारा विचार था कि जाते ही भोजन तैयार मिलेगा, लेकिन उसका अता-पता न था। बात यह है कि हमारे आत्मीय कर्म-कांड वाले हैं। जब ग्रहण समाप्त हुआ, घर के सभी सदस्यों ने स्नान किया, तब ही भोजन बनाना शुरू किया। (हालाँकि घटाटोप बादलों के कारण न चाँद दिखा न ग्रहण। तो क्या हुआ, यह नाटक परदे के पीछे तो खेला ही गया होगा।) देर जरूर हुई लेकिन भोजन इतना सुस्वादु बना था कि हम अपनी

सामान्य खुराक से डेढ़ गुना खा गए। अगर क्वालिटी हो तो क्वान्टिटी बढ़ ही जाती है, यह भोजन-संहिता का माना हुआ नियम है। लेकिन इसके अपने खतरे भी हैं। बाद में हम अपने आपको अपराधी अनुभव करते हैं। सोचते हैं, जीभ के बहकावे में आकर पेट पर अत्याचार कर बैठे।

सुबह पता चला कि हमारे तीन सेवकों के हिसाब से सामान बहुत ज्यादा है। कम से कम दो सेवक और चाहिए। भाग्य से मिल भी गए। वे अपनी साइकिल लेकर आए हैं। कहते हैं, बोझा हम साइकिल पर लादेंगे। मैंने कहा कि आगे चढ़ाई-उतराई वाली ऊबड़-खाबड़ पगडंडियाँ आएँगी, नदी-

नाले आएँगे, साइकिल इन्हें कैसे पार कर पाएगी। उन्होंने कहा, "एक घुड़सवार को जितना भरोसा अपने घोड़े पर होता है, उतना ही भरोसा हमें अपनी साइकिल पर है।" उनकी बातें भरोसा दिलाने वाली थीं। मैं आश्वस्त हुआ।

हमारा दल चल पड़ा। थोड़ी देर में भेड़ाघाट आया, सबसे पहले धुआँधार आया। नर्मदा का सबसे सुंदर और सबसे प्रसिद्ध प्रपात। आज हम उसे दूसरी ओर से देख रहे हैं। पानी की दहाड़ तो दूर से ही सुनाई दे रही थी। पूरी तेजी से गिरते पानी का विकल उन्माद तो बस, देखते ही बनता था। नीचे खड्डू में पानी भयंकर रूप से मथा जा रहा था। वह मन में उल्लास भी जनमा रहा था और भय भी पैदा कर रहा था। हवा चलती तो प्रपात से फुहार उड़ने लगती और हमें भिगो देती। जिस खड्डू में पानी गिरता है, उसका आकार कटोरे जैसा है। लगता है संगमरमर की चट्टानों ने नर्मदा के आगे अपना भिक्षापात्र रखा है। लेकिन नर्मदा उसे ऐसा छलका देती है कि वह भिक्षापात्र न रहकर अक्षयपात्र बन जाता है।

धुआँधार के बाद नर्मदा की भिड़ंत संगमरमर की चट्टानों से होती है। इनमें घुसने के लिए नर्मदा इतनी सिमट सिकुड़ जाती है कि लगता है नर्मदा संगमरमरी सुरंग में से बह रही है। और चट्टानें ऐसी सफेद जैसे मक्खन लगी हुई हों। नर्मदा जहाँ सर्वाधिक सँकरी हो गई है, उसे बंदरकूदनी कहते हैं। यहाँ नर्मदा का सर्वथा नया रूप देखने मिलता है। धुआँधार में नदी बोलती ही नहीं, गरजती भी है। लेकिन यहाँ गरजना तो दूर, वह बोलती तक नहीं। नीरव, निःशब्द बहती है।

सरस्वतीघाट में भेड़ाघाट समाप्त। यहाँ से नर्मदा पुनः चौड़ी हो जाती है।

जबलपुर से छोटी बरमान 99

नर्मदा की सहायक नदी बुढ़नेर की विकट पदयात्रा में प्रदीप पूरी यात्रा में साथ रहा। मंजू से यह कहकर आया था कि मैं केवल 4 दिनों के लिए जा रहा हूँ। सच बोलता तो आने न मिलता। हम चाहते थे कि इस बार भी वह पूरी यात्रा में साथ रहे। प्रदीप भी यही चाहता था। लेकिन मंजू दोबारा गफलत नहीं कर सकती। वह चली ही इसलिए है कि प्रदीप जाने न पाए। सुबह हम लोग चले ही थे कि नदी तट पर एक नाव दिखाई दी। मंजू को इसी की प्रतीक्षा थी। प्रदीप और दोनों बच्चों को लेकर नाव में बैठ गई! सामने तट से कोई न कोई वाहन मिल ही जाएगा। बेचारा प्रदीप ! वैसे मंजू गलत न थी। कामकाजी महिलाओं की अपनी समस्याएँ होती हैं। उसे घर देखना है, नौकरी करनी है और बच्चों की पढ़ाई पर भी ध्यान देना है। पिता तो पितृ-दायित्व से बच सकता है, किन्तु माता मातृ दायित्व से कैसे बच सकती है?

रास्ते में थोड़े समय के लिए एक संन्यासी का साथ हो गया। यह उनकी चौथी परिक्रमा है। पहली परिक्रमा 10 वर्ष की आयु में अपने दादा के साथ की थी। कहने लगे, जब तक पैर में काँटा न गड़े, मजा नहीं आता। काँटे के गड़ने में जो मजा ले सकते हैं, वे अगर दुःख की चादर में लिपटे होंगे, तो वहाँ भी उन्हें खुशी की घंटियाँ बजती सुनाई देंगी।

शाम को धरतीकछार पहुँचे। यहाँ धर्मशाला नहीं है, सभी परकम्मावासी पेड़ के नीचे बने बड़े चबूतरे पर रात बिताते हैं। हम भी यहीं रहे। लेकिन सोए ही थे कि बादल गड़गड़ाए, बिजली कड़की और झमाझम पानी बरसना शुरू हो गया। भागकर पास के मकान के बरामदे में शरण ली।

सुबह चल दिए। सनेर में काफी पानी था और फिसलन भी थी। कुछ गिरे भी। लेकिन साइकिल वाले बोझा समेत साइकिल निकाल ले गए। खतरनाक पगडंडियों से भी साइकिल निकालने में उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई थी। साइकिल को राष्ट्रीय वाहन घोषित किया जाना चाहिए।

शाम को झाँसीघाट पहुँचे। यहाँ से मुंबई से आई गार्गी बहन, जो पहले भी दो बार चल चुकी हैं, और उनकी होने वाली बहू मैत्री घर चले गए। हमारे साथ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-बेटा, भाई-बहन, देवरानी-जिठानी सभी तरह के लोग

चल चुके हैं; सास और होने वाली बहू पहली बार चले। विनोदी स्वभाव के रुद्र और मैत्री के बीच देवर-भाभी का रिश्ता कायम हो गया था। दोनों के बीच गुनगुनी नोक-झोंक चलती रहती। इन्हीं के साथ मेरी बहन भागीरथी भी चली गई।

दूसरे दिन शाम को बेलखेड़ी पहुँचे। टेकसिंह पटेल के घर रहे। उन्होंने एक आपबीती सुनाई - कोई आठ बरस पहले की बात है। आँखों में बड़ी तकलीफ थी। उसके कारण भयंकर सिरदर्द रहता था। जबलपुर के डाक्टरों ने मुझे भगा ही दिया। बोले, अब मत आना, इसका कोई इलाज नहीं। हारकर इन्दौर गया। वहाँ के डाक्टर ने कहा कि तुम्हारी दोनों आँखें निकालनी पड़ेंगी, वर्ना तुम पागल हो जाओगे। मुझे लगा, सारा ब्रह्मांड मुझ पर ढह पड़ा है। अंधा होकर जीने के बजाय तो मर जाना बेहतर। घर जाकर सीधे नर्मदाजी गया। डुबकी लगाकर बोला- माँ, या तो मेरी आँखें ठीक कर दे या मुझे उठा ले। मुझे नहीं जीना। रोज नर्मदा-स्नान करता

और यही प्रार्थना करता। धीरे-धीरे आँखें ठीक होने लगीं और दो महीने में बिलकुल ठीक हो गईं।

थोड़ा रुककर बोले- उस दिन मैं मरने पर उतारू था। उस दिन की प्रार्थना मेरे शरीर के रोम-रोम से निकली थी। वह प्रार्थना नहीं, आर्तनाद था। वैसी जबरदस्त प्रार्थना मैं आज नहीं कर सकता। उस दिन की बात ही और थी।

जो असंभव था, आस्था के कारण संभव हुआ। उत्कट प्रार्थना और छद्म प्रार्थना में यही तो फर्क है। प्रार्थना आवेदन है। उसे स्वीकारना या नकारना प्रभु की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हमारी प्रार्थना ही ऐसी निर्मल हो कि प्रभु से उसे स्वीकार किए बिना रहा ही न जाए। एकाध साल से मैं भी मैया से मनुहार करता हूँ, पर कोई सुनवाई नहीं। कारण मेरी प्रार्थना मेरे हृदय का हिस्सा नहीं। वैसी अटूट आस्था और अविचल श्रद्धा नहीं। इसलिए मेरी प्रार्थना मैया तक पहुँच नहीं पाती, बीच रास्ते में ही बिला जाती है। अगर पहुँचेगी नहीं, तो सुनवाई कहाँ से होगी?

सुबह हमारे दल के छह सदस्य यहाँ से घर चले गए। इनमें से पाँच तो अहमदाबाद से आए एक ही परिवार के सदस्य हैं हमारे सहयात्री रह चुके फोटोग्राफर जोगेश ठाकर का पुत्र रुद्र, पुत्री चाँदनी और उनकी रिश्ते की तीन बहनें

जबलपुर से छोटी बरमान 101

तथा दुर्ग से आए कान्ति सोलंकी। यहाँ रुद्र के बारे में थोड़ा विस्तार से बताना जरूरी है। रुद्र ऊँचा-पूरा, हट्टा-कट्टा, हृष्ट-पुष्ट किशोर है। अभी 15

बरस का है लेकिन उसका वजन 80 किलो है। कहता था, "मेरा वजन मेरी कक्षा के मुताबिक बढ़ता था। जब मैं पाँचवी में था तब मेरा वजन 50 किलो था, छठी में 60 किलो, सातवीं में 70 किलो और आठवी में 80 किलो हो गया। उसके बाद मैंने वजन पर रोक लगा दी। तरह-तरह के व्यायाम करके वजन को स्थिर रखा है।"

जब नदी-नालों को पार करने की नौबत आती, तो वह सबकी मदद करता। किन्तु एक बार नदी पार करते समय वह खुद ही गिर पड़ा। तब किंजल, उसकी ममेरी बहन, बोली, "अब इसे कौन उठाए!" लेकिन वह खुद ही उठ खड़ा हुआ और नदी पार करने में किंजल की सहायता करने लगा। रुद्र इतना विनोदी है कि हम लोगों का हँसी के मारे बुरा हाल हो जाता। जब वह अपने पापा के गुस्से का आँखों देखा, गालों भुगता, हाल सुनाता तब हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाते। "पापा की अदालत में आपको अपना पक्ष रखने का कोई मौका नहीं दिया जाता, सीधे धुनाई शुरू हो जाती है। कष्ट पिटने में नहीं, पिटने के पहले जो क्षण होते हैं, उनमें होता है। वे बड़े कष्टदायक होते हैं। तय नहीं होता कि चाँटा किधर से पड़ेगा; इधर से भी पड़ सकता है, उधर से भी पड़ सकता है। कहीं से भी पड़े, आप अपना बचाव नहीं कर सकते क्योंकि दोनों हाथ सावधान की मुद्रा में नीचे रहने चाहिए। कहीं बचाव में हाथ उठ गया तो इसकी अतिरिक्त सजा मिलेगी। गलती चाहे मेरी हो, चाहे चाँदनी की, पिटना तो मुझे ही है। फिर भी मजे की बात यह है कि पापा के साथ मेरे संबंध मित्रवत् हैं। एक बार मैं दो विषयों में फेल हुआ था। मेरी अच्छी मरम्मत हुई थी। दो ही दिन बाद दोस्तों के साथ किसी यात्रा पर जाना था। पापा ने जाने की अनुमति तो दी ही पैसे भी उम्मीद से ज्यादा दिए।"

मैंने पूछा, "तुम्हारे पापा का वर्णन अगर मैं अपनी किताब में दूँ तो?"
"तो आप इसे अपनी आखिरी किताब समझिए।"
नहीं, मेरे ऊपर कोई खतरा मँड़रा नहीं रहा। ठाकर जितने कठोर हैं, उतने ही नरम भी।
रुद्र स्कैच भी अच्छे करता था। स्कैच करना उसके लिए बाएँ हाथ का खेल

था क्योंकि वह डिबरची है। कहता था, "स्कैच करने की मेरी अपनी शैली है। मैं केवल धड़ बनाता हूँ, मुझे सिर बनाना नहीं आता। जब सिर बनाना सीख जाऊँगा, तब उन धड़ों पर सिर बिठा दूँगा।" अपनी असहमति जताते हुए मैंने कहा, "तुम धड़ाधड़ स्कैच बना रहे हो यह तो ठीक है लेकिन बिना सिर के धड़ बनाने से आत्मा की अवमानना होती है। जब तक तुम सिर नहीं बनाओगे, उनकी आत्मा भटकती रहेगी।"

उसने कहा, "आत्मा क्या सिर में रहती है?"

उसके प्रश्न ने मुझे गड़बड़ा दिया। लेकिन इस छोकरे से हार भी तो नहीं मान सकता। उलझा-उलझा सा बोला, "नहीं केवल सिर में भी नहीं और केवल धड़ में भी नहीं। सिर और धड़ दोनों चाहिए।" रुद्र ने हम सभी का मन मोह लिया था। उसके कारण यात्रा में बड़ी रौनक रही। उसे तो हर यात्रा में साथ रहना चाहिए। वैसे रुद्र का तरीका गलत भी तो नहीं। स्वयं विधाता भी तो यही करता है! सोलहवीं शताब्दी के धड़ पर इक्कीसवीं शताब्दी के सिर बिठाता रहता है! चार सौ वर्ष पहले के आदमी के

मस्तिष्क और आज के आदमी के मस्तिष्क के बीच जमीन आसमान का फर्क है। किन्तु हृदय के आवेग तो वे ही हैं, जो हजारों साल पहले थे। लगता है, विधाता ने पहले से धड़ बना लिए हैं, समय के अनुसार सिर बिठाता रहता है।

हमारे छह सदस्य चले गए, फिर भी हम सात बचे हैं। मीनल फडणीस इन्दौर से आई हैं और हम लोगों के साथ पहली बार चल रही हैं। उन्होंने मेरी दोनों परिक्रमा पुस्तकों का मराठी में सुंदर अनुवाद किया है और पुणे से सुंदर ढंग से प्रकाशित इन पुस्तकों का महाराष्ट्र में बड़ा स्वागत हुआ है। मीनल बहन स्वयं भी बहुत सुंदर हैं- 65 वर्ष की आयु में भी अत्यंत सुंदर। अगर जवानी में कोई सुंदर है, तो वह भगवान की देन है। लेकिन कोई अगर अधेड़ावस्था या वृद्धावस्था में भी सुंदर है तो यह उसकी खुद की कमाई है। इसका अर्थ यह है कि वह नियम संयम से रहा है, उसने सात्त्विक जीवन जीया है और उसने भलाई के काम भी किए हैं।

शरद हम लोगों के साथ दो पदयात्राओं में चल चुका है। वह भी कम विनोदी नहीं। जितना विनोदी, उतना ही सेवाभावी। वह हमारा स्थायी कोषाध्यक्ष

भी है। मीनल बहन, शरद, कान्ता, मैं और हमारे तीन सेवक इस प्रकार अभी भी हम सात हैं।

रास्ता प्रायः नदी के पाट में से है। पीछे से एक दंडी स्वामी आए। उन्होंने भी ग्वारीघाट (जबलपुर) से परिक्रमा उठाई थी, हम लोगों से बहुत पहले

नवरात्र में, फिर भी पीछे रह गए थे। मैंने पूछा, इतने पीछे कैसे रह गए तो बोले, "मैं कोई बैल नहीं जो खेत जोतता फिरूँ।"

"आपने ग्वारीघाट से ही परिक्रमा क्यों उठाई?"

"हमारी मौज।"

वे हमें कल भी मिले थे लेकिन बात नहीं हुई थी। ट्रांजिस्टर लेकर चले थे जो निरंतर बजता रहता था। लेकिन अभी बंद था। पूछा, "ट्रांजिस्टर कैसे बंद है?"

"अभी मैं खुद बज रहा हूँ। नर्मदा के तार से तार मिलाकर चल रहा हूँ।"

क्या ही चुटीले जवाब थे। वे आगे निकल गए। आकाश में शरद ऋतु के रूई-से सफेद बादल हैं। मैं पहाड़ों पर पड़ती उनकी परछाइयाँ देखा रहता। पानी जिस पात्र में रखा जाता है, उसी का आकार ग्रहण करता है। उसी प्रकार बादलों की परछाइयाँ भी जिन पर पड़ती हैं, उन्हीं के अनुरूप हो जाती हैं। पहाड़ों के आरोह-अवरोह परछाइयों के आरोह-अवरोह बन जाते हैं। बादलों की परछाइयाँ चढ़ाई चढ़ जाती हैं, खाई में कूद जाती हैं और नदी के पानी पर सीधी-सपाट लेट जाती हैं। मानो आकाश में बैठे बादल अपनी परछाइयों से नीचे धरती पर अपना कठपुतली नाच दिखा रहे हों।

सुबह आगे बढ़े। शाम को करहैया पहुँचे। आश्रय की खोज में गाँव के प्रमुख व्यक्ति फौलादसिंह के खलिहान जा पहुँचे। खलिहान गाँव में ही था और वहाँ एक अच्छा मकान भी बना था। उन्होंने कहा, आप यहीं रहिए, आपकी सारी व्यवस्था हो जाएगी। एक नौकर से कहा कि आप लोगों को

सदाव्रत दो। हमें उसकी आवश्यकता न थीं, पर वे बड़े रौब दाब वाले व्यक्ति थे और जिस तखत पर बैठे थे, वहाँ बंदूक भी रखी थी। हमें बंदूक की नोक पर सदाव्रत लेना पड़ा। जो सदाव्रत मिला वह दो दिन के लिए काफी था। मुझसे रहा न गया। थोड़ी देर बाद

हिम्मत करके पूछ ही लिया, "यहाँ न तो डाकू हैं, न जंगली जानवर, फिर आप यह बंदूक क्यों रखे हैं?"

उन्होंने हँसकर कहा, "मुझे बचपन से ही बंदूक का शौक रहा। वह अभी तक गया नहीं। इसका कोई उपयोग नहीं, फिर भी वह मेरे पास होनी चाहिए।"

उपयोग कैसे नहीं, उसी के डर से तो हमने सदाव्रत लिया था !

सुबह आगे बढ़े। रास्ते में एक महिला मिली जो गेहूँ पिसवाने सामने तट जा रही थी। 3 कि.मी. जाना और उतना ही आना। नाव में उतराई भी लगेगी। उसने बताया, "वैसे तो एक आदमी से पाँच रुपए लेते हैं, लेकिन हम लोग साल भर के लिए चार कुड़ा अनाज दे देते हैं, इसलिए हमें पैसे नहीं देने पड़ते।" गाँवों में वस्तु-विनिमय युग के अवशेष अभी भी शेष हैं। इतनी मेहनत से पिसवाकर जो आटा ले आएगी, परकम्मावासियों को सदाव्रत भी उसी में से देगी।

आगे छोटा धुआँधार पड़ा। नदी में कई छोटे-छोटे प्रपात हैं। पानी एक से

दूसरी चट्टान पर छलांग लगाता हुआ बह रहा था। पानी की इस उछल-कूद के कारण जल में चेतना आ गई थी। नदी का जुझारू रूप हमेशा ही देखने योग्य होता है।

शाम को घूरपुर पहुँचे। साहबसिंह के घर रहने की व्यवस्था हो गई। रात में पास के गन्ने के खेतों से लड़ैया की 'हुआं-हुआं' सुनाई देने लगी। साहबसिंह ने कहा, "किसान पहले सोयाबीन बोते थे, लेकिन अब गन्ना लगाते हैं। गन्ना लगाते ही उसमें रहने के लिए लोमड़ियाँ आ गईं।"

पड़ोस में देर रात तक महिलाएँ झाँझ और ढुलकिया के साथ भजन गाती रहीं। बीच-बीच में गन्ने के खेतों से लोमड़ियाँ जिस तरह लंबी-लंबी तानों में 'हुआं-हुआं' करती रहीं, उसका मतलब 'वाह वाह! वाह वाह!' ही हो सकता है।

सुबह आगे बढ़े। सामने से एक आदमी सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिए आ रहा था। उससे थोड़ी बातें हुई। शरद ने कहा कि गट्ठर घर रख आओ और चलो हमारे साथ। उसने तुरंत गट्ठर नीचे पटका और बैठ गया। बोला "मैं हर किसी से बात नहीं करता। आप लोग लायक जान पड़े, इसीलिए गट्ठर फेंका और बैठ

गया।" उसके गट्ठर में कुछेक लकड़ियाँ टेढ़ी-मेढ़ी गठान वाली थीं। शरद ने कहा, "ऐसी लकड़ियों को त्रचाकर रख लिया करो, शहरों में कला के नाम पर अच्छे दामों में बिक जाएँगी।" उसने तपाक से कहा, "पैसे कमाने का मुझे शौक नहीं।"

था तो लकड़हारा, पर मिजाज से शहंशाह था।

शाम को छोटी बरमान पहुँचे। रात में सोयाबीन के काले कीड़ों ने बहुत परेशान किया। झुंड के झुंड बिजली के बल्ब के नीचे मँडराते रहते। फर्श पर मरे हुए कीड़ों की पर्त बिछ गई। चलना-फिरना मुश्किल हो गया। जब हम उनकी अवहेलना (और अवमानना भी) करना सीख गए, तभी खाना खा सके।

मीनल बहन बुरी तरह से थक गईं थीं और दो दिन से उन्हें हलका बुखार भी था। उन्होंने घर जाने का निर्णय लिया। सामने तट से उन्हें बस मिल जाएगी। वादा करके गईं कि अगली बार आऊँगी, तो वजन कम करके आऊँगी। तब चलने में आसानी रहेगी।

ऐसा कम ही होता है कि एक लेखक और उसके अनुवादक कई-कई दिनों तक एक साथ पैदल चलें। इस विषय में मैं बहुत भाग्यवान हूँ। पहले मेरी पुस्तकों के बंगला अनुवादक तपेन भट्टाचार्य साथ चले पत्नी दीप्ति के साथ और अब मराठी अनुवादिका मीनल बहन चलीं। कोई खास स्थान आने पर मैं कहता, "वो देखो ! वही है वो धर्मशाला, जहाँ ठंड से बचने के लिए मैंने मोमबत्तियाँ जलाई थी।" अथवा "यही है वो धर्मशाला, जिसके बरामदे से कुत्ता हमारे नाश्ते का थैला ले गया था।" इसी प्रकार किसी विशेष स्थान के आने पर मैं अपना वही खटराग अलापने लगता और एक संत के धैर्य के साथ वे उसके बारे में विस्तार से बताने लगतीं। लेकिन अब उनमें ताकत का एक रेशा तक नहीं रह गया था। हमने भी उनके निर्णय का समर्थन किया। उन्हें छोड़ने हम दोनों नाव तक गए। जब लौटे तो लगा मानो बेटी को बिदा करके आए हों।

एक दुख के बाद दूसरा दुख आ पहुँचा। शरद के मोबाइल पर समाचार आया कि ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता लेखक निर्मल वर्मा नहीं रहे। सुनकर मन बैठ गया। निर्मलजी ने मेरी पुस्तक' अमृतस्य नर्मदा' की अत्यंत सुंदर प्रस्तावना लिखी

थी। उन्होंने गिनती की प्रस्तावनाएँ लिखी हैं, शायद तीन या चार, उनमें से एक मेरी है। उनसे प्रत्यक्ष मिलने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला। उनसे मिलने की बड़ी इच्छा थी, वह सदा के लिए अधूरी रह गई। यह भी कैसा संयोग कि उनके देहावसान का समाचार मुझे नर्मदा-तट पर ही मिला।

नर्मदा के निर्मल जल में खड़े होकर, पूर्व की ओर मुँह करके और अँजुरी में जल भरकर, मैंने निर्मलजी को श्रद्धापूर्वक अर्घ्य दिया।

12. छोटी बरमान से होशंगाबाद

सुबह की सुनहरी धूप का आनंद लेते, नदी में डोंगियाँ खेते मछुआरों को

देखते, खाई-खड्डू पार करते अथवा काँटेदार झाड़ियों के बीच से निकलते हम जल्द ही यात्रा की लय ताल में खो गए। जहाँ मन करता सुस्ताने बैठ जाते। एक जगह विश्राम करने बैठे तो एक ग्रामीण अपने गुरु के बखान करता हुआ बोला, 'बड़े विकट हैं मेरे गुरु। नाम ही है हर हर बाबा महादुष्ट। न कंठी, न माला, न गुरिया। न दाढ़ी, न मूँछ, पर जटा शंकर जैसी। उनका कहना है कि "पुरुष का गुरु स्त्री है और स्त्री का गुरु पुरुष। पुरुष को शक्ति की उपासना करनी चाहिए-दुर्गा या नर्मदा की। वह स्वयं पुरुष है इसलिए उसे पुरुष-देवता की उपासना करने की जरूरत नहीं। स्त्रियों को राम या हनुमान की उपासना करनी चाहिए। स्त्रियों को देवी या शक्ति की उपासना करने की जरूरत नहीं।" कितना निर्मम तर्क !

फिर बोला, "उन्होंने छोटा दो मंजिला मकान बनवाया। नौकर के लिए साइकिल खरीदी। एक बार वे नागपुर गए हुए थे। सूने में कोई साइकिल चुरा ले गया। किसी ने उन्हें फोन से बताया कि नीचे की मंजिल का ताला तोड़कर कोई आपकी साइकिल ले गया है। उन्होंने कहा कि उसे जरूरत होगी इसलिए ले गया। तुम्हें किसी चीज की जरूरत हो तो ऊपर की मंजिल का ताला तोड़कर तुम ले जाओ। ऐसे फक्कड़ हैं मेरे गुरु।"

रात घघरौला घाट में रहे। दूसरे दिन सबेरे ढाना आया। ढाना में पहली नर्मदा परिक्रमा के दौरान धन्नू के घर रहे थे इसलिए उसके घर गए। भाग्य से वह मिल गया। बेहद खुश हुआ। उसकी पत्नी को यह भी याद था कि उसके घर के

आँगन में बैठकर मैंने स्कैच किए थे। मैं उसे कह न सका कि स्कैच करने

का मेरा हुनर मैं प्रायः खो चुका हूँ। अब मेरे स्कैच में आत्मा नहीं रहती, थोड़ी-बहुत चतुराई भर रहती है। अधिकांश लेखकों-चित्रकारों के साथ यही होता है। आरंभ वे कला से करते हैं, लेकिन ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, कला चली जाती है और उसका स्थान चतुराई ले लेती है।

एक गाँव के बाहर एक अधजले साँप को देखा। वह मृत्यु के कगार पर पड़ा था। यह उसका दुर्भाग्य ही था कि वह जिंदा था।

तीसरे पहर भटेरा पहुँचे। घाट पर स्थित मंदिर जाते समय पहले गाँव की पाठशाला पड़ी। शाला-प्रांगण के चारों ओर कँटीले तारों की बाड़ लगी थी और फाटक पर ताला लगा था, जबकि अंदर बच्चे पढ़ रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ। पूछने पर एक ग्रामीण ने बताया कि यहाँ के सरपंच बहुत सख्त हैं। स्कूल लगते ही उनका नौकर आकर फाटक बंद करके उस पर ताला लगा जाता है और शाम को छुट्टी के समय खोलता है ताकि कोई भाग न सके न छात्र, न शिक्षक !

ऐसा सरपंच हर गाँव को मिले! ऐसा सरपंच हर विधानसभा को मिले ! लोकसभा को भी मिले !

नर्मदा-तट के मंदिर के बाबा का सिंगार देखते ही बनता था। रुद्राक्ष की बड़ी-बड़ी गुरियों वाली माला के अलावा छोटी-छोटी गुरियों वाली मालाएँ। बीच-बीच में मूँगे की गुरियाँ। जटा में भी भाँति-भाँति की मालाएँ। कान में कुंडल, हाथ में कड़े और मालाएँ। चंदन अलग। कहीं किसी प्रकार की कोई कसर नहीं छोड़ी थी। खासे मोटे थे, इसलिए यह सिंगार उन पर फबता भी खूब था। सदाव्रत के लिए पूछा तो वह हम लोगों के पास था। भोजन बनाने लगे तो बोले, "क्या मुझे भी भोजन मिलेगा?"

उनकी आवाज मंदिर के घंटे की तरह खनकती-सी थी। मैंने खुश होकर कहा, "क्या आप हमारा भोजन स्वीकार करेंगे?"

"जात-पाँत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई। जरूर लूँगा।" नौकर की ओर इंगित करके बोले, "यह दो नंबर का बाबा है। यही मेरा भोजन बनाता है।"

छोटी बरमान से होशंगाबाद 109

"क्या इसका भोजन भी बनाएँ?"

"नहीं, मैं अकेला भोजन करूँगा। शाम को वह घर चला जाता है। उसका घर है, मेरा घर नहीं।"

"आपका मंदिर है।"

"मंदिर भगवान का है।"

कई वर्ष गुजरात में रहे हैं। नरसिंह मेहता के कई भजन उन्हें कंठस्थ हैं। यहाँ के लोग उन्हें उज्जैन वाले बाबा के नाम से जानते हैं।

दोपहर को शोकलपुर की संस्कृत पाठशाला में विश्राम किया। दीवाली की छुट्टियाँ चल रही हैं इसलिए वहाँ केवल तीन विद्यार्थी थे। उनमें से एक मेरी पुस्तक पढ़ चुका था। बोला, "मेरे मामा जबलपुर से लाए थे। लेकिन अब दोबारा पढ़ूँगा। अब चूँकि आपसे मिल चुका हूँ, इसलिए इसमें एक नया ही रस मिलेगा।"

पीपरपानी पहुँचते दिन ढल चुका था। गाँव पार कर चुके थे। गाँव का आखिरी मकान था। दरवाजे पर खड़े सज्जन ने मुझसे 'नर्मदे हर !' कहा तो मैंने भी 'नर्मदे हर !' कहा और आगे बढ़ लिया क्योंकि अँधेरा घिरने लगा था और सोनादहाड़ अभी आधा किलोमीटर दूर था। सबसे अंत में शरद था। उन्होंने शरद से पूछा, "क्या वेगड़जी जा रहे हैं?"

शरद को आश्चर्य हुआ। उसने मुझे पुकारा तो मैं वापस आया। सज्जन ने कहा, "नरसिंहपुर में नर्मदा पर आपका भाषण सुना था। इसी से पहचान गया। कृपया आप हमारे घर पर ही रुकिए।" वहीं रह गए। उनके नब्बे वर्षीय पिताजी से बातें करके बेहद खुशी हुई। कहने लगे बुढ़ापा गरीब होता है। आपके पास अटूट पैसा है लेकिन शरीर से तो लाचार हो जाते हैं। तब पैसा खास कुछ कर नहीं पाता। संगी-साथी एक-एक करके चले जाते हैं, आप अकेले पड़ जाते हैं और जिंदगी से ऊबने लगते हैं।

थोड़ा रुककर बोले- मान लीजिए परिक्रमा के दौरान आपने किसी से कुछ

माँगा और उसने मना कर दिया। हो सकता है अपमान भी कर बैठे। तो इसे भी प्रेम से लेना, इससे अहंकार नष्ट होता है। परिक्रमा इसीलिए तो की जाती है। दूसरे, आप एक या दो किलोमीटर नंगे पाँव जरूर चलें। नर्मदा-तट की मिट्टी में ऐसा कुछ है कि इससे नसों में खून दौड़ने लगता है और आँखों की ज्योति भी बढ़ती है।

जब वे छह महीने के थे तभी माता का देहांत हो गया था। "लेकिन विमाता

ने भी सगी माँ का ही प्यार दिया। सड़क न होने के कारण बरसात में यह गाँव बाकी गाँवों से कट-सा जाता है। घोड़े गधों से ही आना-जाना हो पाता है। सबसे बड़ी परेशानी यह है कि लड़की वाले इस गाँव में अपनी लड़की देना नहीं चाहते।" चलते समय मैंने उनके पाँव छुए। "यह आपने क्या किया। आप परकम्मावासी हैं, आपकी पदवी मुझसे ऊँची है। इसमें उम्र नहीं देखी जाती। मुझे आपके पाँव छूने चाहिए।" वे छूने भी लगे लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया। उनके आशीष लेकर आगे बढ़े।

खेतों से लगी सँकरी पगडंडी से जा रहे थे। हमारे चारों साथी आगे थे, हम दोनों थोड़ा पीछे थे। तभी हमने देखा, हमारे चारों साथी पगडंडी छोड़कर नीचे खेत में उतर गए हैं। कान्ता मुझ से आगे थी। ज्यों ही वह उनके पास पहुँची, शरद ने कहा, "वहीं रुकिए।" उसके हाथ में मोबाइल था। उसमें फोटो लेने की सुविधा भी थी। बीच-बीच में फोटो लेता रहता था। मैं भी पहुँच गया। हम समझे कि अपने मोबाइल से वह हमारा फोटो लेना चाहता है। मैंने सिर से गमछा उतार दिया, ताकि चेहरा ठीक से दिखाई दे। कान्ता ने अपना पल्लू ठीक किया। तभी उसी खेत में से निकलकर एक लंबा साँप पगडंडी पर आया और दूसरी ओर के खेत में घुस गया। तो शरद हम लोगों का नहीं, साँप का फोटो ले रहा था !

साँप को सबसे पहले कमलेश ने देखा था। उसने गरीबा को बताया। गरीबा ने कहा, वह साँप नहीं, केंचुल है। तभी साँप आगे बढ़ा। उस सुंदर साँप का शरद फोटो लेना चाहता था लेकिन खेत में कटे धान के दूँठ थे, उनमें ठीक से दिखाई न देता। तब गरीबा और कमलेश ने अपनी लाठियों की ठक-ठक से उसे पगडंडी पर आने को विवश कर दिया। शरद उसका फोटो लेने जा रहा था, तभी हम लोग आ गए। गरीबा ने कहा कि वह

धामन साँप था जो बहुत जहरीला होता है। उसका अंगविन्यास देखते ही बनता था।

छोटी बरमान से होशंगाबाद 111

अगर साँप थोड़ी देर रुक जाता, उसके साथ हमारा फोटो खिंच जाता, तो यह हमारे लिए कितने बड़े गौरव की बात होती! तब हम लोगों से कहते कि हमारी नर्मदा परिक्रमा से प्रसन्न होकर एक नागदेवता ने न केवल हमें दर्शन दिए, बल्कि हमारे साथ फोटो भी खिंचवाई! उसने हमें ऐसा कह पाने के सुख से वंचित कर दिया। आजकल परोपकार की भावना रही ही कहाँ!

रात्रि का अंतिम प्रहर था। आकाश में चुटकी भर चाँद था। मुझे लगा, कोई है जो रोज रात को चाँद को थोड़ा-थोड़ा कुतरता रहता है। बेचारे का जरा-सा टुकड़ा भर बचा है। अरे ओ कुतरिए! रात में चोरों की तरह चाँद को कुतरने में कौन सी बहादुरी है, दिन के उजाले में सूरज को कुतरकर दिखा तो जानें!

यहाँ के शांत स्तब्ध वातावरण को आघात पहुँचाने वाला कोई नहीं।

सूर्य की प्रथम किरणों के साथ नीचे उतरे, दूधी पार की और आगे बढ़े। दोपहर तक सांडिया पहुँच गए। नर्मदा और अंजन के संगम में स्नान किया। यहाँ से शरद चला गया। अब हम पाँच बचे हैं दो हम और तीन सेवक। शाम तक माछा पहुँच गए। यज्ञशाला में रात रहे। यहाँ एक परकम्मावासी किसी से कह रहा था, "लोग मैया को एक सूखा नारियल चढ़ाते हैं और बदले में लाखों की सम्पत्ति चाहते हैं!"

सुबह चल दिए। कुब्जा में बहुत कँपा था। राइन को पार करना आसान रहा। रात ईशरपुर में रहे। सुबह चले तो पलकमती पड़ी। साफ-सुथरी रूपवती नदी। यहाँ कई परकम्मावासी संगम स्नान कर रहे थे। हमने भी स्नान किया और कान्ता ने दीप भी प्रवाहित किया। एक कौए की नजर दीये के घी पर थी। उसने दीये पर मँडराना शुरू किया। पास आता लेकिन लौ से डर कर भाग जाता, फिर पास आता, फिर भाग जाता। उसे घी नहीं मिला। अगर वह पंचतंत्र के कौए का सच्चा वंशज होता, तो अपनी चोंच में पानी भरकर दीये पर डालता, दीया बुझ जाता और उसे घी मिल जाता। मैंने कहा, "जरा सोच, घड़े में कंकड़ फेंकने पर तेरे पूर्वज को केवल पानी मिला था, तुझे तो घी मिलेगा! तेरे इस कार्य से तेरे यशस्वी पूर्वजों की कीर्त्ति में चार चाँद लग जाएँगे।" लेकिन उस मंदबुद्धि ने ऐसा कुछ नहीं किया तो मैंने हताश होकर कहा, "यह कौआ अपने कुल पर कलंक है।" तभी

उसने दीये के निकट आकर जरा जोर से पंख फड़फड़ाए। इसमें दीया बुझ गया। अब वह घी भी खा रहा था और मेरी मंदबुद्धि पर हँस भी रहा था!

इस साल मारू में बाढ़ नहीं आई थी, इसलिए उसमें कैंपा नहीं था, आसानी से पार कर गए। सांगाखेड़ा खुर्द में स्नानार्थियों की भारी भीड़ थी। बात यह है कि आज दीवाली है और वे पर्व का स्नान करने आए थे। वे अपने पशुओं को तो नहला ही रहे थे, अपनी मोटर साइकिलों और ट्रैक्टर तक को नहला रहे थे। भीड़ से बचने के लिए हम आगे गए। वहाँ तीन-चार लोग नहा रहे थे। नदी का बहाव बेहद तेज था। एक वृद्धा ने

मुझसे कहा भी कि खूब संभल कर नहाना, कमजोर को नदी बहा ले जाती है।

नहाकर आगे बढ़े। रास्ते में गरीबा ने कान्ता से कहा, "अम्मा, आज दीवाली है।" थोड़ी देर बाद कमलेश बोला, "अम्मा, आज दीवाली है।" जब शिवदीन ने भी यही बात कही तो कान्ता ने हँसकर कहा, "हाँ बेटा, आज दीवाली है। अगर गाँव में दूध मिल जाएगा, तो खीर खाकर दीवाली मनाएँगे।"

शाम को बछवाड़ा पहुँचे। धर्मशाला गाँव के मध्य में सड़क के किनारे थी। दीवाली के कारण चहल-पहल थी और पटाखे भी चल रहे थे। यहाँ खाना कैसे बनाएँगे। इसी उधेड़बुन में थे, तभी एक सज्जन आए और हाथ जोड़कर बोले, "मेरा घर पड़ोस में ही है। आप सोएँ चाहे यहाँ, लेकिन भोजन हमारे आँगन में ही बनाएँ। चाहें तो चलकर देख लें।" देखते ही मन प्रसन्न हो गया। लिपा-पुता, साफ-सुथरा बड़ा आँगन, पास में हैन्ड-पम्प। कमरे में से एक बढ़िया चूल्हा निकालकर रख दिया। "इसमें केवल सप्तमी के दिन भोजन बनता है।" लकड़ियों का ढेर लगा दिया। दरी बिछा दी। और क्या चाहिए !

कान्ता ने कहा, "आज दीवाली है, दूध मिल जाता तो खीर बनाकर दीवाली मनाते।" उन्होंने कहा, "हमारी गाय तीन दिन पहले ही कूद गई है।" उसका पड़ोसी खड़ा सुन रहा था। वह धीरे से खिसक लिया और थोड़ी देर में एक गिलास में दूध ले आया। इतने से दूध से खीर कैसे बने! फिर भी हमने दूध रख लिया। थोड़ी देर में एक और ग्रामीण छोटे से लोटे में दूध ले आया। फिर तीसरा, चौथा, छठा ! थोड़ी देर में हमारे पास इतना दूध हो गया कि खीर में हमें चाँवल के

दाने ढूँढ़ने पड़ेंगे। किसी गाँव के लोगों से वहाँ के राजा ने रात के अँधेरे में तालाब में एक लोटा दूध डालने के लिए कहा था। सबेरे तालाब पानी से भर गया। अगर यही बात उस राजा ने इस गाँव के लोगों से कही होती, तो तालाब दूध से ही भरता।

खीर के लिए कान्ता ने चावल निकाले तो वृद्धा माँ सूपा भरकर चावल ले आईं।" अपने चावल रख लो। इसे लो, नए चावल की खीर बढ़िया बनेगी। खीर में थोड़ा नमक डालना। स्वाद आएगा।" एक भाई के घर से सूपा भरकर आटा आया। खाना खाने बैठे तो बड़े भाई की पत्नी एक बड़े थाल में गुलाबजामुन, मावे की बर्फी, बेसन की बर्फी और ढेर सारा चिवड़ा लेकर आई। इतनी ही सामग्री छोटे भाई की पत्नी भी दे गई। माताजी गरम-गरम पूड़ियाँ ले आईं। एक लड़की तले हुए पापड़ रख गई। बड़े भाई की पत्नी गरम भजिए दे गई। खाद्य-पदार्थों की ऐसी लहाछेह वर्षा पहले कभी नहीं हुई थी। और हम भी भुक्खड़ों की तरह सब चट कर गए! हम बोल भी रहे थे तो ठसाठस भरे हुए मुँह से। मीनल बहन और शरद यात्रा के सबसे मधुर हिस्से से वंचित रह गए। शरद परसों ही तो गया था !

बड़े भाई की पत्नी ने आँगन में जो रंगोली बनाई थी, वह किसी कलाकृति से कम नहीं थी। उसका मायका मालवा में है, यह कला वह वहाँ से लाई है। मेरे कहने पर चिथड़े को गेरू में डुबो कर मेरी नोटबुक में एक छोटा-सा डिजाइन बना दिया और मेरे आग्रह पर अपना नाम भी लिख दिया- सावित्री साहू।

सुबह चल दिए। सांगाखेड़ा खुर्द से नर्मदा छूट गई। वह पाट बदलकर दूर चली गई है। परकम्मावासी पुराने पाट को नहीं लाँघते। हमने भी यही किया। बूढ़ी नर्मदा के संग-संग आगे बढ़े। शाम को बीकोरी पहुँचे। एक ग्रामीण अपनी दादी से मिलवाने हमें अपने घर ले गया। उसकी 85 वर्षीय दादी परिक्रमा कर चुकी थीं। बोलीं, "मेरी देवरानी मुझे बहुत चाहती थी। कहने लगी दीदी, अकेली मत जाओ। मैं चली तो रोती हुई वह भी चली। उसकी एक ही रट थी-अकेली मत जाओ। किसी तरह वापस नहीं जा रही थी। तब मैंने डपटकर कहा-या तो मेरे साथ परिक्रमा में चल या घर लौट जा, नहीं तो ढेला फेंककर मारूँगी। तब कहीं गई।"

"क्या आप अकेली ही गईं?"

"नहीं, मेरे दामाद का छोटा भाई और उसकी माँ भी हमारे साथ चले। और भी लोग चले। कुल नौ लोग थे। लेकिन कुछ दिन बाद चार लौट गए। सवा तीन साल बाद जब घर लौटी तब देवरानी भगवान के घर जा चुकी थी। न वह मेरे साथ चल सकी, न मैं उसके साथ जा सकी। मेरी देवरानी तो मेरी माँ थी।"

सुबह नहर के साथ चले। नहर ही हमारी पथप्रदर्शक है। धानसी में नर्मदा फिर मिल गई। सूरजकुंड होते हुए गोरा पहुँचे। नदी तट पर एक बाबा ने एक छोटा-सा मंदिर बनवाया है। पति-पत्नी यहीं रहते हैं और परकम्मावासियों की सेवा करते हैं। हम लोगों का स्वागत करते हुए बाबा ने कहा, "पूरा मंदिर और ये दो कमरे हमने अपने हाथों से बनाए हैं, किसी तीसरे का हाथ नहीं लगा। जितने पेड़ हैं, वे भी हम दोनों ने ही उगाए हैं।"

निस्संतान हैं। एक गाय, एक कुत्ता और एक तोता ही उनके संगी-साथी हैं। अँधेरा गहराने के साथ-साथ सर्दी भी बढ़ती जा रही थी। बाहर खुले में सोना संभव नहीं था। सोने के लिए उन्होंने अपनी रसोई दे दी। सर्दी के कारण तोते के पिंजड़े को घर के अंदर रख लिया था। सुबह बाबा की पत्नी पिंजड़े को बाहर ला रही थी तभी तोते ने उसे काट खाया। डपट कर बोली, "सीताराम, सीताराम तो बोलता नहीं, उलटे मुझे काट खाया। ठहर, आज तेरी अच्छी पिटाई करूँगी। खाने को कुछ नहीं दूँगी।"

थोड़ी देर बाद देखा तो उसका लाड़ला चने की दाल खा रहा था!

क्या !" "आप अभी ही तो कह रही थीं कि तुझे खाने को कुछ नहीं दूँगी। फिर यह

हँसकर बोली, "अभी बच्चा है, तीन महीने का भी नहीं हुआ। जब आया था तब चिड़िया बराबर था। इतना नादान है कि अपने ही रोएँ उखाड़ फेंकता है।" बिलकुल अस्थि-पंजर था। इस नन्हे-मुन्हे पक्षी से बाबा की पत्नी को बेहद प्यार है। यही उनका धर्मपुत्र है।

बाबा ने कहा, "मैया के तीरे-तीरे ही जाइए। खेतों वाला रास्ता छोटा जरूर है लेकिन जगह-जगह किसानों ने पानी छोड़ा है इसलिए कीचड़ होगा।"

छोटी बरमान से होशंगाबाद115

सामने तट का पहाड़ बिलकुल पास आ गया था। चट्टानें नदी से सटती चली जा रही थीं। आगे तवा आई। तवा जरा बड़ी नदी है। उसे पार करना

कान्ता के लिए मुश्किल होगा, लेकिन उसने इसे पार कर ही लिया। संगम में स्नान किया और आगे बढ़े। यहाँ से नर्मदा के तीरे-तीरे जाते तो होशंगाबाद पास पड़ता लेकिन हम बांदराभान होते हुए सड़क से चले ताकि मेरे साथी सड़क के बाईं ओर तवा को आती हुई और दाहिनी ओर नर्मदा को जाती हुई देख सकें। किन्तु यह रास्ता बहुत लंबा था और सड़क खत्म होने का नाम नहीं ले रही थी। दोपहर का सूरज बदन को झुलसा रहा था और रेत ढोते ट्रक धूल उड़ाते रहते थे। किसी तरह कोठीबाजार में गोपीकान्त घोष के घर पहुँचे। उन्होंने कहा, 'आप मेरे घर पर ही रुकिए।' मैंने कहा, "हम पाँच हैं, धर्मशाला में रुकेंगे।"

उन्होंने कहा, "मेरा घर किसी धर्मशाला से कम नहीं।" उस समय घर के सभी सदस्य बाहर गए हुए थे और घर में वे अकेले थे। जब हम नहीं माने तो वे भी हमारे साथ हो लिए। फिर अन्तहीन सड़क से आगे बढ़े। चलते-चलते कान्ता परेशान हो उठी। श्रांत-क्लांत और पसीने से तर-बतर कान्ता मुझ पर बहुत बिगड़ी। "आपको हम लोगों को कोई खयाल है भी या नहीं? आज तो ये लड़के तक चलते-चलते थक गए हैं। हम लोग कब तक चलते जाएँगे?"

कैसा कठिन दिन रहा है आज का! लेकिन मैं भी क्या करता ! मुझे कोई मंत्र तो आता नहीं कि उसे पहूँ और घाट पास आ जाए। दबे स्वर में बोला, "बस, घाट अब आने ही वाले हैं।" हालांकि मैं खुद नहीं जानता था कि वे कितनी दूर हैं। ऐसे मौकों पर थोड़ा-सा झूठ थके-हारे व्यक्ति में नए प्राणों का संचार कर देता है। वैसे उसका गुस्सा अकारण नहीं था। सारा दिन केवल मूँगफली और खजूर खाकर चलती है। चातुर्मास के कारण रात में केवल एक बार खाना खाती है। मूँगफली-खजूर खत्म हो गए थे, आज उसे

कुछ भी नहीं मिला था। 70 वर्ष की आयु में, चिलचिलाती धूप में, खाली पेट, 25 किलोमीटर चलना आसान तो नहीं। उसका गुस्सा बेवजह नहीं था।

आखिरकार हम लोग पहुँच ही गए। प्रायः 275 कि.मी. की इस पदयात्रा में हमें एक भी पक्का घाट नहीं मिला था। यहाँ का विशाल सेठानीघाट देखकर लगा

मानों वन में से सीधे राज-दरबार में आ गए हों। बनाने वालों के मन में पूरे घाट की सुस्पष्ट कल्पना रही होगी, तभी तो वे इतने सुव्यवस्थित सुंदर घाट बना सके। संयोग से घाट पर ही दो बहनें मिल गई जो मेरी किताब की बड़ी प्रशंसक थीं और यहाँ संगीत की कक्षाएँ चलाती हैं। हम लोगों से मिलकर बेहद खुश हुईं। तय हुआ कि शाम को उनकी छात्राएँ हमें भजन भी सुनाएँगी और भोजन भी कराएँगी।

घाट पर बैठे देर तक नर्मदा की शोभा देखते रहे। फिर जया 'नर्गिस' और उनकी बहन के विद्यालय गए। उनकी छात्राओं ने कई सुंदर भजन सुनाए। जब उनका कार्यक्रम समाप्त होने को आया तब मैंने कहा, "हमारा कमलेश भी थोड़ा-बहुत गा लेता है। आप कहें तो वह भी कुछ सुनाए।"

"जरूर, कमलेश, तुम जरूर सुनाओ।"

कमलेश बड़ा संकोची है, आसानी से तैयार नहीं होता। लेकिन जब उसने

गाना शुरू किया तो सभी डोल उठे। ऐसी मिठास, ऐसा दर्द! वह गा रहा था-

मोरी नरबदा मैया, दुखियन की दुख हरैया तोरी सेवा न जानू मैया, मैं खेती-किसानी करैया।

सबको इतना मजा आ गया कि कोई खंजरी बजाने लगा तो कोई ढोलक। उसकी सुरीली तान और मधुर धुन ने उस विद्यालय के वातावरण में मानो जान डाल दी। उसने और भी गीत सुनाए। दोनों बहनों ने और उनकी छात्राओं ने जी भरकर कमलेश की तारीफ की। अवसर मिला होता तो वह बड़ा गायक हुआ होता। हमारे देश में कितने ही हीरे बिना तराशे व्यर्थ नष्ट हो जाते हैं।

भोर की सर्दी और धुंधलका। स्नान ध्यान करते लोग। हालाँकि ठंड के कारण मैं रोज दोपहर को नहाता था, लेकिन आज हमें जाना है इसलिए मैंने भी सुबह-सवेरे स्नान कर लिया। विश्राम पाकर कान्ता तरोताजा हो गई थी और स्नान के बाद तो एकदम ताजादम लग रही थी। बोली, "जी चाहता है घर न जाकर ओंकारेश्वर तक चले जाएँ।"

मैंने कहा, "चल सकते हैं, लेकिन एक शर्त पर। वादा करो कि रास्ते में मुझ पर गुस्सा नहीं करोगी।"

छोटी बरमान से होशंगाबाद117

उसने कहा, "मैं ऐसा कोई वादा नहीं कर सकती।"

"तो चलो घर ! बीच बाजार में डाँट खाने से घर के कोने में डाँट खाना अच्छा।"

क्या कीजै, प्यार में ऐसी ज्यादतियाँ और झिड़कियाँ तो रहती ही हैं!

13. होशंगाबाद से हंडिया

जब होशंगाबाद में यात्रा समाप्त करके घर गए थे, तब हमें यह कल्पना कैसे हो सकती थी कि पूरे तीन साल के बाद ही हम यहाँ आ पाएँगे।

कोई 25 वर्ष पूर्व मेरे पैर में मोच आई थी। यहाँ से घर जाने के बाद ठीक उसी जगह मोच आई। यानी वह लोप हुई थी, गई नहीं थी। किसी तरह ठीक हुई कि फिर वहीं मोच आई। मानो किसी ने मोच की पुरानी किताब खोल दी हो। इसी में दो साल तक यात्रा में नहीं जा पाए। जीवन में कभी-कभी सबसे छोटी चीज सबसे कठिन समस्या खड़ी कर देती है।

लेकिन जो हुआ सो हुआ। अब उसका कोई महत्त्व नहीं। मोच के ठीक होते ही हम नर्मदा की सहायक नदी बंजर की परिक्रमा कर आए और अब

आगे की नर्मदा पदयात्रा के लिए पुनः होशंगाबाद आए हैं। तारीख है 17.10.2008. बांदराभान यहाँ से सात किलोमीटर दूर है। वहाँ तवा नदी नर्मदा से मिलती है। इसी संगम पर दो विदेशी रहते हैं- फ्रैन्च सुमेर मुनि और ग्रीक राधा मुनि। दोनों गुरु भाई-बहन हैं, दोनों परिक्रमा कर चुके हैं। हम लोग उनसे मिलने गए। राधा मुनि ने हमें अपना आश्रम दिखाया। उसका ध्यान कक्ष तलघर में है और उस में छोटे मुँह वाली खिड़की में से जाना पड़ता है। आश्रम नर्मदा की खड़ी कगार पर है। जब बाढ़ आती होगी, तब यहाँ से बाढ़ का दृश्य देखते ही बनता होगा।

इस बार हम बारह हैं, लेकिन इनमें से अधिकांश हमें छोड़कर चले जाएँगे। नए सदस्यों में बोहिता है जो अपनी बड़ी माँ दमयंती बहन के साथ आई है। हाल

ही में उसकी सगाई हुई है। एक बार हम लोगों के साथ मुंबई की गार्गी बहन चली थीं- अपनी होने वाली बहू के साथ। क्या ही अच्छा होता अगर बोहिता अपनी होने वाली सास को लेकर आती। बाकी सदस्य पुराने हैं- कान्ति सोलंकी, प्रदीप गुप्ता, शरद चौहान, शैलेन्द्र, उनके भतीजे शर्माजी, हमारे तीन सहायक, कान्ता और मैं।

सुबह निकले। शाम को खोकसर आ गए। यहाँ गौरीशंकर महाराज की समाधि है। वे कमल भारतीजी के शिष्य थे। सारा जीवन नर्मदा की परिक्रमा करते रहे। उनकी जमात में सैंकड़ों साधुओं के अलावा हाथी, घोड़े और ऊँट भी रहते थे।

रात में ठंड में दुबके सो रहे थे। सुबह के चार भी नहीं बजे होंगे। तभी आवाज आई, "उठो, उठो ! गरम पानी पीओ! बोहिता, तुम्हारे पैर में दर्द है, तुम गरम पानी से सिकाई करो। उठो!" ये शैलेन्द्र थे। तीन बजे ही उठ बैठे थे और अपनी खटर-पटर शुरू कर दी थी। चूल्हा सुलगा कर पानी गरम किया था ताकि सभी गरम पानी पी सकें। साढ़े तीन-चार बजे ही सेवा के सागर में कूद पड़े थे। इतनी सुबह, लोगों को नींद से जगाकर गरम पानी पिलाना सेवा की यह कौन-सी शाखा है, इसका पता शाम को चला। शैलेन्द्र के बेटों की डेरी है। उसमें प्रायः सौ भैंसे हैं। शैलेन्द्र रात को तीन बजे उठकर भैंसो को पानी पिलाते हैं। उनके इसी सेवाकार्य का विस्तार हुआ है और हम लोग भी उनके दायरे में आ गए हैं। शैलेन्द्र को लगता है, उन्होंने पानी भले ही हमें पिलाया हो, प्यास उनकी भैंसो की ही बुझी है।

हमारे साथी उन्हें 'भोर का भूकंप' कहने लगे थे।

यहाँ से आगे बढ़े। रास्ते में इन्द्रावती नदी पड़ी। इसे पार करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। सामने तट पर एक डोंगी थी और वहाँ दो लड़के भी थे। उनसे डोंगी लाने के लिए कहा, लेकिन 'मागी नाव न केवट आना।' हमें देख कर वे उलटे भाग गए। हमारे साथी तैरना जानते थे। थाह लेने के लिए शर्माजी कच्छा लगाकर नदी में उतरे। उतरते ही घुटनों तक कीचड़ में धँस गए। आगे बढ़ते ही कमर तक पानी में जा पहुँचे। वे इससे भी ज्यादा के लिए तैयार थे। आहिस्ता-आहिस्ता उस पार पहुँच गए, फिर वापस आए। मतलब बिना डोंगी के नदी पार की जा सकती है। सभी एक-दूसरे का हाथ पकड़कर, साँकल बनाकर, नदी पार

करेंगे। बोहिता पानी से बहुत घबराती है। थोड़ी-बहुत हाय-तोबा के बाद वह पानी में उतरी और कीचड़ में कुछ ज्यादा ही धँस गई। दमयंती बहन नाटे कद की हैं। पानी उनके कंधे तक आ गया। मैं चिंतित हुआ कहीं' अत्र लुप्ता दमयंती' न हो जाए। शरद ने कहा कि चिंता की कोई बात नहीं, दमयंती बहन बहुत अच्छी तैराक हैं। सामने तट पर फिर कीचड़ था। सभी कीचड़ से लिथड़ गए। उस बीहड़ नदी को पार करने का रोमांच मेरे मन में देर तक बना रहा।

रास्ते में ही सूरज डूब गया। आगे नर्मदा तट पर एक कुटी पड़ी। वहाँ पहुँचे तो रात घिर आई थी। वयोवृद्ध बाबा वहाँ अकेले रहते हैं, रात में कुटी का फाटक खोलते ही नहीं। लेकिन जब उन्होंने देखा कि हमारे साथ महिलाएँ भी हैं, तो उन्होंने फाटक खोल दिया। एक बार रात में कुछ शराबियों ने आकर बड़ा उत्पात मचाया था। तब से वे फाटक बंद रखने लगे हैं।

आश्रम के चारों ओर सागौन के बड़े-बड़े पेड़ हैं। कुछ गायें और मोर भी है। इस निर्जन एकांत में ये ही बाबा के साथी हैं।

दिन चढ़ते ही आगे बढ़े। दोपहर को बावरीघाट में मैं जहाँ नहा रहा था, वहाँ छह-सात भैंसे पहले से ही नहा रही थीं। घुटे सिर वाले दो ग्रामीण आए और प्लास्टिक की थैली में से खारी नदी में उड़ेल दी, फिर थैली भी बहा दी। एक मोटर साइकिल वाला आया और उसने नदी में मोटर साइकिल धोना शुरू किया। इतना मानो कम था तो दो ट्रक और तीन ट्रेक्टर वाले आए और उन्होंने अपने-अपने वाहनों को धोना शुरू किया। काश, दुर्वासा की तरह नदी शाप देना जानती होती।

शाम को चाँदगढ़ कुटी पहुँचे। रात को भजन मंडली बैठी। कमलेश बहुत अच्छा गाता है। उसने जो भजन सुनाए तो श्रोता झूम उठे। उन लोगों ने कमलेश से कहा कि तुम तो यहीं रह जाओ, बाकी को जाने दो। सुनकर कितना अच्छा लगा। दिन में भले ही कमलेश हमारा बोझा उठाने वाला साधारण श्रमिक हो, रात में वह कलाकार है और हम साधारण श्रोता।

दूसरे दिन तीसरे पहर अर्चनागाँव पहुँचे। यहाँ से शरद, उसकी पत्नी निशा और प्रदीप घर लौट गए। कल शरद के पिताजी 75 वर्ष पूरे कर रहे हैं, इसलिए

होशंगाबाद से हंडिया 121

बहू-बेटे का घर में होना जरूरी है। लेकिन प्रदीप के साथ तो ऐसी बाध्यता नहीं। हम लोग हैरान थे कि आज सबेरे तक जो प्रदीप हंडिया तक साथ चलने की बात कर रहा था, आज इतनी आसानी से घर जाने को कैसे तैयार हो गया? बाद में एक साथी ने बताया कि प्रदीप के मोबाइल पर पत्नी मंजू का फोन आया था। फोन जरा तगड़ा था, इसी से जाना पड़ा।

इस संसार में पति-परायण पत्नियाँ तो अनेक हैं, पर प्रदीप जैसे पत्नी-परायण पति बिरले ही मिलेंगे। मंजू कितनी भाग्यवान है जो उसे प्रदीप जैसा पति मिला। शरद हमारा कोषाध्यक्ष था। उसके जाने के बाद शैलेन्द्र ने यह कमान सँभाली।

रात गोदागाँव में रहे। यहाँ तीन नदियों का संगम है- नर्मदा, गंजाल और गोमती। संगम पर बने जिस मंदिर में हम ठहरे थे, उसके पुजारीजी ने हमें बताया कि यहाँ लाल मुँह वाले ढाई सौ बंदर हैं, खाने की चीजें उठा ले

जाते हैं। शाम को चले गए थे लेकिन सुबह आ गए। गोमती पार करते ही महंतों की छतरियाँ आईं। पास में एक मंदिर है। मंदिर के बरामदों और खंभों पर लकड़ी की नक्काशी का काम आश्चर्य में डाल देने वाला था। अधिकांश आकृतियाँ पक्षियों और बेलबूटों की थीं। वे इतनी सफाई से उकेरी गई थीं कि लकड़ी पर कसीदाकारी जैसी लगती थीं। इतनी उत्कृष्ट काष्ठ-कलाकृतियाँ बहुत कम देखने में आती हैं। चूँकि यह शिल्प मंदिर के अंदर है, इसलिए मौसम की मार से बदरंग नहीं हुआ। गोदागाँव जैसे छोटे-से गाँव में कैसी अद्भुत कृतियाँ देखने मिलीं। मुझे अचरज इस बात का है कि अपनी पहली पदयात्रा के दौरान मुझे ये क्यों नहीं दिखाई दीं।

मूर्तिकारों ने पत्थर नहीं मिला तो लकड़ी और लकड़ी नहीं मिली तो मिट्टी से मूर्तियों का सृजन किया। उसी प्रकार चित्रकारों ने चट्टान, दीवार, ताड़पत्र, कपड़ा और कागज जब जो मिला उसी पर चित्र बनाए। साधन के अभाव में कलाकार की साधना कभी रुकी नहीं।

छीपानेर के बाद बजरंग कुटी पड़ी। इसकी स्थापना बाबा बजरंगदास ने की थी। उनके शिष्य स्वामी तिलक का अंग्रेजी, स्पैनिश और पोर्चुगीज पर समान अधिकार था। अंग्रेजी में कई किताबें लिखीं। केवल पचपन वर्ष की आयु में स्पेन

में एक सड़क दुर्घटना में उनका आकस्मिक निधन हुआ। अंतिम वर्षों में जापानीज सीख रहे थे। अभी जो आश्रम की देखभाल कर रहे हैं, उनका नाम स्वामी नित्य चैतन्य है। वे केरल के हैं, यहाँ चालीस वर्षों से हैं। उन्होंने हमें आश्रम का विशाल पुस्तकालय बताया। रुकने का बड़ा आग्रह

किया लेकिन इन्दौर के दिनेश कोठारी हम लोगों के साथ चलने के लिए हंडिया से पैदल आ रहे हैं। इसलिए रुक न सके।

हम लोग लछोरा में मिल गए। वे नया कैमरा खरीदकर ला रहे हैं। उसका उद्घाटन नर्मदा-तट पर करना चाहते हैं। अगर वे सुबह आ गए होते, तो गोदागाँव के मंदिर की काष्ठकला के कई फोटो ले सकते थे। वैसे कान्ति ने तो फोटो लिए ही थे।

शाम को जलोदा पहुँचे। धर्मशाला नदी-तट पर है। नदी में कई छोटे-छोटे टापू निकल आए हैं। बरसात में डूब जाते हैं लेकिन नदी के दुर्बल होते ही सिर उठाते हैं और 'थल बिच जल' और 'जल बिच थल' की उक्ति साकार होती है।

सुबह शर्माजी ने कान्ति भाई से कहा, चलिए 'भिक्षां देहि!' कर आएँ। इस सांकेतिक भाषा का मतलब है चलिए, चा पी आएँ। लेकिन छोटे से गाँव में चाय की कोई दुकान नहीं। एक ग्रामीण ने कहा, चलिए मेरे घर। उसने चाय तो बनाई लेकिन दूध फट गया। उसने कहा, चिंता की कोई बात नहीं। उसने आँगन में खड़ी बकरी को दुहा और धारोष्ण दूध की चाय पिलाई। बकरी जैसा उदारमना पशु शायद ही कोई हो। जब चाहो, दुह लो।

तब तक कान्ति ने उसके बच्चे की डिजिटल कैमरा से बढ़िया फोटो खींच ली थी और बच्चे की दादी से कहा, "लो, अपने पोते की फोटो देखो।" दादी ने कहा, "क्या देखूँ, एक आँख से तो बिलकुल दिखाई नहीं देता और दूसरी आँख से भी नहीं के बराबर दिखाई देता है।" बेटे ने कहा कि काफी दवा करवाई, ऑपरेशन भी करवाया, पर कोई लाभ न हुआ। उसकी दुनिया बस आँगन तक सिमट कर रह गई है।

सुबह झटपट तैयार हुए और आगे बढ़े। ज्यों-ज्यों हंडिया पास आता गया,

होशंगाबाद से हंडिया123

इंदिरा-सागर बाँध के बारे में तरह-तरह की बातें सुनने को मिलने लगीं। हंडिया से आगे का परंपरागत मार्ग इंदिरा सागर की डूब में आ गया है। जोगा का किला और धावड़ीकुंड के प्रपात भी डूब गए हैं। परकम्मावासी अब सड़क से जाते हैं।

तीसरे पहर हंडिया पहुँचे। पच्चीस साल पहले जब चला था, तब होशंगाबाद से हंडिया आने में आठ दिन लगे थे, इस बार छह दिन ही लगे। यह मत पूछिए कि उस समय जैसे स्कैच कर सका था, जैसा यात्रा-वृत्तांत लिख सका था, क्या वैसा ही आज भी कर पा रहा हूँ? माना कि उसका आधा भी नहीं कर पा रहा, लेकिन शून्य से तो आधा अधिक ही है!

पैदल चलने में मुझे वही आनंद मिल रहा है, प्रकृति मुझे उतना ही आह्लादित करती है, घटनाएँ भी उसी तरह उद्वेलित करती हैं, बस अभिव्यक्ति में अंतर आया है। आयु का आक्रमण अनुभूति पर नहीं अभिव्यक्ति पर हुआ है। मुझे अब लिखना बंद कर देना चाहिए। वही करने जा रहा हूँ। समेटने में जो थोड़ा-बहुत समय लगता है, उतना ही लूँगा।

हमने जो बाते सुनीं थीं, वे सच निकलीं। हंडिया से ओंकारेश्वर तक सड़क से ही जाना होगा। नर्मदा दिखेगी तक नहीं। जब महेश्वर बाँध बन जाएगा तब महेश्वर बाँध का पानी ओंकारेश्वर बाँध के पानी को छुएगा और ओंकारेश्वर बाँध का पानी इंदिरा सागर बाँध के पानी को छुएगा। इसमें

नर्मदा को खोजना मुश्किल होगा। हम महेश्वर तक जाना चाहते थे, लेकिन अब नहीं जाएँगे। जब नर्मदा ही नहीं दिखेगी, तो कैसी परिक्रमा। इन झीलों के किनारे जब नया मार्ग बन जाएगा, तब परकम्मावासियों को सड़क से नहीं जाना पड़ेगा।

(यह ठीक है कि बाँधों के कारण नदी का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है और वह आधी नदी आधी झील होकर रह गई है, फिर भी मैं बाँध का विरोध नहीं करूँगा। दरअसल आबादी के विस्फोट ने ही बाँधों को जन्म दिया है। या तो बाँध बनें या करोड़ों लोग भूख और प्यास से तड़प-तड़पकर मर जाएँ। बाँध हमारी मजबूरी है।)

हमने हंडिया में ही अपनी पदयात्रा समाप्त कर दी।

किन्तु यात्रा महेश्वर तक चली। बहुत संक्षेप में उसके बारे में भी बता दूँ। हंडिया के सामने है नेमावर, नर्मदा का नाभिस्थान। वहाँ हम नाव से गए। नदी के मध्य में बने छोटे-से मंदिर को दिखाते हुए नाविक ने कहा- वह है नर्मदा का नाभि-स्थान। उसने हमें सिद्धनाथ मंदिर के पास उतारा। मंदिर को देखने के बाद हम नानी के घर चल दिए जो पास में ही था। मैं अपने साथियों को नानी और उनकी बेटी शारदा बहन से मिलवाने के लिए बहुत उत्सुक था। ग्यारह वर्ष पूर्व मैं इनके घर रुका था, तब भी नानी काफी वृद्ध थीं, अब तो शायद खाट पकड़ ली हो। वहाँ कान्ता पहले गई। उसने शारदा बहन और उनकी दो बेटियों सुशीला और अलका के नाम लिए तो नानी गद्गद हो गईं। "अरे, तू तो घर की छोरी है। कहीं नहीं जाना, यहीं रहना।" मुझे देखते ही पहचान गईं। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि नानी

पहले से ज्यादा स्वस्थ थीं। शारदा बहन ने बताया कि सुशीला और अलका की शादी हो गई है। उन्होंने मोबाइल पर सुशीला से मेरी बात करवा दी। उसे सब याद था। दोनों बहनें मेरी किताब भी पढ़ चुकी थीं। उसने मुझे तो प्रणाम कहे ही, जब मैंने कहा कि मेरी पत्नी कान्ता भी आई है तो उसने कहा, "माताजी को भी मेरे प्रणाम कहें।"

सुशीला की प्रशंसा करते हुए मैंने कहा, "नानी, आपकी नातिन के संस्कार कितने अच्छे हैं। उसने मुझे तो प्रणाम कहे ही, मेरी पत्नी को भी प्रणाम कहे।" नानी ने कहा, "नर्मदा की नहाई छोरी है, संस्कार अच्छे कैसे नहीं होंगे।"

अगर मैं यहाँ कुछ दिन रह जाऊँ तो नानी की सूक्तियों को एक संहिता का रूप दे सकता हूँ।

दूसरे दिन नर्मदानगर आ गए। यहाँ इंदिरा सागर बाँध है। यहाँ के अधिकारियों ने हमें पूरा बाँध बताया। बाँध के नीचे एक पातालनगरी होती है। बिजली बनाने वाले टर्बाइन यहाँ होते हैं। बाँधों की उपयोगिता तभी है जब भरपूर वर्षा हो। दुर्भाग्य से कम वर्षा के कारण दो साल से बाँध पूरा भर नहीं रहा। पानी की कमी के कारण कुछ ही टर्बाइन चल पा रहे हैं, सो भी कुछ घंटों के लिए। बिन पानी सब सून- बाँध भी सून, टर्बाइन भी सून। यहाँ से ओंकारेश्वर गए। चौबीस अवतार ओंकारेश्वर बाँध की डूब में आ

गया है। ओंकारेश्वर में तीन दिन तक आशीष चौकसे का स्नेहपगा आतिथ्य पाते रहे। ओंकारेश्वर पहाड़ की पहले हमने पैदल परिक्रमा की,

बाद में नाव से। जहाँ नर्मदा और गोमती का संगम होता है, उस स्थान की मनोरम छवि को मुग्ध होकर देखते रहे। दीवाली हमने ओंकारेश्वर में मनाई।

यहाँ से महेश्वर गए। रास्ते में खेड़ीघाट के पुल के पास विवेकानंद साधना केन्द्र है। दीपक भालसे ने हमें वह दिखाया। पास में सुधा माता की कुटी है। वे यहाँ एकांत साधना कर रही हैं। पड़ोस में स्मशान है। मुरदे जलते रहते हैं। मैंने उनसे पूछा कि आपको यहाँ अकेले डर नहीं लगता? उन्होंने कहा, "सूतिकागृह और स्मशान- एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर सूतिकागृह से डर नहीं लगता, तो स्मशान से क्यों?"

महेश्वर बाँध मंडलेश्वर के निकट बन रहा है। बाँध तो देखा ही, यहाँ से हम लोग महेश्वर भी हो आए। महेश्वर के घाट जितने उपयोगी हैं, उतने ही सुंदर हैं। घाट पर बने भवन की दीवारों पर बनी स्त्री-पुरुष की मूर्तियों में मराठा लोककला की झलक दिखाई देती है।

यहाँ से इन्दौर। दिनेश कोठारी के घर रहे। वहाँ से जब घर आ रहे थे तो मेरे मन में नानी की वाणी गूँज रही थी: नर्मदा की नहाई छोरी है, संस्कार अच्छे कैसे नहीं होंगे !
मेरे बारे में भी कुछ ऐसा ही कह दो न, नानी !

14. बूढ़ी नदी और बूढ़ा यात्री

पता नहीं सहस्त्रबाहु हुआ था या नहीं, लेकिन हर बड़ी नदी सहस्रबाहु होती है। अनगिनत नदियाँ आकर उसमें मिलती हैं और उसे पुष्ट करती हैं। बड़ी नदियों में जो पानी होता है, उसमें उनकी सहायक नदियों की भागीदारी कम नहीं होती। बड़ी नदी सूर्य है और उसकी सहायक नदियाँ उसके ग्रह-उपग्रह। बगैर सौरमंडल के सूर्य कैसा !

बड़ी नदी कहती है- मैं समुद्र से मिलने जा रही हूँ, कोई चलना चाहे तो चले। और सैकड़ों नदियाँ उसके साथ हो लेंती हैं। वे सोचती हैं, अपने बल-बूते समुद्र जाना संभव नहीं। जाएँगी तो भटके बच्चे की सी स्थिति हो जाएगी। रास्ते में ही सूख जाएँगी या बालू में खो जाएँगी। वे बड़ी नदी के साथ हो लेती हैं। और बड़ी नदी उसे सीने से लगाकर कहती है- बहन, मेरे साथ चलने के लिए तुमने तो अपना अस्तित्व ही समाप्त कर दिया !

मनुष्य की तरह नदी भी समाज में रहना पसंद करती है- अपने समाज में। उनकी रचना अकेले रहने के लिए नहीं हुई। दो नदियाँ मिलकर जिस तरह एक रंग एक रूप हो जाती हैं, वैसा एकात्म मिलन केवल एक और पदार्थ का होता है और वह है आग। एक द्रव तो दूसरा वायु। किसी ठोस पदार्थ में यह क्षमता नहीं। इसीलिए हमारे ऋषियों ने कहा कि जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलती है, या एक ज्योति दूसरी ज्योति में मिलती है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मा से मिलती है। उन्होंने कभी किसी ठोस पदार्थ की उपमा नहीं दी।

नर्मदा बड़ी नदी नहीं। वह सहस्रबाहु भले ही न हो, अष्टभुजा तो है। उसकी आठ सहायक नदियाँ ऐसी हैं जिनकी लंबाई 125 कि.मी. से ज्यादा है। हिरन 188 कि.मी., बंजर 183 कि.मी. और बुढ़नेर 177 कि.मी. लंबी है। नर्मदा की सभी सहायक नदियों को हमने केवल संगम पर ही देखा था, फिर भी मैं बुढ़नेर के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुआ था। कोई 25 बरस पहले अपनी प्रथम नर्मदा परिक्रमा के दौरान उसे पहली बार देखा था, तो देखते ही भा गई थी। मैंने कहा भी था- इतनी सुंदर नदी और नाम बुढ़नेर। इसका नाम तो युवनेर होना चाहिए। छह माह पूर्व जब उसे दोबारा देखा तो सोचा, क्यों न इस बाँकी बुढ़नेर की ही परिक्रमा की जाए ! अब तो हर पदयात्रा में कान्ता साथ रहती है। यह एक नए ही ढंग की सप्तपदी है।

बुढ़नेर की पदयात्रा करने जा तो रहे हैं लेकिन हमारे पास उसके बारे में कोई भी जानकारी नहीं थी। वह कहाँ से निकली है, किन-किन गाँवों से होकर बहती है, उसकी लंबाई कितनी है, इन सब के बारे में कुछ भी पता नहीं था। यह पानी की गहराई जाने बिना उसमें छलांग लगाने जैसा था। यह जोखिम तो हमें उठाना ही पड़ेगा। मोटे तौर पर इतना अंदाज जरूर था कि वह एक सुनसान आदिवासी- बहुल पहाड़ी इलाके से होकर बहती है जो आधुनिकता की सीमाओं से कोसों दूर है।

इस बार हमारे साथ एक नया सदस्य चल रहा है- प्रदीप गुप्ता। प्रदीप तो पिछली यात्रा में ही साथ चलना चाहता था, लेकिन हमारे दल में पहले से ही 17-18 सदस्य हो गए थे। नया सदस्य लेने की स्थिति में हम नहीं थे। विवश होकर उसका नाम प्रतीक्षा सूची में रखना पड़ा। इस बार तुरंत ले लिया। उसकी पत्नी भी नौकरी करती है। उसके लिए बच्चों को अकेले

सँभाल पाना मुश्किल होगा। इसलिए उसने प्रदीप से कहा कि चार या पाँच दिन में वापस आ जाना। बाद में प्रदीप ने मुझसे कहा कि उसे फड़फड़ाने दीजिए, मैं तो पूरी यात्रा में साथ रहूँगा। अभी मेरी सास आई हुई हैं, वे बच्चों को सँभाल लेंगी। अपनी परंपरा के अनुसार परिहार जी केवल चार दिनों के लिए चलेंगे। बोझा उठाने के लिए गाँव से गरीबा और कमलेश आ गए हैं। फगनू दादा हमें देवगाँव में ही मिल जाएँगे।

मंडला से कोई 30 कि.मी. की दूरी पर है देवगाँव। वहीं बुढ़नेर नर्मदा से मिलती है। इसलिए उसे देवगाँव संगम भी कहते हैं। बहू-बेटों ने कहा कि संगम तक हम आपको गाड़ी से पहुँचा देंगे। इस प्रकार 13 अक्टूबर 2004 को दोपहर बाद हम छह लोगों को छोड़ने के लिए घर के सोलह सदस्य तीन गाड़ियों में चले।

हम बीच रास्ते में ही थे कि आकाश में काले बादल गहराने लगे और देखते ही देखते जोरों से पानी बरसने लगा। कहीं यह पानी हमारी यात्रा पर पानी न फेर दे। कीचड़ से लथपथ पगडंडियों पर चलना बहुत मुश्किल होगा। भाग्य से कोई आध घंटे में पानी थम गया और आकाश भी स्वच्छ हो चला। तीन घंटे में मंडला पहुँच गए। वहाँ एक नाका है जिसे पार किए बगैर हम आगे नहीं जा सकते। वह है नरेशचंद्र अग्रवाल का सांस्कृतिक नाका। मंडला की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने में इस परिवार का मूल्यवान योगदान है। हम लोग बैठे ही थे कि उनके भाई गिरिजाशंकर आ गए। बोले, "हम दोनों मौसेरे भाई हैं लेकिन कृपया इसके आगे वे दो शब्द न लगाएँ। हम लोग पेशे से नहीं, जन्म से मौसेरे भाई हैं।"

उनका इशारा चोरों के मौसेरेपन से है।

देवगाँव पहुँचते शाम हो गई। ऊँची कगार पर से बुढ़नेर को नर्मदा में समाते देखते रहे। हमारे परिवार के सदस्यों को यहाँ की दृश्यावली सुंदर सपने जैसी मोहक लग रही थी। नीचे उतर कर सभी ने संगम का जल माथे पर चढ़ाया। किसी का घर जाने को मन नहीं कर रहा था। लेकिन जब अँधेरा घिरने लगा तो गहराते आकाश की पृष्ठभूमि में संगम को एक बार और देखा और चले गए।

यहाँ पक्की और बड़ी धर्मशाला है, रात उसी में रहे। यहाँ के बाबा मूलतः तमिलनाडु के हैं। सुबह फगनू दादा आ गए। हमारे पास बहुत अधिक सामान है, गरीबा और कमलेश उठा न पाएँगे। इतना अधिक सामान लेकर चलना हमारी मजबूरी है। हमें वीरान सुनसान इलाके में से जाना होगा, जहाँ छिटपुट गाँव तो होंगे, लेकिन दुकान एक न होगी। इसलिए पन्द्रह दिनों का राशन लिया था और उतना ही सूखा नाश्ता। फिर हमारे ग्रामीण सहायकों की खूराक वैसे ही ज्यादा होती है लेकिन हमारे फगनू दादा का तो जवाब नहीं। चार आदमी की खूराक अकेले उदरस्थ कर जाते हैं। उनके कारण राशन बहुत जल्द खत्म होने लगता है। वे 70

के हैं लेकिन उनकी बाँहों की मछलियाँ बहुत मजबूत हैं और शरीर गठा हुआ। ऐसे शरीर की खुराक भी तो उसी के अनुरूप होगी। बोझ बढ़ता हो तो बढ़े, एक सहायक और ले लेंगे लेकिन फगनू दादा के बगैर तो हम जा ही नहीं सकते। ज्यादा सहायक के लिए ज्यादा राशन, ज्यादा राशन के लिए ज्यादा श्रमिक। बोझ के कारण श्रमिक बढ़ते हैं, फिर श्रमिक के

कारण बोझ बढ़ता है!

हम एक सहायक को ढूँढ़ने लगे। गाँव के लोग धान की कटाई में लगे हैं, इसलिए कोई मिल नहीं रहा था। आखिर दोपहर तक एक दर्जी साथ चलने को तैयार हो गया। नाम था रमेश। साही के काँटों की तरह बाल, बढ़ी हुई हजामत और ढीले-ढाले पहनावे के कारण पूरा भोंदू लग रहा था। लेकिन था हट्टा-कट्टा, काफी सामान उठा लेगा। उसके आने से दल के सदस्यों की संख्या आठ हो गई। वैसे फगनू दादा श्रमिक नहीं हैं, फिर भी थोड़ा-बहुत सामान उठा ही लेते हैं।

14 अक्टूबर 2004 के तीसरे पहर "नर्मदे हर!" के घोष के साथ चल पड़े। पदयात्रा भले ही बुढ़नेर की हो, नाम तो नर्मदा का ही चलेगा।

संगम के निकट एक बाबा कह रहा था, "मैं परिपूर्ण हूँ। परिपूर्ण इसलिए हूँ क्योंकि तपोभूमि नर्मदा में रहता हूँ।" जीवन में पहला आदमी मिला जो कह रहा था कि मैं परिपूर्ण हूँ और मुझे किसी से कुछ नहीं चाहिए।

चट्टानों के बिछावन पर लेटी और सुबह की कोमल धूप में झिलमिलाती बुढ़नेर कितनी सुंदर दिखाई दे रही थी। इसके साथ ही मन में एक दुष्ट विचार भी आ गया। क्या वह आगे भी इतनी ही सुंदर होगी या नर्मदा की आँखों में सुंदर दिखाई देने के लिए थोड़ी देर पहले ही सजी-सँवरी है?

रात रयगाँव-इन्द्रा की पाठशाला में रहे। नवरात्र शुरू हो गए हैं। पाठशाला के प्रांगण में देर रात तक रामलीला होती रही। दूसरे दिन दोपहर को मोहगाँव पहुँचे। यह जरा बड़ा-सा गाँव है। यहाँ प्रदीप ने कोरे कागज की एक नोटबुक और सस्ता-सा डॉट-पेन खरीदा। मेरी देखादेखी उसने भी

स्केच करना शुरू कर दिया। (और एक चित्रकार का जन्म हुआ।)

रात गुप्तगंगा में रहे। सुबह कुकरा नाला पड़ा। वह गहरा था। उसे शेखर

ढीमर की डोंगी में बैठकर पार किया। उसने टोका, "इतना सामान लादकर चले हो, पर असली सामान तो लिया ही नहीं। ढपली कहाँ है?"

रोटी, कपड़ा, मकान और ढपली- ये चार हैं हमारी मूलभूत आवश्यकताएँ। पहली तीन शरीर के लिए, चौथी मन के लिए। कितनी बड़ी बात कही उस अनपढ़ नाविक ने !

शाम को ठेभा पहुँचे। यहाँ भी रामलीला का कार्यक्रम था। काफी दर्शक एकत्र हुए थे। मुख्य मंच के निकट एक मंच और बना था जो काफी ऊँचा था। गायक और वादक इसी ऊँचे मंच या मचान पर आसीन थे। आज का विषय था नारद-मोह। एक सुंदरी के सौंदर्य से आकर्षित होकर नारद उसके स्वयंवर में गए। सुंदरी का ध्यान आकर्षित करने के लिए बीहड़ हरकतें करने लगे। उचक-उचक कर उसकी ओर देखते। नारद की इस उछल-कूद ने दर्शकों को बहुत हँसाया। मंच साधारण था, अभिनेता साधारण थे और उनकी वेशभूषा भी साधारण ही थी, लेकिन दर्शकों की खुशी असाधारण थी। वे पेट पकड़कर हँस रहे थे। दर्शकों के अभिनंदन से उत्साहित नारद और भी ज्यादा उछल-कूद करने लगे। दुर्भाग्य से नारद की उछल-कूद काम न आई। सुंदरी (सही शब्द होगा 'सुंदरे', क्योंकि लड़का ही लड़की बना था।) ने किसी दूसरे के गले में वरमाला रोप दी। ऐसे आयोजन ग्रामीणों के शुष्क जीवन को रसीला बनाते हैं।

दूसरे दिन शाम को पांडकला पहुँचे। पाठशाला में रहे। यहाँ आदिवासी लड़कियों के लिए भी एक छात्रावास है। रामलीला यहाँ भी होती है। बच्चों ने प्रांगण को खूब सजाया था। बाहर खुले में खाना बना। जब तक खाकर उठे, हमारे आसन ओस से भीग गए। मुश्किल से सात या साढ़े सात बजे होंगे। रात भर ठंड में ठिठुरे। सुबह इतना घना कुहरा था कि पास में खड़ा आदमी दिखाई नहीं देता था। कुहरे ने छँटने में काफी देर कर दी तो हम लोग दूधिया धुंध में ही चल पड़े।

आगे जाने पर सामने तट पर एक गाँव दिखाई दिया घुघरी। वहाँ से मंडला के लिए बस मिलती है। परिहार जी भला कब चूकने वाले थे! उन्हें इसी तट पर बस की मादक गंध आने लगी थी। हम लोगों को बुढ़नेर के हवाले करके वे नाव से उस पार चले गए। वैसे उन्होंने अपना वादा पूरा किया था, देवगाँव से चले आज

चौथा दिन था। उनके लिए चौथा दिन हम लोगों से छिटकने का दिन है।

बुढ़नेर पर सड़क का पुल मिला। यहाँ से दोनों तटों पर घना जंगल शुरू हो गया। रास्ते में लाटो और इलाही गाँव पड़े। लाटो के पास बुढ़नेर में कई छोटे-छोटे प्रपात हैं। उन्हें देर तक देखने के बाद चल दिए। ऊँची पहाड़ी चढ़कर, खेतों में से होते हुए बिजौरा पहुँचे। पंचायत भवन में रहे। पास के घर में जो पति-पत्नी रहते हैं, वे ही इसकी देखभाल करते हैं। मना करने पर भी सदाव्रत दिया। उनके घर गए। वहाँ एक बच्चा खेल रहा था। बड़ा ही सुंदर चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें। हम लोगों की ओर कौतूहल से देखने

लगा। महिला ने कहा, "यह मेरे देवर का लड़का है। इसने अपने बाप का मुँह नहीं देखा। उसके मरने के दो महीने बाद पैदा हुआ। ढाई साल का हो गया है, पर कुछ भी नहीं बोलता।"

कान्ता ने कहा, "कुछ बच्चे देर से बोलना सीखते हैं।"

"सारा दिन हमीं लोगों के पास रहता है। उसकी माँ खेत पर गई है।"

इस गाँव में पानी की भारी दिक्कत है। बहुत दूर से लाना पड़ता है। इसी में खाना बनाने और खाने में काफी देर हो गई। इस ओर बहुत ठंड है, रात भर ठिठुरे। सुबह चलने लगे तो कान्ता ने उस महिला के हाथ में सौ रुपए का नोट रखा। "नहीं, हम रुपए नहीं लेंगे।" किसी तरह नहीं ले रही थी तो कान्ता ने कहा, "यह तुम्हारे लिए नहीं, बच्चों के लिए है। बच्चों को मिठाई ले देना।"

सुनते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। कान्ता घबरा गई, पता नहीं उससे कौन सी चूक हो गई। तभी वह बोली, "इसी की तो कमी है अम्मा। हमारे बच्चे नहीं हैं।" उसका रुदन रुकता ही न था। उसका चेहरा आँसुओं से भीग गया। कान्ता ने उसे अपनी बाँहों में भर लिया और उसे चुप कराते-कराते खुद भी रोने लगी। लेकिन थोड़ी देर में अपने आप पर काबू पा लिया। "मैं तुम्हारा दुःख समझती हूँ, बहन। धीरज रखो। भगवान किसी को बच्चे देर से देते हैं।" उसके हाथ में जबर्दस्ती रुपए दूँस दिए। इतना अच्छा है कि वह पास के गाँव की आँगनबाड़ी में काम करती है, इसलिए दिन भर छोटे-छोटे बच्चों का साथ रहता है।

वहाँ से भारी मन से चले। आज भी उसकी आँखों में उफनती पीड़ा का चित्र आँखों के सामने उभरता है तो मन करुणा से भर उठता है।

कोई तीसरे पहर किसली गाँव के बाहर एक अकेली झोंपड़ी पड़ी। उसमें श्रीचंद अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ रहता है। उसके तीन बच्चों की मृत्यु पहले ही हो चुकी है। वह अपने आँगन में अपने पड़दादा की लोहे की सीढ़ी रखे है और रोज सबेरे उसकी पूजा करता है। दी-तीन त्रिशूल भी गाड़ रखे हैं। उससे बातें होने लगीं तो उसने एक संस्मरण सुनाया- मेरी दादी पढ़ी-लिखी नहीं थीं, पर बहुत होशियार थीं। शिक्षा का महत्त्व समझती थीं। वे चाहती थीं कि मैं पहूँ। वे मुझे पढ़ाना चाहती थीं। मैं पढ़ने में होशियार भी था। उन्होंने कहा, "पढ़ोगे-लिखोगे तभी इस गरीबी के नरक से बाहर निकल सकोगे।" लेकिन मैं अभी चौथी में ही था कि मेरे माँ-बाप ने मेरी शादी तय कर दी। दादी चाहती थी कि मैं शादी न करूँ और पढ़ूँ। "अभी तुम्हारी उम्र पढ़ाई की है, ब्याह की नहीं," उन्होंने जोर देकर कहा। लेकिन माँ-बाप के खिलाफ भला कैसे जाता। फिर मेरे मन में शादी के प्रति आकर्षण भी था। शादी तय हो गई। हम लोग लड़की के घर गए थे। घर पर दादी अकेली रहीं। वहाँ से लौटे तो दादी को इसी कोठरी में फंदे पर लटकते हुए पाया। दादी बहुत गुस्सैल थीं और शराब की नशेड़ी भी। इसी गुस्से में पहले खूब शराब पी और फिर फाँसी लगा ली। हमने सपने में भी नहीं सोचा था कि वे ऐसा कदम उठाएँगी। शादी की खुशी पर पानी फिर गया। मैं दादी को बहुत चाहता था। आज भी उनकी खूब याद आती है। जब सोचता हूँ कि मेरी वजह से दादी ने फाँसी लगा ली तो मन उदास हो जाता है।

हम दादी के विद्या-प्रेम की तो तारीफ करेंगे, लेकिन क्रोध में उत्तेजित हो कर फाँसी लगाने के कार्य की निंदा करेंगे। जिंदगी मिट्टी का कुल्हड़ नहीं जो जब चाहा फोड़ दिया।

इस पदयात्रा में एक विचित्र बात यह देखने को मिल रही है कि प्रायः सभी गाँव नदी के किनारे नहीं, डेढ़-दो किलोमीटर दूर बसे हैं। रात रहने के लिए नदी छोड़कर, चढ़ाई चढ़ कर दो किलोमीटर जाओ, सबेरे दो किलोमीटर वापस आओ, तब आगे बढ़ो। आगे का गाँव डूंड़ादई भी नदी से काफी दूर था। गाँव की सरपंच

रतनबाई ने पंचायत का कमरा खोल दिया जिसमें दरी भी बिछी थी। हमारे लिए साधारण सी दरी भी बड़ी नियामत है। इससे नीचे की ठंड से बचाव होता है। कुएँ में पानी इतना ऊपर था कि हाथ बढ़ाओ और पानी भर लो।

सुबह रास्ता दिखाने के लिए अंतराम साथ चला। संतराम सुना था, अनंतराम भी सुना था। कहीं मुझसे सुनने में चूक तो नहीं हो गई। पूछने पर उसने कहा कि मेरा नाम अंतराम ही है और माँ-बाप द्वारा दिए गए इस नाम को बदलने का मेरा कोई इरादा भी नहीं।

पठार से उतर कर नदी-तट आ गए। यहाँ नदी के दोनों तटों पर बहुत बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं- गोल-मटोल भीमकाय चट्टानें। यहाँ लोग इसे भीम के नगाड़े कहते हैं। इन नगाड़ों के बीच से होकर ही जाया जा सकता था। कहीं-कहीं वे इतनी पास थीं कि दब-सिकुड़कर भी नहीं जा सकते थे, रेंग कर जाना पड़ा। हम लोग तो किसी तरह घिसट कर निकल गए लेकिन गरीबा,

कमलेश और रमेश के पास तो भारी बोझ है। रमेश ने तो एक लाठी से काँवर-सी बना ली है, उसके दो पलड़ों के साथ वह कैसे निकलेगा। लेकिन तीनों कहीं न कहीं से आ ही गए।

रमेश देखने में भले ही भोंदू-सा लगता हो, लेकिन थोड़े ही दिनों में हमने पाया कि वह एक छोटा-मोटा दार्शनिक ही है। उसकी भाषा विद्वानों जैसी शुद्ध थी। गरीबा और कमलेश उसके चेले बन गए थे और नाना प्रकार के प्रश्न पूछते रहते थे और एक संत के धैर्य के साथ रमेश उनके उत्तर देता। एक बार उन्होंने स्वर्ग और नरक के बारे में पूछा तो रमेश ने कहा- स्वर्ग और नरक ऊपर आकाश में नहीं होते। सज्जनों के आसपास स्वर्ग होता है और दुर्जनों के इर्द-गिर्द नरक। स्वर्ग और नरक की उसकी इस व्याख्या को सुनकर मैं भी उसके चेलों की जमात में शामिल हो गया। अवसर मिलता तो वह बहुत बड़ा दार्शनिक होता। लेकिन वह गाँव में दर्जी है और चालीस रुपए रोज भी नहीं कमा पाता। पता नहीं हमारे देश में ऐसी कितनी ही प्रतिभाएँ या तो मरु-पथ में खो जाती हैं या एकांतवास की सजा काट रही हैं।

शाम को झुंझर-महगाँव पहुँचे। गाँव तो नदी से दूर है लेकिन नदी के निकट तीन-चार झोंपड़ियाँ हैं। इसे नदी-टोला कहते हैं। यहाँ सुखलाल के घर रुके। पास

के गाँव में साप्ताहिक बाजार भरा था। उसकी पत्नी वहाँ गाजर बेचने गई थी, थोड़ी देर में आ गई। केवल तीन या चार किलो गाजर बिके थे। 'बाजार में किसी ने बताया कि तुम्हारे घर पाहुने आए हैं तो जल्दी आ

गई।'

दो कमरों की छोटी-सी झोंपड़ी थी। रात को सोने के लिए एक कमरा हमें दे दिया। एक कोने में मुर्गियाँ थीं और दूसरे कोने में बछड़ा बँधा था। छोटा-सा कमरा, दब-सिकुड़ कर सोए। सबेरे देखा तो सुखलाल और उसका बेटा कड़ाके की ठंड में बाहर खुले में सोए थे। वे बाहर सोए ताकि सर्वथा अपरिचित लोग कमरे की गरमाहट में सो सकें। 'अतिथि देवो भव' का शाब्दिक अर्थ मैं जानता था लेकिन उसे कार्य करते अपनी इन पदयात्राओं के दौरान ही देखा।

झुंझर-महगाँव से चाँड़ा

कितना रोमांचक होता है नदी के संग-संग चलना ! हर स्थान नया, हर भोर नई! इन पदयात्राओं ने मेरे लिए प्रकृति-सौंदर्य के कितने ही बंद दरवाजों को खुलवाया। सोई हुई नदी को, जागते तारों को, मंडराते बादलों को, निस्तब्ध वनों को, लहराते खेतों को, पशुओं के खुरों की छाप को, पत्तों पर पड़ती ओसकणों की थाप को, मछुआरों की नावों को, नदीतट के गाँवों को इन सभी को देख-देखकर मैं विस्मय-विमुग्ध होता रहता। इससे अधिक आनंदमय और क्या हो सकता है? लेकिन संसार के यथार्थ की मार के कारण लोग कहाँ चल पाते हैं!

सुबह आगे बढ़े। खुदराही के बाद बुढ़नेर पर एक छोटा-सा पुल मिला। इसी पर से डिंडौरी से बिछिया तक सड़क जाती है। पुल के पास एक महिला अपनी झोंपड़ी में दरवाजे की चौखट को दोनों हाथों से पकड़े किसी दुलहिन की तरह खड़ी थी। उसके खड़े होने की भंगिमा इतनी आकर्षक थी कि उसका स्केच किए बगैर रहा न गया। मैं स्केच करने लगा

तो प्रदीप भी उसी का स्केच करने लगा। प्रदीप बाजी मार ले गया। उसका स्केच ज्यादा अच्छा हुआ। भील ने अर्जुन को लूट लिया !

दोपहर को मैनपुरी पहुँचे। यह गाँव बुढ़नेर के निकट बसा है और बड़ा भी है। कच्चे घरों के बीच से एक रास्ता हमें नदी तक ले गया। स्नान करते समय एक

सज्जन से बातें होने लगीं तो आगे का रास्ता दिखाने वे बड़ी खुशी से हम लोगों के साथ चलने को तैयार हो गए। नाम था सोनूलाल धुर्वे। वे मलेरिया स्वैच्छिक कार्यकर्ता के पद पर कार्यरत हैं और इस सिलसिले में गाँवो में जाते रहते हैं।

हमारी पगडंडी पहाड़ियों में से है। आगे एक गाँव पड़ा-कोलमगहन। मानो कोपनहेगन का सहोदर हो! सोनूलाल ने वहाँ कुछेक लोगों को मलेरिया की दवा दी और एक मरीज का काँच-पट्टी (स्लाइड) पर खून लिया। वे अपना कार्य बड़ी ही सेवा-भावना से कर रहे थे।

यहाँ से आगे बढ़े। चलते-चलते बातें होने लगीं। बोले, "आपके साथी ने मुझे बताया कि आप लेखक हैं। तो क्या आप मैथिलीशरण गुप्त जैसे लेखक हैं? क्या आपके लेखन में 'तुहिन कण' जैसे शब्द आते हैं?" और उन्होंने

चारु चंद्र की चंचल किरणें, खेल रही थीं जल-थल में

स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी अवनि और अंबर-तल में।

कविता सुना दी। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, "गुप्त जी बहुत बड़े कवि थे। वे पद्य लिखते थे, मैं गद्य लिखता हूँ। 'तुहिन-कण' की जगह मैं ओस लिखना पसंद करता हूँ।"

"जी, कठिन शब्दों को अगर पांठक समझेंगे ही नहीं, तो उनमें उन्हें रस कहाँ से मिलेगा? तो क्या प्रेमचंद जैसे लेखक हैं?"

"प्रेमचंद बहुत बड़े उपन्यासकार थे। वे उपन्यास और कहानियाँ दोनों लिखते थे। मैं केवल निबंध लिखता हूँ। कभी आप जबलपुर आएँगे तो मैं आपको अपनी नर्मदा-पदयात्रा की दोनों पुस्तकें सहर्ष भेंट करूँगा।"

"मैंने कभी सोचा भी न था कि दूरदराज के इस पहाड़ी प्रदेश में मुझे किसी लेखक के साथ चलने का मौका मिलेगा। घर जाकर अपने बच्चों से कहूँगा कि आज मैं एक लेखक से मिला था और उसके साथ कोई आधा दिन पैदल चला था।"

एक लेखक से मिलकर वह जितना खुश था, उससे कहीं अधिक खुश मैं उस जैसे साहित्यानुरागी व्यक्ति से मिलकर था। उसकी वाणी में बड़ी मिठास थी। उसमें कुछ था जो उसके प्रति आदर का भाव जगाता था।

शाम को भरखी पहुँचे। उसे पहाड़ी पगडंडी से 5 किलोमीटर दूर स्थित अपने गाँव भी लौटना था। फिर भी वह हमारे रहने की व्यवस्था करने में

लग गया। मना करने पर भी नहीं माना। मैंने कहा, "रास्ते में अँधेरा हो जाएगा। अँधेरे में आप कैसे जाएँगे?"

"अँधेरा कहाँ है? अष्टमी का चाँद है। फिर यह मेरा जाना-बूझा इलाका है, मजे से चला जाऊँगा।"

आज की दुनिया में लोग इतने व्यस्त हो गए हैं कि दूसरों के लिए समय नहीं निकाल पाते। इस भले आदमी ने हमारे लिए न केवल समय निकाला, बल्कि रात के अँधेरे में अकेले जाना स्वीकार किया। वह चला गया और मेरे मन पर अपनी अमिट छवि छोड़ गया।

भरखी पठार पर स्थित है। हम लोगों को देखकर बहुत-से बच्चे आ गए। प्रदीप बड़ा ही मिलनसार है। उसने बच्चों को तरह-तरह के खेल सिखाए और उनके साथ खुद भी खेला। खुश होकर बच्चों ने लकड़ियों का ढेर लगा दिया। आटा खत्म हो चुका था इसलिए रोटियाँ नहीं बनीं।

दिन पर दिन बुढ़नेर छोटी होती जा रही है। शाम को एक अलग-थलग से घर के सामने यह सोचकर बैठ गए कि यहाँ रहने को जगह मिल ही जाएगी। लेकिन घर की स्त्री ने कहा कि घर में जगह नहीं है। संभवतः घर में वह अकेली थी इसलिए हमें न ठहराने का उसका निर्णय बिलकुल वाजिब था। इसलिए आगे बढ़े और रात खितौली की पाठशाला में रहे।

दिन निकलते ही चल दिए। दोपहर के बाद शाल-वन शुरू हो गया। दोपहर तक हरे-भरे खेत थे, अब हरा-भरा वन है। प्रकृति में हरे रंग का प्राधान्य है। मूल रंग तीन हैं- लाल, पीला और नीला। इसमें हरा रंग कहीं नहीं। न हो; लेकिन प्रकृति का लाड़ला तो हरा ही है। धरा के रोम-रोम में फूटता है

हरा।

जंगल घना होता गया। दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं देता। आगे एक नाला पड़ा। उसे पार करते समय कान्ता का एक पैर अचानक दलदल में गहरे तक धँस गया। ऊपर तो सूखी पपड़ियाई धरती थी लेकिन नीचे दलदल था। ज्यों-ज्यों वह उसे निकालने की कोशिश करती, त्यों-त्यों तरल कीचड़ में और धँसता। उसे लगा उसे कोई नीचे से खींच रहा है। वह अकेली थी, बुरी तरह से डर गई। उसकी घबराहट भरी चीख सुनते ही मैं उसकी ओर दौड़ा। गरीबा भी आ गया। हमने उसे सहारा दिया तो उसने अपना कीचड़ से लथपथ पैर बड़ी कठिनाई से निकाला। उसकी घबराहट देर तक बनी रही। मुझे आड़े हाथों लिया, "आप मेरी जरा भी परवाह नहीं करते, बस अपनी ही धुन में चलते रहते हैं। पीछे मुड़कर देखते तक नहीं कि मैं आ रही हूँ या नहीं।" वह बुरी तरह नाराज और क्षुब्ध थी। उसने जानलेवा चोररेता के बारे में सुन रखा था। इससे वह और भी ज्यादा डर गई थी।

देखा जाए तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं था। हर पल साथ चलना संभव नहीं। फिर मुझे यह पूर्वाभास कैसे हो सकता है कि कब, किसके साथ, कौन सी दुर्घटना होने वाली है? ऐसी पदयात्राओं में इन खतरों से दो-चार होना ही पड़ता है। फिर भी आत्मरक्षा में मैं एक शब्द नहीं बोला, उलटे माफी ही माँगता रहा। लेकिन वह इतनी डर गई थी कि उससे सीधा सोचा भी नहीं जा रहा था। उसे किसी पर तो अपनी खीझ निकालनी ही थी। मैं ही सबसे उपयुक्त पात्र था!

मेरे माफीनामे का जब उस पर कोई असर न हुआ तो मैं वहाँ से खिसक लिया, कुछ इतना निढाल-सा होकर मानो मुझ पर मार पड़ी हो। उसे सामान्य होने में समय लगा। जब उसका गुस्सा शांत हुआ तो मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया, "हे सर्वव्यापी, तुम्हें कोटि-कोटि धन्यवाद!"

भले ही वाल्मीकि ने न लिखा हो, भले ही तुलसी ने न लिखा हो, पर ऐसा हो नहीं सकता कि चौदह वर्ष के वनवास में राम को एक बार भी सीता की डाँट न खानी पड़ी हो। यह कोई अमूर्त्त कल्पना नहीं। यह मैं अपने स्वयं के अनुभव से कह रहा हूँ।

कहते हैं एक बार रास्ता भटकने से अच्छा है दो बार रास्ता पूछ लिया जाए। लेकिन कोई हो तब तो पूछें। आगे एक बड़ी सी नदी आई तो बुढ़नेर समझकर

हमने उसे पार नहीं किया, जबकि वह बुढ़नेर की सहायक नदी संजारी थी और हमें उसे पार करना था। इसी में भटक कर नदी से बहुत दूर दामीतितराही पहुँच गए। गाँव की पाठशाला बंद हो चुकी थी और शाला को ताला लगाकर शिक्षक अपने गाँव चले गए थे। भाग्य से स्कूल से लगा टूटा-फूटा खंडहर सा मकान खुला पड़ा था। उसके फर्श में कई गड्ढे थे और दरवाजे खिड़कियों में पल्ले नहीं थे। इसी काँजी हाउस में सोने के सिवा कोई चारा न था। कड़ाके की ठंड थी। चादरें टाँगकर खिड़कियों को बंद किया। ठंड की नाकेबंदी करने से कुछ तो बचाव हुआ। फिर भी खंजर-सी सर्द हवा जब खिड़कियों में से घुस आती तो हम सिहर उठते। उस रात हम जागे ज्यादा, सोए कम।

सबेरा होते ही बाहर जाकर धूप में बैठा। धूप भी कैसी ठंडी-ठंडी थी! लेकिन ज्यों-ज्यों सूरज चढ़ता गया, धूप बलवान होती गई। जब शरीर में पर्याप्त गरमी आई तो चल पड़े। वापस संजारी आए, उसे पार किया और आगे बढ़े। पास के गाँव से रात भर रामलीला देखकर दो ग्रामीण लौट रहे थे। हमारे अनुरोध पर आगे का रास्ता दिखाने वे हमारे साथ चले।

रोज नए-नए दृश्य सामने आते रहते हैं लेकिन आज डगौना में जो दृश्य देखा, वह अविस्मरणीय था। चौड़ी उथली बुढ़नेर एकाएक सँकरी होकर, शान और दबदबे के साथ घुमावदार चट्टानी दरें में प्रवेश करती है। मानो नदी ने धरती में चाकू से गहरा चीरा लगाया हो। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटे-छोटे प्रपात उसकी खूबसूरती में चार चाँद लगाते हैं।

डगौना की सँकरी बुढ़नेर भेड़ाघाट की संगमरमरी चट्टानों के बीच से बहती नर्मदा की याद दिलाती है। करीब-करीब वैसा ही दृश्य है। तो क्या बुढ़नेर ने यहाँ नर्मदा की नकल की है? नहीं। ग्रेट माइन्ड्स थिन्क अलाइक ! यह बुढ़नेर का स्वतंत्र सर्जन है।

हमारे पथप्रदर्शक साथी ने बताया कि कुछ बरस पहले बुढ़नेर को पार करते समय एक स्त्री का अचानक पैर फिसला और तेज बहाव के कारण वह खाई में चली गई। उसी दिन उसके पिता का दशगात्र का कार्यक्रम था और वह दोने-पत्तल के लिए पत्ते तोड़कर लौट रही थी। उसके साथ और भी लोग थे, मैं भी था पर

बहाव इतना तेज था कि वह पलक झपकते बह गई। उसका शव तक ढूँढ़ा न जा सका। पानी इतना गहरा है कि कई खटियों की रस्सी भी गहराई नापने में कम पड़ती है।

पास में एक साध्वी की कुटी है। उसने रुकने का बड़ा आग्रह किया। यदि भटक कर दामीतितराही न पहुँच गए होते, तो रात्रि विश्राम यहीं होता। लेकिन अभी-अभी ही तो चले थे, इसलिए आगे बढ़ना ही ठीक समझा। हम चाहते थे कि वे दो ग्रामीण रास्ता दिखाने के लिए आगे भी चलें, लेकिन वे घर जाना चाहते थे। साध्वी के बहुत कहने पर उनमें से एक हमारे साथ चलने को तैयार हो गया। नाम था लखनदास ।

आगे पहाड़ की तराई में बसा बैगाओं का छोटा-सा गाँव पड़ा। बैगाओं ने अपने कच्चे घरों को बल्लियों की बाड़ से घेर रखा था। यहाँ लकड़ी की कोई कमी नहीं।

यहाँ से वनाच्छादित पहाड़ की चढ़ाई शुरू। पहाड़ तो पिछले तीन-चार दिनों से रोज ही चढ़ रहे हैं लेकिन आज का पहाड़ सबसे ऊँचा और सबसे कठिन सिद्ध हुआ। खड़ी चढ़ाई और पथरीली पगडंडी। पत्थरों के कारण पैर फिसलते थे। पगडंडी कई जगह झाड़-झंखाड़ में छिपी रहती। एक पहाड़ चढ़ते तो दो और सिर उठाते। हर पहाड़ पिछले पहाड़ से उग्र। अच्छी बात यह थी कि हमारे ऊपर शाल वृक्षों का शामियाना था। हम लोग बहुत धीरे-धीरे चढ़ रहे थे, फिर भी मेरी साँस फूल गई और गला सूख गया।

एक जगह पत्तल के लिए पत्ते तोड़ने आया बैगा स्त्री-पुरुषों का एक दल मिला। वे लखनदास से परिचित थे। उन्हें देखकर हम लोगों को भी बड़ी खुशी हुई। बातें होने लगीं तो कान्ता ने कहा कि जरा पत्तल बनाकर

दिखाओ। उन्होंने पत्तलें बनाईं तो एक कुशल मेजबान की तरह कान्ता ने उन्हीं पत्तलों पर उन्हें नाश्ता कराया।

बड़ी मुश्किल से पहाड़ खत्म हुआ। पहाड़ पर से जब नीचे पसरा गाँव और दूर तक फैला मैदान दिखाई दिया तो राहत की साँस ली। ढलान उतरकर नीचे आ

गए। आगे जाने पर कच्ची सड़क मिली। यह हमें चाँड़ा तक ले जाएगी। अब भूलने-भटकने का सवाल नहीं। यहाँ से लखनदास चला गया। अगर वह न होता तो हम उन पहाड़ों में से शायद ही निकल पाते। आज हम लोग प्रायः 25 किलोमीटर चले थे और आधे से ज्यादा दिन तो पहाड़ चढ़ते-उतरते बीता था।

जब चाँड़ा पहुँचे तो बैगाओं के इस गाँव पर संध्या उतर रही थी। बैगाचक का यह प्रमुख गाँव है, यहाँ वन विभाग का रेस्ट हाउस है और बस भी आती है। बुढ़नेर का उद्गम यहाँ से 5 किलोमीटर दूर है। रेस्ट हाउस में एक बड़ा-सा कमरा मिल गया। हम कमरे के बाहर छपरी में खाना बना सकते हैं। पास में ही बुढ़नेर -जरा सी बुढ़नेर- बहती है। चारों ओर खूब पेड़ हैं। रेस्ट हाउस के चौकीदार ने बताया कि सागर विश्वविद्यालय के छात्रों का एक दल अपने अध्यापक के साथ सात-आठ दिनों से यहाँ आया हुआ है और पास में ही ठहरा है।

मैं बुढ़नेर देखने चला गया।

रमेश पानी भरकर आ रहा था। रमेश को देखकर अध्यापक और अध्यापक को देखकर रमेश चकित रह गए। दोनों देवगाँव की पाठशाला में साथ पढ़े थे !

रमेश ने उन्हें हमारे बारे में बताया तो वे तुरंत मिलने आए। रात के अँधेरे में बाहर छपरी में कान्ता खाना बना रही थी। "क्या आप लोग बुढ़नेर की पदयात्रा कर रहे हैं?"
"जी हाँ।"
"आप लोग कहाँ रहते हैं?"
"जबलपुर में।"
"क्या आप वेगड़ जी को जानती हैं?"
"कौन वेगड़ जी?"
"अमृतलाल वेगड़।"
"हमीं तो हैं!"
तब तक मैं आ गया। मुझ से बोले, "मैंने आपकी दोनों किताबें बड़े ही चाव से पढ़ी हैं। वर्षों से मिलने की इच्छा थी। आज यहाँ चाँड़ा में पूरी हुई। आप लोग भोजन से निवृत्त हो जाएँ, मैं अपने सभी छात्रों को लेकर आऊँगा। आप से

मिलकर उन्हें भी बेहद खुशी होगी।"

कोई दो घंटे बाद अपने छात्रों के साथ आ गए। 5 छात्र और 3 छात्राएँ। सभी एन्थ्रोपोलॉजी के छात्र थे और बैगा जनजाति का अध्ययन करने आए थे। अध्यापक का नाम था राजेश गौतम। साथ में उनकी पत्नी और

प्यारा-सा बेटा भी था।

सुबह बुढ़नेर के संग-संग चल दिए। उद्गम कोई 5 किलोमीटर दूर है। प्रदीप के पैर में छाले पड़ गए हैं, कठिनाई से ही चल पाता है। नदी के दोनों ओर शाल के घने पेड़ हैं। बिलकुल अमरकंटक जैसी दृश्यावली है। पगडंडी से अमरकंटक यहाँ से केवल 40 कि.मी. दूर है। चारों ओर सन्नाटा और निर्जन एकांत। दूर ठाड़पथरा दिखाई देने लगा। मतलब हम लोग थोड़ा आगे निकल आए हैं इसलिए वापस आए।

थोड़ी देर बाद एक छोटा उथला खेतनुमा तालाब आया। उसमें काफी घास उग आई थी और घास के कारण कई जगह पानी छिप-सा गया था। इसी में से बुढ़नेर एक क्षीण धारा के रूप में प्रवाहित होती है। यही है बुढ़नेर का 'जनमस्थान'। तो हम इस छोटी-सी अज्ञातकुलशीला नदी के मोहपाश में बँधे उसके उद्‌गम तक आ गए थे।

किसी कली का चटक कर फूल बनना, किसी पौधे का धरती फोड़कर बाहर निकलना या किसी पानी का तालाब से नदी बनकर बहना ये सभी प्रसन्नता के स्रोत हैं। किन्तु यहाँ प्रसन्नता से भी कुछ अधिक है। समझ में नहीं आ रहा कि वह आहलाद है अथवा आह्लाद से भी कुछ अधिक। यहाँ हम सभी ने बड़े ही भक्ति-भाव से लोटे से स्नान किया। रमेश गरीबा से कह रहा था, "अनेक सूक्ष्म धाराओं के सम्मिश्रण से यह धारा बनी है और नदी की देह धारण करके अपनी यात्रा प्रारंभ करती है।"

क्या भाषा बोलता है! विश्वास नहीं होता कि दसवीं कक्षा में ही पढ़ाई छोड़ देने वाला कोई व्यक्ति इतनी सुसंस्कृत भाषा बोल सकता है। हमने सर्वसम्मति से रमेश को अपना राजपुरोहित मान लिया और उससे कहा

कि हमारी ओर से पूजा-

अर्चना तुम ही करो। उसने नारियल और अन्य सामग्री के चढ़ावे और मंत्रोच्चार के साथ पूजा की। हम सभी ने दीप प्रवाहित किए। फिर नदी से लगी पगडंडी से चल दिए। एक किलोमीटर चलने के बाद एक बाबा की कुटी मिली। बाबा मूलतः बिहार के हैं और इस बियाबान में 30 वर्षों से अकेले रहते हैं। वे 70 वर्ष के थे, ऊँचे-पूरे थे और गेरुआ वस्त्रों में शांति की प्रतिमूर्ति लग रहे थे। इस तट पर पगडंडी है इसलिए वापस आने में परेशानी नहीं हुई।

रात को गौतम और उनके छात्र पुनः आ गए। कल वे बैगाओं के दो गाँवों में जाएँगे। उनके साथ जाने से हमें भी बैगाओं को निकट से देखने का अवसर मिलेगा। हम लोग पहले सिलपिड़ी और बाद में दादरटोला गए। सिलपिड़ी में एक वृद्धा के आँगन में बैठे। उसके चेहरे पर ऐसी नेकी और सादगी थी जो कम ही दिखाई देती है। आसपास जितने घर हैं, सभी उसी के नाती-पोतों के हैं। वह जितनी बातूनी थी उतनी ही हँसोड़ भी। उसकी हर बात पर उसे घेर कर बैठी स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँसती थी। हम उसकी भाषा से अनजान थे इसलिए उसकी बातों का रस न ले सके।

बैगा शहर के लोगों से दूर भागते हैं क्योंकि शहरी लोग केवल मुसीबतें लेकर ही आते हैं। तभी तो औरतें कान्ता से बिंदियाँ, चूड़ियाँ आदि लेने में हिचकिचा रही थीं। वे सोच रही थीं कि यह हमारी कोई चाल है और बाद में हम पैसे माँगेंगे। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि ऐसा नहीं है तो

उन्होंने वे चीजें खुशी-खुशी ले लीं। उन्होंने कान्ता को अपने घरों में झाँकने की अनुमति भी दी। कान्ता एक बैगा के बरामदे में गई तो बैठने के लिए बैगा ने एक बोरा बिछा दिया। कान्ता बैठी नहीं, खड़ी ही रही। यह सोचकर कि वह इसलिए नहीं बैठ रही है क्योंकि बोरा मैला और फटा है, उसने अपनी शाल ही बिछा दी जिसे वह ओढ़े था और उस पर बैठने के लिए कहा। कान्ता समझ गई, तुरंत बोरे पर बैठ गई। भीतर एक बच्चा रो रहा था। कान्ता ने कहा, "बच्चे को चुप क्यों नहीं कराते? कब से रो रहा है।"

"वह चुप नहीं होगा। वह भूखा है।" "तो उसे खाना दो।"

"खाना नहीं है।"

"हमारे पास है। हम देते हैं।"

"नहीं, आप आज खाना देंगी, कल कौन देगा? उसे भूखा रहना सीखना होगा। उसे भूखा रहने की आदत डालनी होगी।"

मैं स्तब्ध रह गया। ऐसे अभाव की तो हमने कल्पना भी नहीं की थी। अपने सीने पर कितना बड़ा पत्थर रखकर अपने कलेजे के टुकड़े से उसने यह कहा होगा। उनकी 'गरीबी को भी मात करने वाली गरीबी' का अंदाज हमें था। पर यह तो कल्पना से परे था। पलकें बरबस भीग गईं।

हमने यह भी देखा कि किसी भी घर में ताला नहीं था। लोग सिर्फ कुंडी चढ़ा दिया करते हैं। यहाँ तो सभी एक दूसरे को जानते हैं, कौन चोरी

करेगा? फिर उन घरों में है भी क्या !

रात को गौतम ने कैम्प-फायर का आयोजन किया। खूब ठंड थी लेकिन अलाव की लहकती आँच हमें गर्माती रही। छात्र-छात्राओं ने गीत सुनाए। एक ने गिटार बजाया। कान्ता ने गुजराती लोकगीत गाया। किन्तु सर्वश्रेष्ठ गायक रहा कमलेश। हमें पहली बार मालूम हुआ कि उसके गले में कैसा दर्द है। उसका गला मीठा था और स्वर सधा हुआ। वह बहुत सहज-स्वाभाविक ढंग से गा रहा था। अवसर मिलता तो वह चोटी का गायक होता। अवसर मिलता तो रमेश बड़ा दार्शनिक होता और प्रदीप बड़ा चित्रकार। मैं कितना भाग्यवान हूँ कि मेरे साथ ऐसे गुणी जन चल रहे हैं।

दूसरे दिन बस के लंबे सफर के बाद शाम को घर आ गए। घर के बाहर आँगन में मँझली बहू रेखा खड़ी मिली। उसे देखते ही कान्ता उससे लिपट कर फूट-फूट कर रोने लगी। चेहरा आँसुओं से भीग गया। "उम्मीद नहीं थी कि तुम लोगों को देखने जिंदा लौट सकूँगी।" तब तक घर के और सदस्य भी आ गए थे। छोटे वंशज को तो उसने छाती से चिपका लिया। यात्रा के दौरान वह दलदल में बुरी तरह धँस गई थी। बहू-बेटों को देखकर उसे इसी की याद हो आई थी और उसकी रुलाई फूट पड़ी थी। (कैसी अजीब बात है कि खतरों के समय तो हम अपने आँसुओं को दबाए रख सकते हैं, संयत व्यवहार भी कर सकते हैं, लेकिन

बाद में जब अपने प्रियजनों को देखते हैं तो हमारे हृदय का बाँध टूट जाता है और आँसू रोके नहीं रुकते।)

मेरे लिए यह दृश्य सर्वथा अप्रत्याशित था। मैं अपने आपको अपराधी- सा अनुभव करने लगा। मेरे ही कारण उसे इतनी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। उदास भाव से उसे देखता रहा। वैसे रोकर उसने ठीक ही किया। किसी दुखद स्मृति को दिमाग से निकाल फेंकने का यह उत्तम तरीका है। इसके बाद उसने इस घटना का जिक्र फिर कभी नहीं किया।

कान्ता आसानी से रोने वाली नारी नहीं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस बार की यात्रा कितनी कठिन रही।

यह ठीक है कि परिवार के सदस्यों को देखकर उसकी रुलाई फूट पड़ी थी लेकिन यह भी सच है कि वह सारा दिन चलती रही, खड़ी चढ़ाइयाँ चढ़ी, कीचड़ में धँसी, विकट चट्टानों के बीच से निकली और शाम को जब मैं भूख से बेहाल और थककर निढाल हो जाता तब वह खाना बनाने के काम में जुट जाती। उसी ने मुझसे कहा था कि प्रदीप भले ही घर लौट जाए, हम लोग उद्गम से संगम तक वापस जाएँ और बुढ़नेर की पूरी परिक्रमा करके ही घर लौटें। लेकिन मैं ही तैयार नहीं हुआ था। उसने साहस, आस्था और जीवट का जो उदाहरण प्रस्तुत किया था, उसे देखकर मैं चकित था।

आठ माह बाद हमारी शादी को 50 बरस पूरे हो जाएँगे। कान्ता की प्रारंभिक कोमलता परिपक्व होकर कब आत्मविश्वास में बदल गई, मुझे आहट तक न हुई। इसका पहला पता मुझे हमारी इस सबसे कठिन पदयात्रा में चला। कान्ता को पूरे ओज पर मैंने इसी यात्रा में देखा। बुढ़नेर ! मैं सदैव तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।

नर्मदा की सहायक नदी : बुढ़नेर

15. बूढ़ी नदी और बूढ़ा यात्री - 2

नदी-तट की हमारी पदयात्राएँ एक तरह की आवारागर्दी ही हैं- सांस्कृतिक आवारागर्दी। अनुभव से मैंने पाया है कि नदियों में, पहाड़ों में, वनों में समूची प्रकृति में ऐसा कुछ है जो आत्मा के विकास में योग देता है। यहाँ आने पर भीतर का अँधेरा थोड़ा कम होता है।

निकलना तो चाहते थे 20 मार्च 2006 को, लेकिन निकल पाए 20 अप्रैल को। स्नेहीजनों ने कहा भी कि गरमी बहुत बढ़ गई है, न जाएँ तो

ही अच्छा। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि बुढ़नेर के उद्गम से अमरकंटक ज्यादा दूर नहीं, वहाँ उतनी गरमी नहीं पड़ती। फिर वहाँ घना शाल वन भी है। चिंता की कोई बात नहीं।

इस बार हम सात हैं। दुर्ग से फोटोग्राफर कान्ति सोलंकी आए हैं। वे दो बार हम लोगों के साथ चल चुके हैं। अहमदाबाद से रुद्र और मारुत आए हैं। रुद्र पहले भी हमारे साथ चल चुका है। दोनों नौजवान हैं। हमेशा साथ चलने वाले सेवक गरीबा और कमलेश हैं जिन्हें हम गाँव से बुला लेते हैं। दोनों की हाल ही में शादी हुई है। मुझे डर था कि इन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है, हमारे साथ वानप्रस्थाश्रम में शायद ही चलें, लेकिन दोनों आ गए हैं। और हम दो हैं- कान्ता और मैं। नर्मदा की दूसरी परिक्रमा में वह हर बार साथ चलती है। वह 70 की है और मैं 78 का। कायदे से मुझे संन्यस्त आश्रम में होना चाहिए था, लेकिन मजबूती से गृहस्थाश्रम में जमा हुआ हूँ। मेरी योजना अंतिम दो आश्रमों को बाईपास करके सीधे स्मशानाश्रम जाने की है। अंतिम और अनिवार्य आश्रम तो यही है। जाने की तारीख अभी तय नहीं है।

डिंडौरी होते हुए शाम तक चाँड़ा पहुँच गए। बैगाचक का यह प्रमुख गाँव है। रात यहीं रहे। ठिठुरानेवाली रात थी। लोगों को चाहिए था कि हमें गरमी से नहीं, ठंड से डराते। दूसरे दिन सबेरे ठाड़पथरा गए। बुढ़नेर का उद्गम इसी गाँव के पास है। पेड़-पौधों से रहित एक पठार पर स्थित उस अलग-थलग से गाँव में एक बैगा के घर गए। घर का आँगन सलीके से झाड़ा-बुहारा हुआ था और मुर्गियाँ बड़े आराम से घूम रही थीं। आँगन में आठ-दस स्त्री-पुरुष बैठे थे। एक दरवाजे के पास एक युवती खड़ी थी।

उसकी गोद में उसका बच्चा था। युवती का सौंदर्य आश्चर्य में डाल देने वाला था। ऐसा सुकुमार उदास सौंदर्य मैंने शायद ही देखा हो। उसकी भाव-भंगि में मासूमियत थी। ललाट के गुदने उसके आकर्षण का हिस्सा थे। सर्वमान्य रूपसी वह भले ही न हो, पर उसमें एक प्रकार का चित्ताकर्षक सम्मोहन था। हम लोग उससे बातें करना चाहते थे उसकी हँसी सुनना चाहते थे-उदासीभरी हँसी, लेकिन हम लोगों को देखकर उसका बच्चा बेहद डर गया था और जोर-जोर से रो रहा था। इसलिए ज्यादा बात न हो सकी। घर के बुजुर्ग से मैंने पूछा कि यह कौन है। उसने कहा, यह मेरी बेटी है, अभी मायके आई हुई है। मैं हैरान रह गया। साधारण से दिखने वाले पिता की बेटी इतनी सुंदर! जरूर इसकी माँ सुंदर होगी। माँ भी वहीं थी। वह तो और भी गई-बीती थी। पिता साधारण, माता अति साधारण, फिर भी बेटी सौंदर्य की ताजा किरण की तरह ! उसे तो यह भी पता नहीं कि उसमें यह विशिष्ट गुण है। आनुवांशिकता के सिद्धांत की ऐसी घोर अवहेलना मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। विधाता को कभी-कभी अपने ही बनाए नियमों को तोड़ने में मजा आता है।

यहाँ से कँधे तक ऊँची झाड़ियों में से होते हुए नीचे उतरे। खेत जैसे जिस उथले तालाब से हमने बुढ़नेर को निकलते देखा था, वहाँ कुछ नहीं था, सूखी धरती थी। लगता है, बुढ़नेर दरवाजा बंद करके उस पर ताला लगाकर कहीं चल दी है। वैसे मैं कहना तो चाहता था- लगता है घोड़ा अस्तबल से भाग गया है। लेकिन सुरुचि-सम्पन्न लोगों को यह उपमा भदेस लगेगी, इसलिए नहीं कही। यहाँ से एक सूखी नाली शुरू होती थी। हम इसी सूखी बुढ़नेर के साथ-साथ चले। कोई आधा किलोमीटर बाद बुढ़नेर में पानी दिखाई दिया। उसका उद्गम आधा किलोमीटर नीचे खिसक आया था। ज्यों-ज्यों गरमी बढ़ेगी, वह और नीचे खिसकता

चला जाएगा। छोटी-मोटी नदियों के ऐसे ही उड़नछू उद्गम होते हैं। हमने यहीं लोटे से स्नान किया। यहीं एक बाबा की कुटी है। वे हमें पहचान गए। बहुत खुश हुए। उनकी खुशी का एक कारण और है। उनकी बकरी ने आज ही दो बच्चों को जन्म दिया है। उनके पास एक गाय भी है। इस निर्जन स्थान में वे अकेले रहते हैं। ये पशु ही उनके संगी-साथी हैं।

आज शुक्रवार है और शुक्रवार के दिन चाँड़ा में साप्ताहिक बाजार भरता है। बैगा स्त्री-पुरुष या तो कुछ खरीदने या कुछ बेचने वहीं जा रहे हैं। हमें भी वापस चाँड़ा जाना होगा क्योंकि बुढ़नेर चाँड़ा से होकर बहती है। एक लड़का बहँगी में बोझा लादे जा रहा था। बीच-बीच में सुस्ताने के लिए बहँगी नीचे रख देता था। हमारे साथी कान्तिभाई ने कहा, लाओ, थोड़ी देर के लिए इसे मैं उठाता हूँ, ताकि तुम्हें थोड़ा आराम मिले। जब उठाने लगे तो वह उनसे उठी ही नहीं! फिर भी, पूरी ताकत लगाकर उठा तो ली, पर दो कदम में ही लड़खड़ाने लगे। अगर ज्यादा देर तक उठाते तो कान्तिभाई को इसी बहँगी में बिठाकर अस्पताल ले जाना पड़ता। बैगा दुबले-पतले होते हैं पर मजबूत कद-काठी के होते हैं और बड़े मेहनती भी।

चाँड़ा के बाजार में हमें आसपास से आए कई बैगा स्त्री-पुरुष देखने को मिले। कान्तिभाई को फोटोग्राफी के लिए पर्याप्त सामग्री मिली। वे कैमरे के कलाकार हैं, सपाट से दृश्य में भी सौंदर्य ढूंढ़ लेते हैं। मैं बैगा स्त्री-पुरुषों को देख रहा था तभी एक लंबा आदमी जाने कहाँ से प्रकट हुआ और सहसा मेरे पैर छुए। मैं अचरज में पड़ गया। दूर-दराज के इस छोटे-से वनग्राम में मेरी पहचान का भला कौन हो सकता है! देखा तो चेहरा

परिचित-सा लगा पर पहचान नहीं पाया। वह बोला, 'मैं नर्मदा प्रसाद।'

"अरे नर्मदाप्रसाद, तुम ! तुम्हें देखकर बड़ी खुशी हुई। यहाँ कैसे?"

"आजकल मैं यहीं पदस्थ हूँ।"

"कल सबेरे से आगे बढ़ेंगे। तुम भी चलो हमारे साथ।"

यहाँ नर्मदाप्रसाद के बारे में थोड़ा बताना जरूरी है। कोई 4 बरस पहले एक चिट्ठी आई। वह आज भी मेरे पास है। उसे ज्यों की त्यों दे रहा हूँ-

शुभ स्थान चाँड़ा 18.8.02
परम श्रद्धेय गुरुवरजी,
चरण-स्पर्श, दण्डवत प्रणाम।
माह फरवरी, वर्ष 1992 महाशिवरात्रि, स्थान अमरकंटक। एक धार्मिक पुस्तक-विक्रेता के पास अनेकों पुस्तकों के मध्य हीरा जैसा चमकता हुआ, आपकी अपनी लेखनी को देदीप्यमान करता हुआ, आपकी अनुपम कृति 'सौंदर्य की नदी नर्मदा 'देखा। पुस्तक-विक्रेता से पुस्तक माँगा। उसने कहा- यह पुस्तक आपकी समझ में नहीं आएगी। तभी मैंने जोर से कहा यदि मेरी समझ में नहीं आई तो हिन्दुस्तान में किसी की भी समझ में नहीं आएगी। बात बढ़ता हुआ जानकर विक्रेता को राशि दिया और पुस्तक ले लिया। पुस्तक एक बार नहीं, कई बार पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते मुझे भी माँ नर्मदा के दर्शनार्थ भ्रमण करने की इच्छा हुई और मैं चल पड़ा। प्रथम वर्ष मेरा एक साथी था। द्वितीय वर्ष अकेला रहा। तृतीय एवं चतुर्थ वर्ष में मेरी

जीवनसंगिनी साथ रही। अंत में आपके परिवार के सभी सदस्यों को दण्डवत प्रणाम।
हे देवी नर्मदा मैं आपके कमल चरणों में प्रणाम करता हूँI
---------- नर्मदा प्रसाद यादव

फिर तो आगे की यात्रा में जाने से पहले पति-पत्नी दोनों हमारे घर आए। उसी नर्मदा प्रसाद को यहाँ देखकर मन प्रसन्न हो गया। अब तो वह हमारे साथ चलेगा। इस अंचल की हमारी इस पदयात्रा में साथ चलने वाले फगनूदादा मंडला से सीधे चाँड़ा आ गए हैं। वे गोंड हैं, अर्ध-संन्यासी हैं और नंगे पाँव चलते हैं। मुँह में एक भी दाँत नहीं, पर हर चीज खा लेते हैं। चीज कड़ी हुई तो उसका खल-बट्टा हाजिर है- गिलास की खल, लाठी का बट्टा! उनके साथ एक ही गड़बड़ है-हमारा आधा राशन वे अकेले डकार जाते हैं। फिर भी इतने प्यारे दादा हैं कि उनके बगैर हम जा ही नहीं सकते।

रात को पंचायत-भवन में सोए। मुँह अँधेरे उठकर बाहर आया तो सामने शाल के विशाल वृक्ष। मैं मुग्ध भाव से इन्हें निहार रहा था तभी एक कोयल कूकने

लगी कु...हू, कु...हू। किसी ने जवाब नहीं दिया तो विलंबित से द्रुत में आ गई। फिर भी कोई जवाब नहीं। लगता है, वह निपट एकाकी है, उसका कोई संगी-साथी नहीं। अथवा, यह भी हो सकता है कि वह इस अंचल की सर्वश्रेष्ठ गायिका हो और बाकी सभी कोयलें साँस थामकर उसे सुन रही हों। मैंने भी यही किया। आनंद से सुनता रहा और जब उसका गान

समाप्त हुआ तब 'साधु ! साधु !' बोलकर उसकी प्रशंसा भी की।

सुबह होते ही नर्मदा प्रसाद आ गया। हमारे पास सामान ज्यादा था। बोझा उठाने के लिए दो लड़कों को बुलाया था, वे भी आ गए तो हम लोग चल पड़े। प्रातः कालीन नभ कुछ ज्यादा ही नीलाभ था। नई पत्तियों से लदे शाल वृक्ष धूप में मुस्करा रहे थे। सँकरी हरी घाटी में से बलखाती बुढ़नेर बह रही थी। यह प्रदेश शेष संसार से बिलकुल कटा-सा लग रहा था, मानो एक नई दुनिया ने अपने द्वार हमारे लिए खोल दिए थे।

मैं यहाँ का सघन शाल-वन देखकर खुश हूँ। नर्मदा प्रसाद ने बताया कि कुछ वर्ष पहले तक वन सचमुच में सघन था। अब तो आधा भी नहीं रहा। हुआ यह कि शाल के वृक्षों में अचानक कीड़े लग गए। वे पेड़ को भीतर ही भीतर खाकर खोखला कर देते। पेड़ो में बड़े-बड़े छेद हो जाते। पेड़ सूख जाता, ठूंठ भर रह जाता। काले रंग के इन कीड़ों के मुँह पर मूँछ जैसे दो लंबे बाल रहते। वन-विनाश को रोकने के लिए शासन ने एक व्यापक अभियान चलाया। इन कीड़ों को मारने वालों को 75 पैसे प्रति कीड़ा दिया जाने लगा। ग्रामीण कीड़ों को मारकर धड़ फेंट देते, कटे हुए सौ सिरों की एक माला बनाते। इस मुंड-माला के उन्हें 75 रुपए मिलते। परिवार के परिवार इस काम में लग गए। इस फूलचंद ने ही हजारों कीड़े मारे थे।

फूलचंद इतना शर्मीला है कि कुछ बोलता ही नहीं। तीन सवाल पूछते तो एक का जवाब देता। बड़ी मुश्किल से बोला, "मैंने कोई सात हजार कीड़े मारे थे।"

नर्मदा प्रसाद बोला, "जिस घर जाओ वहीं घर के बाहर कीड़ों के सिरों की झालरें सुखाने के लिए टँगी हुई दिखाई देतीं। बड़ी दुर्गंध आती थी। जब

संख्या में कटे सिर इकट्ठे हो गए तब उनकी सामूहिक अंत्येष्टि की गई। कीड़े नष्ट जरूर हो गए, पर अपना दुष्प्रभाव छोड़ गए। लोगों ने उनके धड़ यहाँ-वहाँ फेंक दिए थे, वे बहकर नदी-नालों में गए। उनका पानी प्रदूषित हुआ। ग्रामीण इन्हीं का पानी पीते हैं। इससे बीमारियाँ फैलीं। कीड़ों के कारण लाखों पेड़ काटने पड़े। कटे हुए पेड़ों को ढोने के लिए ट्रक कम पड़ गए, लादने वाले मजदूर कम पड़ गए। जंगल कटकर आधा रह गया।"

एक थी शालभंजिका, और एक है यह शालभंजक। एक के मृदु पदाघात से अशोक फूलता था, दूसरे के खामोश दंताघात से शाल सूखता है! पूरा का पूरा जंगल बरबाद हो जाता है। प्रकृति में सब कुछ अच्छा नहीं है। उसमें अमंगलकारी शक्तियाँ भी हैं।

मैं यहाँ के अक्षय, अनछुए एकांत पर मुग्ध हूँ। कान्ता शाल के वृक्षों के फूलों की महक पर मुग्ध है। जब हवा चलती तो ये फूल हम पर झरते। किन्तु इससे मैं खुश नहीं था। यह वृष्टि सभी पर होती थी, अकेले मुझ पर पुष्पवृष्टि होती, तब कोई बात थी !

यह सुख मुझे जल्दी ही मिल गया। हम लोग शाल के वृक्षों के बीच जा रहे थे। पहाड़ी चढ़ाई शुरू हो गई। पेड़ों में नए पत्ते हैं, जमीन पर सूखे पत्तों का मोटा गलीचा बिछा है। एक तो यहाँ पगडंडी वैसे ही नहीं है, जो थोड़ी-बहुत है, वह इन पत्तों से ढँकी होने के कारण दिखाई नहीं देती। नीचे के गोल-

मटोल पत्थर भी नजर नहीं आते। इसी में एक जगह मेरा पैर फिसला और लद्द से गिरा। ऐसा गिरा कि उठते ही नहीं बना। साथियों ने हाथ पकड़कर उठाया, लेकिन खड़े होते न बना तो फिर पाँव पकड़कर बैठ गया। (शायद इसे ही धोबीपछाड़ कहते हैं।) जिस विशिष्टता की मुझे चाह थी, आखिर मेरी वह मुराद पूरी हो गई मोच का उपहार केवल मुझे मिला था !

चाहे मोच हो, चाहे हड्डी तड़की हो, इस बियाबान से तो बाहर निकलना ही होगा। चलने के सिवा कोई चारा न था। साथियों ने हिम्मत बँधाई तो लाठी के सहारे उठा और धीरे-धीरे चला। "हे वन के देवी-देवता! अब कभी नहीं कहूँगा कि केवल मुझी पर फूल बरसाओ! मेरे पितर! यहाँ से बाहर निकलने में मेरी मदद

करो!" लेकिन कोई सुनवाई नहीं! किसी तरह काँखते-कराहते लाठी के सहारे आहिस्ता आहिस्ता चला। यात्रा का आज दूसरा ही दिन था। प्रथम ग्रासे तो नहीं लेकिन द्वितीय ग्रासे मक्षिकापात हो गया।

थोड़ी ही देर में समझ में आ गया कि मैं ज्यादा दूर तक नहीं चल सकता, अगले पड़ाव तक तो जा ही नहीं सकता। रुद्र ने कहा, "आप जरा भी चिंता न करें, मैं आपको अपनी पीठ पर लादकर ले चलूँगा।" जहाँ पथ दुर्गम होता. 80 किलो वजनवाला रुद्र मुझे खिलौने की तरह उठा लेता। चाहे जितना हलका-फुलका क्यों न होऊँ, किसी पर लदना है बड़े शर्म की बात। वैसे यह लदान 3 या 4 मिनट से ज्यादा की न होती।

कोई एक या डेढ़ किलोमीटर चलने के बाद हम लोग जंगल के बाहर आ

गए। वन विभाग की कच्ची सड़क मिल गई। बुढ़नेर भी मिल गई। चाँड़ा से यह सड़क प्रायः बुढ़नेर के संग-संग, कभी इस तट से तो कभी उस तट से होती हुई, डगौना तक जाती है। इस पर रेत ढोने वाले इक्का-दुक्का ट्रक निकलते थे। एक ट्रक में बैठकर हम लोग डगौना आ गए। यहाँ की एकमात्र कुटी सामने तट पर है। परिक्रमा तो भंग हो ही गई थी। बुढ़नेर पार करके सामने तट पर चले गए। साध्वी हमें तुरंत पहचान गई, बहुत खुश हुई। पिछली यात्रा में उन्होंने रुकने का बड़ा आग्रह किया था। भाग्य हमें पुनः यहाँ ले आया था। इस बार तो रुकने के लिए ही आए हैं।

रात को कान्ता ने पैर की सिकाई की, नमक और हल्दी का लेप लगाया तो सुबह आराम लगा। बुढ़नेर बिलकुल पास है, नहाए बगैर रहा न गया। जाने लगा तो साध्वी जी ने कहा, "बूढ़ी माई से कहो कि मैया, मैं तेरी परकम्मा कर रहा हूँ, मुझे तकलीफ क्यों दे रही हो? मैं परिक्रमा कैसे करूँगा? जाओ, माताजी से लड़ो।"

जिस में मैया के प्रति अटूट आस्था और अडिग विश्वास हो, वही उससे लड़ सकता है। मैं अभागा ऐसी प्रगाढ़ श्रद्धा कहाँ से लाऊँ।

डगौना में बुढ़नेर बहुत सुंदर है। यहाँ वह चट्टानों की खोखल में छिप गई

है, इसलिए उसका सौंदर्य बँका-मुँदा सौंदर्य है। ऊपर से बिलकुल साधारण, लेकिन नीचे झाँक कर देखो तो अद्भुत। चट्टानों को तराशकर अजीबोगरीब कंदराएँ बनाई हैं। उसका प्रवाह जटिल और घुमावदार है और थोड़ी-थोड़ी दूर पर तीन या चार प्रपात भी हैं। साध्वी ने कहा, "आप इसे

एक डग में पार कर लें, इसलिए डगौना। लेकिन गहरी इतनी कि चार खटिए की रस्सी डाली गई फिर भी थाह न मिली।" नाम नदी के मिजाज के अनुरूप ही है। इस सुंदर स्थान को टूरिस्ट स्पॉट के रूप में विकसित किया जा सकता है। लेकिन तब इसका विलक्षण और नाजुक वातावरण सुरक्षित नहीं रह पाएगा। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सैलानी यहाँ आएँ भी और यहाँ का सौंदर्य भी अविकृत रहे?

रुद्र और मारुत रिश्ते में भाई हैं। रुद्र 16 का और मारुत 19 का है। दोनों के बीच गुनगुनी नोक-झोंक चलती रहती है। यह क्रम बरसों से चला आ रहा है। दोनों एक दूसरे को चाहते भी बहुत हैं। रुद्र मिलनसार है, मारुत अपने आप में सिमटा-सा रहता है। बोझा उठाने वाले हमारे साथी गरीबा और कमलेश रुद्र के दोस्त बन गए हैं। एक बार हम सभी नहा रहे थे। नदी में जगह-जगह चट्टानें हैं। रुद्र ने कहा, आओ, व्यायाम करें। एक चट्टान पर हाथ जमाए, दूसरी पर पैर, बीच में नदी की धारा। उसने दंड पेलना शुरू कर दिया। पहला ही दंड लगाया था कि कमलेश बोला, 'एक हजार एक!' दूसरे पर बोला, 'दो हजार दो!' जरूरी नहीं कि हर बार हम एक से ही गिनना आरंभ करें। मेरे एक स्नेही मित्र के पिताजी एक साहित्यिक पत्रिका निकालते थे। मित्र ने ही बताया था कि उसकी ग्राहक संख्या 1001 से शुरू होती थी। कालगणना की यह पद्धति मुझे बहुत भाई। इस हिसाब से मेरी आयु 1078 वर्ष है।

शाम को कान्तिभाई नर्मदाप्रसाद के साथ पास के गाँव चले गए। फोटोग्राफी के लिए यहाँ उन्हें पर्याप्त सामग्री मिल रही है। वहाँ से लौटकर नर्मदाप्रसाद ने कहा- वहाँ किसी ने बताया कि यहाँ चाँड़ा की एक लड़की है। स्वाभाविक उत्सुकता हुई कि वह कौन है। घर गए तो मुझे पहचान

गई। मैंने पूछा, यहाँ कैसे, तो शरमा गई। पता चला कि वह यहाँ शिवरात्रि के मेले में आई थी। इस गाँव के एक लड़के को वह भा गई तो वह उसे भगा ले आया। तब से वह यहीं है। 'भगा

ले जाने' का शाब्दिक अर्थ न लें। इसमें जोर-जबर्दस्ती नहीं होती। यह काम दोनों पक्षों की सहमति से होता है। यहाँ तक कि मान लीजिए चार लड़के हैं और चारों को एक ही लड़की पसंद आई, तो वे आपस में लड़ेंगे नहीं। लड़की जिस लड़के को पसंद करेगी वह उसी की होगी और बाकी तीनों लड़के उस लड़की को भगा ले जाने में लड़के की मदद करेंगे। ईर्ष्या या द्वेष का कोई भाव नहीं। बैगाओं में दहेज प्रथा जरा भी नहीं। उलटे लड़के के पिता को लड़की वालों को शराब पिलानी पड़ती है। लड़की ने मुझसे कहा- हमारी शादी अगले माह होगी। शादी में मेरे पिता मेरे ससुर से चार पीपा शराब माँग रहे हैं। इसमें 80 किलो महुआ लगेगा जो करीब 1000 रुपए का होगा। मेरे ससुर की इतनी हैसियत नहीं। मेरे पिता से कहिए कि इतनी अधिक शराब न माँगे।

लड़की की ओर से नर्मदाप्रसाद को इतनी पैरवी तो करनी ही होगी। सोचा, कहाँ ये 'असभ्य, अशिक्षित' बैगा और कहाँ दहेज के लिए अपनी बहुओं को जलाता हमारा 'सभ्य, सुसंस्कृत' समाज! सभ्य बने रहने के लिए बीच-बीच में हमें इन असभ्य लोगों के बीच जाना चाहिए।

बैगाओं के रिवाज के अनुसार पहले लड़के वाले शराब लेकर लड़की के घर जाते हैं। वहाँ सब मिलकर नाचते-गाते हैं, खाना-पीना होता है, फिर लड़की वाले लड़की को लेकर लड़के के घर आते हैं। शादी लड़के के घर

पर होती है। लड़की महीनों पहले से लड़के के घर रहती है। इस बीच अगर उसे लगा कि लड़का मेरे लायक नहीं तो वापस पिता के घर आ जाएगी और शादी नहीं होगी। नर्मदाप्रसाद जब यह सुना रहा था तब साध्वी, उसका बेटा रामप्रसाद और रामप्रसाद की पत्नी भी वहीं बैठे थे। रामप्रसाद ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, 'मैं भी तो इसे भगाकर ले आया था।'

यहाँ कुल दो झोंपड़ियाँ हैं- साध्वी की और उसके समधी की। मैंने कहा, 'तुम्हारे ससुर की झोंपड़ी तो पास में ही है। इतने में क्या भागना और क्या भगाना!'

'भागकर हम दोनों रायपुर गए थे। शादी वहीं की थी।'

अब तो इनके बेटे-बेटी बड़े हो रहे हैं। किसी दिन बेटा किसी लड़की को भगाकर ले आएगा और बेटी किसी बाँके के साथ भाग जाएगी। यही रिवाज है यहाँ।

यात्रा अधूरी छोड़कर घर जाने के सिवा कोई चारा न था। यहाँ से आठ कि.मी. दूर पक्की सड़क है। वहाँ बस आती है, दिन में एक बार, सुबह आठ बजे। कान्तिभाई रामप्रसाद को साथ लेकर सुबह पाँच बजे चल दिए। नर्मदाप्रसाद और चाँड़ा से आए लड़के भी चले गए। मेरा पैर कुछ ठीक हो तो हम लोग भी जाएँ।

नहाकर लौटे तो कान्ता का ध्यान कोने में रखे स्कूटर पर गया। स्कूटर पुराना था और मौसम की मार से बदरंग हो गया था। देखकर लगता था, एक मुद्दत से चला न हो। स्कूटर रामप्रसाद का था और चालू हालत में था। कान्ता ने कहा कि अगर रामप्रसाद आपको स्कूटर से 8 कि.मी. दूर पक्की सड़क तक पहुँचा दे तो बाकी के हम पैदल आ जाएँगे। मुझे यह सुझाव सही जान पड़ा। मैंने रामप्रसाद से बात की तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया। बाकी लोग उसकी पत्नी और भानजे के साथ आएँगे। वे रास्ता तो दिखाएँगे ही, हमारा बोझा भी उठाएँगे। कल सुबह पाँच बजे चल देंगे। रामप्रसाद को पैसे दिए तो वह पास के गाँव से दर्जी की दुकान से एक डिब्बे में पेट्रोल ले आया। किराने की दुकान में भी डिब्बे में पेट्रोल मिल सकता है, लीटर और आधा लीटर के डिब्बों में।

अभी कृष्ण पक्ष चल रहा है। चार दिन बाद अमावस्या है। सोचा था, पूर्णिमा का वर्णन कई बार कर चुका हूँ, इस बार अमावस्या का वर्णन करूँगा। लेकिन हम लोग तो कल ही यहाँ से चले जाएँगे, अमावस्या का वर्णन कैसे कर पाऊँगा। फिर सोचा, चुटकी भर चाँद तो रात्रि के अंतिम प्रहर में आता है। तब तक तो अमावस्या-सा माहौल रहता है। इसलिए अमावस्या का वर्णन मुझे आज ही कर देना चाहिए। आधी रात का समय तारों के साक्षात्कार के लिए सही समय है। लेकिन तब तक बैठे रहना संभव नहीं। इसलिए सोने से पहले रात के पहले पहर में, आकाश के नीले गुंबद को निहारने बैठ गया। यहाँ के स्वच्छ वायुमंडल में तारे कितने बड़े लग रहे थे, शहर के तारों से डेढ़ गुना बड़े !

कितने सारे तारे ! (आकाश की तिजोरी में बहुत रुपया है, भाई!) क्या कोई इनका हिसाब-किताब भी रखता होगा? स्टॉक वेरिफिकेशन होता

होगा? इनका मालिक-अपना खजाना खुला छोड़कर जाने कहाँ चला गया है!

ओस एक तरह की वर्षा ही है कोमल वर्षा। तारे कहीं आकाश के खेत पर पड़े ओस के कण तो नहीं! तारों का कोमल प्रकाश कहीं उजाले की ओस तो नहीं !

कहीं ये तारे आकाश के मंदिर में आया चढ़ावा तो नहीं!

तारों के लिए उपमाएँ तो सूझीं (ओस जैसी ही स्वच्छ और ताजा) फिर भी यह अमावस्या का वर्णन नहीं हुआ, अथवा आधा ही हुआ। अमावस्या का संबंध जितना तारों की हाजिरी से है, उससे कहीं ज्यादा चाँद की गैरहाजिरी से है। वह बात तो आई ही नहीं।

चाँद-तारों की कृपा से वह भी सूझ गई। कोई बड़ा गायक गाते-गाते बीच में चुप हो जाता है ताकि उसकी संगत कर रहे कलाकारों को अपनी-अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिले। अमावस्या की रात को चाँद यही करता है। अपने आपको नेपथ्य में करके संगी-साथियों को आगे लाना यह कोई छोटा-मोटा त्याग नहीं। सूरज में ऐसी त्याग-भावना कहाँ!

किन्तु दूसरे ही क्षण मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ। अति उत्साह में सूरज के प्रति कितना अन्याय कर बैठा। चाँद तो यह त्याग कभी-कभार ही करता है, सूरज तो रोज करता है। रोज शाम को आकाश का मंच खाली कर देता है ताकि चाँद-तारे अपनी-अपनी कला दिखा सकें। जरा

सोचिए, सूरज आकाश में चौबीसों घंटे डटा रहता- बारहों माह, तीसों दिन तो इन चाँद तारों का क्या होता! भई सूरज, तुम्हारे त्याग की बराबरी करने वाला तो तीनों लोक में नहीं!
मुझ में बुरी बात यह है कि भावुकता में बहकर विवेक खो बैठता हूँ। अच्छी बात यह है कि मेरा सुबह का भूला विवेक शाम तक घर लौट आता है।

उफ, अमावस्या का वर्णन भी मैं चाँद के बगैर न कर सका! सच तो यह है कि अमावस्या का वर्णन तो वही कर सकता है जो कवि के साथ-साथ ऋषि भी हो। अँधेरे को देखना और उसे कागज पर उतारना मुझ जैसे साहित्य के चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के बस की बात नहीं।
ठंड बढ़ गई तो तारों को देखते-देखते नींद में समा गया। यहाँ जाड़े जैसी ठंड है और हम खुले आँगन में सोए हैं।
सुबह पाँच बजे हम लोग जाने के लिए तैयार थे। रामप्रसाद ने स्कूटर को खुद दौड़ते हुए बहुत दौड़ाया, तब जाकर स्टार्ट हुआ। रामप्रसाद बैठा, फिर में बैठा

लेकिन मेरे बैठते ही बंद हो गया! हम लोग उतर गए। रामप्रसाद ने किकों की झड़ी लगा दी। स्कूटर फिर फड़फड़ाया, मेरे बैठते ही शांत हो गया! तीसरी बार भी यही हुआ। चौथी बार हरकत में आया और मेरे बैठते ही भड़ाक से चल पड़ा। अगर मैंने उसे कसकर पकड़ा न होता तो छिटककर दूर जा गिरता। देहाती कच्ची सड़क पर स्कूटर अपने अलबेले अंदाज में चला जा रहा था। तभी एक सूखा नाला आया। उसमें गोल-मटोल पत्थरों की भरमार थी। बिना आगा-पीछा सोचे रामप्रसाद ने उसी पर स्कूटर हाँक दिया। मेरी जान साँसत में थी। स्कूटर उसे किसी तरह पार कर गया।

लेकिन थोड़ी देर बाद तो पूरी सड़क ही गोल-मटोल पत्थरों से छितर गई थी। राम कहाँ रुकने वाला था! स्कूटर लहराता-धड़धड़ाता चल रहा था। स्कूटर और मेरे हृदय के बीच एक तालमेल स्थापित हो गया था। जितनी तेजी से स्कूटर धड़धड़ाता, उतनी ही तेजी से मेरा हृदय फड़फड़ाता।

तभी स्कूटर फिसला और हम दोनों गिरे। मेरे समूचे शरीर में भय की लहर दौड़ गई। गिरने के साथ ही राम ने दोनों पैर जमीन पर रोप दिए थे, इसलिए हमें चोट नहीं आई। हाँ, गिरते समय शरीर का वजन मोच वाले पैर पर ही आया था। अब स्कूटर था जो स्टार्ट ही नहीं हो रहा था। राम ने उसे फुसलाने की हर कोशिश की, पर सब बेकार। उसकी एक भी युक्ति सही नहीं उतर रही थी। तब तक पैदल चल रहे हमारे साथी आ गए। उन्होंने स्कूटर को धकेला तो स्टार्ट हो गया। हम लोग बैठे तो झटके के साथ चल पड़ा। इस बार का झटका जरा तगड़ा था। स्कूटर गोल-मटोल पत्थरों पर आग्नेय नृत्य करता हुआ जा रहा था। थोड़ी देर में चढ़ाई आई। स्कूटर रोककर राम ने कहा कि आप यहीं रुकिए, इसे घसीटकर ऊपर छोड़ आता हूँ, फिर आपको पीठ पर लादकर ले जाऊँगा। वह हर स्थिति से निबटने को तैयार था। लौटकर उसने मुझे अपनी पीठ पर लादा और विक्रम और बैताल चल पड़े।

गिरने का तो अभी शुभारंभ ही हुआ था। आगे फिर गिरे, फिर-फिर गिरे। सोचा, इससे तो पैदल चलना अच्छा। अधिक से अधिक हड्डी दरक जाएगी और प्लास्टर आएगा। लेकिन इस तरह से जाने पर तो मेरी धज्जियाँ उड़ जाएँगी। यहीं किसी मोड़ पर बिखर जाऊँगा। लेकिन राम है कि मुझे बस तक पहुँचाकर ही मानेगा- जिंदा या मुर्दा !

मुझे भय व्यापे रहता। मन में बुरी-बुरी बातें आतीं, पर कुछ बोल न पाता। और कोई चारा भी न था। स्कूटर के गिरते ही राम पैर टिका देता और हम चोट से बच जाते। उसका स्कूटर थोड़ा टेढ़े मिजाज का जरूर था, लेकिन था भरोसेमंद। देखने में जितना फटा-पुराना था, चलने में उतना ही तेज। अनुकूल सड़क मिलते ही अपनी चाल दिखाने लगता। सुनसान पहाड़ियों की ऊबड़-खाबड़ सड़क पर रोड़ों पर फिसलता-ठुमकता चलता रहता। रास्ता खत्म ही नहीं हो रहा था। एक-एक किलोमीटर दस-दस किलोमीटर के समान लग रहा था। हमें धचके लगते और शरीर जैसे आप से आप अगले धचके के लिए स्वयं को तैयार कर लेता। तो इन खतरों का सामना करने के लिए शरीर कमर कस रहा था! मुझे उसका साथ देना चाहिए। मुझे इस स्कूटर से, इस सड़क से तालमेल बिठाना होगा। इस खतरनाक यात्रा के आतंक को अपने ऊपर हावी न होने देने की कोशिश करनी होगी।

मैंने अपने आपको सँभाला। अभी तक मैं भय की सुनता रहा, अब भय मेरी सुनेगा ! स्कूटर को कसकर पकड़ा, तनकर बैठा। अब घबराहट का स्थान संकल्प ने ले लिया। विजय भरी मुसकान के साथ बोला- मैं स्कूटर पर थोड़े ही बैठा हूँ, मैं तो रथ पर बैठा हूँ! मैं अर्जुन हूँ और मेरे सारथी कृष्ण हैं! बस, यह युक्ति काम कर गई। जल्दी ही मैं अपने आपको पूर्वापेक्षा सबल अनुभव करने लगा। न केवल मेरा भय कम हो गया, बल्कि में अपनी ही दुर्गति का मजा भी लेने लगा ! यहाँ तक कि बीच-बीच में वनाच्छादित पहाड़ियों के सुरम्य सौंदर्य का रसास्वादन भी कर लेता ! आतंक आह्लाद में बदल गया था। पहले मैं खतरनाक जगहों पर स्कूटर धीमा चलाने के लिए कहता, अब सड़क के रोड़ों और भयंकर मोड़ों को

देखकर कहता- नो प्राब्लम !

एक्की सड़क तक पहुँचे ही थे कि बस आ गई। लेकिन हमारे साथी नहीं आए थे, इसलिए छोड़ देनी पड़ी। यहाँ से 4 कि.मी. दूर बम्हनी है, वहाँ दो बजे बस मिलेगी। वहाँ जाने के सिवा कोई चारा नहीं। थोड़ी देर में हमारे साथी आ गए। इस बार मेरे पीछे रुद्र भी बैठा। बाकी के लोग पैदल आएँगे।

सड़क पक्की थी लेकिन बीच में एक टुकड़ा कच्चा था। वहाँ रोड़े बिछे थे

और मजदूर उस पर मुरम डाल रहे थे। सड़क के बाजू में एक सँकरी पट्टी छूटी थी जिस पर रोड़े नहीं थे। राम ने उसी पर स्कूटर चला दिया। किन्तु वह इतनी सँकरी थी कि स्कूटर भचकता हुआ बोल्डर पर चढ़ गया, फिसला और हम तीनों गिरे। रुद्र ने मुझे थाम लिया। आसपास के मजदूर दौड़कर आ गए। भाग्य से किसी को भी चोट नहीं आई थी लेकिन मेरे पैर की सूजन देखकर मजदूरों को लगा कि सूजन यहीं गिरने के कारण आई है। वे मेरे प्रति विशेष सहानुभूति दर्शाने लगे। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि सूजन पहले की है और इसमें आपकी सड़क का कोई हाथ नहीं। मैं इस प्रकार बोला मानो किसी संवाददाता सम्मेलन में बोल रहा होऊँ।

स्कूटर पर राम बैठा, राम का नाम लेकर मैं बैठा और रुद्र के बैठते ही हलकी-सी उछाल मारकर स्कूटर पुनः चल पड़ा। आखिरकार उस बदरंग से स्कूटर ने हमें बम्हनी पहुँचा ही दिया। तो बच ही गया आखिर ! इस यात्रा ने मेरे प्राण तो नहीं लिए लेकिन पसीने जरूर छुड़ा दिए। राम वापस

गया ताकि कान्ता को ला सके। लेकिन कान्ता की जगह मारुत को ले आया। पूछने पर बताया कि ला तो माताजी को रहा था, लेकिन थोड़ा ही चले थे कि वे स्कूटर से गिर गईं। इसी में डर गईं और बैठने से मना कर दिया। सबके साथ पैदल आ रही हैं।

स्कूटर के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। लेकिन रुद्र ने बताया कि उसके स्कूटर में दो ही गीयर थे। तभी तो एकदम स्पीड पकड़ता था और ढलान हो या तीखे मोड़, एक-सी तेजी से भागता था। ब्रेक तो थे ही नहीं! वह उसे जमीन पर पैर रगड़कर रोकता था ! यात्रा इतनी बीहड़ रही कि जिंदगी भर भुला न सकूँगा। इस 'भीषण आह्लाद' को दोबारा लेना न चाहूँगा। मैं सही-सलामत रह सका तो इसलिए कि भाग्य मुझ पर कृपालु रहा।

राम मितभाषी था और उसका स्वभाव मृदु था। जितना संकोची, उतना ही साहसी। उसकी बाँहें एकदम मजबूत थीं और वह बड़े आत्मविश्वास के साथ स्कूटर चलाता था। वह न तो घबराया और न प्रयास छोड़ा। जाने किस मिट्टी का बना था। मुझे यहाँ तक पहुँचाने में उसने कुछ भी उठा न रखा। उसके इस करुणा भरे कृत्य से मैं गहरे तक प्रभावित हुआ। वह जब जाने लगा तो मेरा गला भर आया। मैं उसे विदा तक न कह सका। मैंने उसे गले लगा लिया। राम, उसकी पत्नी

और उसका भानजा तीनों इसी स्कूटर पर इसी रास्ते से वापस जाएँगे। राम को अपने अड़ियल स्कूटर पर बड़ा नाज था। वे इक-दूजे के लिए बने थे।

आज जब पलट कर देखता हूँ तो मेरी स्कूटर-यात्रा किसी पहाड़ी नाले में अचानक आई बाढ़ जैसी लगती है। आई, उफन पड़ी और अपनी राह चली गई।

खड़खड़ाती देहाती बस ने हमें डिंडौरी पहुँचा दिया। वहाँ से हमें जबलपुर के लिए आखिरी बस मिली। हालाँकि हमें बैठने के लिए अच्छी जगह मिली थी, लेकिन उसमें जितने लोग बैठे थे, उससे तीन गुना खड़े थे और रास्ते में जो भी सवारी मिलती, कंडक्टर उसे भी इसी दोजख में ढकेल देता। एक तो गरमी, उस पर इतनी भीड़। इसमें हुआ यह कि आधी दूर ही पहुँचे थे कि कान्ता का रक्तचाप बढ़ गया और नाक से खून बहना शुरू हुआ। इतना बहा कि दो बार तौलिया बदलनी पड़ी। मैं बुरी तरह से घबरा गया। जब कोई घंटे भर बाद खून का निकलना बंद हुआ तो जान में जान आई।

अब समझ में आया कि मोच अकारण नहीं आई थी। अगर न आई होती तो हम दूर-दराज के वीरान इलाके में चल रहे होते और तब कान्ता की नाक से खून बहना शुरू होता तो हम कहाँ जाते और क्या करते। साफ समझ में आया कि इस बड़े संकट से बचाने के लिए ही वह छोटा संकट आया था। मोच ईश्वर के विधान का ही अंग थी।

कान्ता को बहू-बेटे बस अड्डे से सीधे अस्पताल ले गए। उसे वहाँ दो दिन रहना पड़ा लेकिन ठीक हो गई। मुझे दूसरे अस्पताल ले गए- हड्डियों के डॉक्टर के पास। केवल मोच ही थी लेकिन उसे ठीक होने में दो महीने लगे। बहू-बेटों ने कहा- बस, अब और परिक्रमा नहीं। हम भी मान गए हैं। अब हम बूढ़े हो गए हैं। इसलिए सुर में सुर मिलाकर कह रहे हैं और परिक्रमा नहीं, अगले अक्टूबर तक तो हर्गिज नहीं !

नर्मदा की सहायक नदी : बंजर

16. बंजर तो कान्हा की राधा है

"आपको बंजर की परिक्रमा नहीं करनी चाहिए। वह कान्हा नेशनल पार्क में से होकर बहती है। वहाँ के घने जंगलों में शेर, जंगली भैंसा और जंगली सूअर जैसे खतरनाक जानवर छुट्टा घूमते हैं। रात में बंजर का पानी पीने आते हैं। और आप चले हैं उसी की परिक्रमा करने! आपको वहाँ जाने की अनुमति ही नहीं मिलेगी।"

"अनुमति मिल गई है। वन रक्षक हमारे साथ चलेंगे और जंगल का खतरनाक इलाका हमें सुरक्षित पार करा देंगे। फिर मैं अकेला थोड़े ही हूँ, हम आठ हैं, पत्नी कान्ता भी है।"

"यानी आप अपनी जान तो जोखिम में डालेंगे ही, औरों के लिए भी मुसीबत खड़ी करेंगे।" मित्र इस तरह बोल रहे थे मानो मैं मरने के लिए तैयार बैठा हूँ। मैंने कहा, "हम नर्मदा की एक और सहायक नदी बुढ़नेर की

परिक्रमा कर चुके हैं। मैंने पाया है कि मौसी का प्रेम माँ के प्रेम से कम नहीं होता।"

फिर भी उनका विचार था कि मैं बहुत बड़ी मूर्खता करने जा रहा हूँ।

साथ चलने के लिए दुर्ग से फोटोग्राफर कान्ति सोलंकी और उनकी मित्र विद्या गुप्ता आई हैं। कान्ति तो पहले भी हमारे साथ चल चुके हैं, लेकिन विद्या पहली बार चलेगी। ऊँची कद-काठी और आकर्षक व्यक्तित्व वाली विद्या कब की दादी बन चुकी है। वह कवयित्री है और उसकी कविताओं की दो पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। सदाबहार शरद के बिना तो हमारी यात्रा हो ही नहीं सकती।

बंजर तो कान्हा की राधा है 161

वह हमारा स्थायी कोषाध्यक्ष भी है। बोझा उठाने वाले तीन गोंड युवक भी हैं।

बंजर मंडला में नर्मदा से मिली है। शाम को मंडला पहुँच गए। वहाँ नरेशचंद्र अग्रवाल, नामदेवजी, अनिल गोहिल आदि मित्रों ने बड़े उत्साह से हमारी अगवानी की। रहने खाने की व्यवस्था अनिलभाई के घर पर थी। इसलिए सीधे वहीं गए। सुबह होते ही सभी नर्मदा और बंजर के संगम पर पहुँचे। यहाँ हम लोगों ने स्नान किया, स्नेही मित्रों से विदा ली और चले पड़े। तारीख थी 8 अप्रैल 2008. मजे की बात यह थी कि जिस नदी की परिक्रमा करने जा रहे थे, उसके बारे में हमे कोई जानकारी नहीं थी। न ही कोई ठीक से बता पा रहा था कि वह कहाँ से निकली है। अब तो बंजर ही हमारा ध्रुवतारा है। उसे ही देखते हुए चलेंगे।

रात हिरदेनगर में रहे। बंजर में खड़े ट्रकों में रेत भरी जा रही थी। बंजर में पानी बहुत कम है, पर रेत बहुत है। बंजर की मुख्य पैदावार रेत है। शाम को गाँव की महिलाओं ने हमें पुराने ढंग का एक भजन सुनाया-

यम के दूत ठहरो तो जरा रामनाम भजने तो दो।

हम में से कोई भी इस तथ्य को झुठला नहीं सकता कि यम के दूत ने हमें पर्याप्त समय दिया था प्रभु का नाम लेने के लिए, लेकिन उस समय को हमने दूसरे ही मद पर खर्च कर दिया और अब नया अनुदान माँग रहे हैं।

सुबह आगे बढ़े। रास्ते में गन्ने का खेत पड़ा। वहाँ गुड़ बनाया जा रहा था। बड़े कड़ाह में रस जब खौलने लगा तो किसान ने उसे जाँचा-परखा और एक बड़े थाल में उड़ेल दिया। जब ठंडा और गाढ़ा हुआ तो एक कपड़े में बाँधकर खूँटे से टाँग दिया। जब और ठंडा हुआ तो एक टोकनी में डाल दिया। इसीलिए यहाँ के गुड़ की भेलियाँ टोकनी के आकार की होती हैं। हमने गन्ने का रस तो पीया ही, ताजा गुनगुना गुड़ भी खाया।

रात कातामाल की पाठशाला में रहे। सोने जा रहे थे, तभी तीन ग्रामीण आए। एक बोला, "सुना है आप बंजर मैया के उद्‌गम तक पाँव-पैदल जा रहे हैं। आप हमारे गाँव पधारे, हन धन्य हो गए। कृपया कल भी रुकिए।"

"नहीं भाई, कल सवेरे हम चल देंगे। बहुत दूर जाना है।"

"कल आप कैसे जा सकते हैं? हमें आपका स्वागत करने का मौका तो दीजिए। देखिए, किस धूमधाम से हम आपका स्वागत करते हैं। फिर परसों बाजे-गाजे के साथ आपकी विदाई करेंगे। आप अपनी मर्जी से आए हैं, अब हमारी मर्जी से जाएँगे।"

उसकी भक्ति इतनी आक्रामक थी कि समझ में नहीं आया कि क्या कहूँ। वह नशे में था। बड़ी मुश्किल से उस भक्त से पिंड छुड़ाया।

सुबह चले तो हवा गरम और ठहरी हुई थी। रास्ते के दोनों ओर महुआ के बड़े-बड़े पेड़ हैं। महुआ टपकता रहता है। ग्रामनारियाँ महुआ बीनती रहती हैं। उसकी मादक गंध से हवा महक उठती है। रात कुटवाही में रहे। मुँहअँधेरे घर की महिला और बच्चे महुआ बीनने चले गए तो हम लोग भी आगे बढ़े। थोड़ी देर में मोचा पहुँच गए। यहाँ से कान्हा केवल छह किलोमीटर दूर है। कान्हा का राष्ट्रीय उद्यान पूरी दुनिया में शेरों के लिए प्रसिद्ध है। देश-विदेश से इतने अधिक पर्यटक आते हैं कि उनके रहने के लिए नए-नए रिसोर्ट बनते ही जा रहे हैं। कुछेक इतने महँगे कि एक आदमी के एक कमरे का एक दिन का किराया बीस हजार रुपए!

मोचा से ही कान्हा के जंगल का बफर जोन शुरू हो जाता है। यह कोर जोन के लिए ढाल का काम करता है। कोर जोन यानी मुख्य जंगल। इसी में हिंस्र पशु छुट्टा घूमते हैं। इसमें बिना अनुमति के कोई नहीं जा सकता।

आखिर हम कान्हा आ गए। नामदेवजी ने हमारे रहने की व्यवस्था पहले से ही कर दी थी। शाम को छोटा बेटा नीरज और उसका दोस्त शकरगायें गले में कैमरे लटकाए आ गए। सुबह जिप्सी में बैठकर चार घंटे तक उद्यान के सघन वनक्षेत्र (कोर जोन) में घूमते रहे। घना शाल-वन किसी विशाल

देवालय सा लग रहा था। यहाँ सड़कें हैं और उन पर पर्यटकों को लेकर जिप्सियाँ घूमती रहती हैं। इस उद्यान में शेर परम पवित्र माना जाता है। शेर ही नहीं, जंगली भैंसा (बाइसन), जंगली सूअर, बारहसिंगा, चीतल, लंगूर तथा बहुत से अन्य जीवों का यह उद्यान अनुपम नंदनकानन है। बारहसिंगा तो केवल कान्हा में ही पाया जाता है। जंगली

भैंसे में गजब की ताकत होती है। दो-तीन शेर मिलकर ही उसे मार सकते हैं। और जंगली सूअर जितना हिम्मती शायद ही कोई जानवर हो। अगर कोई उसे ललकारे तो फिर सामने कितने ही बड़े डील-डौल का पशु क्यों न हो, वह उससे भिड़ जाता है। मैदान छोड़ना तो उसने सीखा ही नहीं। चीतल इस वन का सबसे निरीह प्राणी है और आसानी से दूसरे जानवरों का शिकार हो जाता है। इनके लिए बीच-बीच में खुले चरागाह छोड़ दिए गए हैं। ये समूचे क्षेत्र को एक सहज सौंदर्य प्रदान करते हैं।

हमें बताया गया था कि हम लोग चुप रहें, या बहुत धीमे बोलें। आसपास की शांति से तालमेल रखते हुए चारों ओर बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे कि कहीं शेर या जंगली भैंसा (बाइसन) दिखाई दे जाए। अपना राजसी मुकुट धारण किए बारहसिंगे दिखाई दे जाते। चीतल के तो झुंड के झुंड दिखे। गाइड हमें उन रास्तों पर भी ले गया, जहाँ शेर प्रायः दिख जाते हैं। पर व्याघ्र दर्शन न होना था, न हुआ। कोई बूढ़ा, मुश्किल से चल-फिर सकने वाला सेवानिवृत्त शेर भी दिखाई दे जाता, तो भी हम संतोष कर लेते। कहते हैं, वन में व्याघ्र-दर्शन तो देवदर्शन के समान होता है। लेकिन उस दिन हमें तो क्या, किसी को भी बाघ नहीं दिखा। हाथी पर बैठे सैलानियों को भी नहीं। शायद दोपहर की नींद ले रहे थे।

दीमक की कई बाँबियाँ देखने मिलीं। नन्ही सी जान है, पर अपनी तुच्छ काया के अनुपात में हजार गुना ऊँचा भवन बना सकती है- बिना किसी साजो-सामान के। यह उनका अभेद्य दुर्ग है। एक जगह तो दीमकों की कालोनी ही थी। बाँसों के झुरमुट थे। एक जगह कुछेक बाँस टूटकर गिर गए थे और सड़ रहे थे। मैंने वन-रक्षक से पूछा कि इन्हें आप हटा क्यों नहीं देते। उसने कहा कि पूरे उद्यान में जो चीज जैसी है, वैसी ही रहेगी। यहाँ प्रकृति से जरा भी छेड़छाड़ नहीं की जाती।

यह एक दिलचस्प मुद्दा था। यह प्रकृति की संप्रभुता का सम्मान था। प्रकृति को अगर अक्षुण्ण रखना है तो हर चीज को उसकी प्राकृत अवस्था में ही रहने देना होगा। एक अधिकारी ने हमें बताया कि यहाँ इतने अधिक पर्यटक आने लगे हैं और इतनी अधिक जिप्सियाँ दौड़ने लगी हैं कि इनसे त्रस्त होकर एक दिन सारे शेर

गायब हो जाएँगे। एक दिन हमें कहना पड़ेगा -

अजनबी पर्यटक, इस बाग में कदम न रखना शेर का दिल दुखेगा बाइसन बुरा मानेगा तुम्हारी जिप्सियों के धुएँ से वे जख्मी होते हैं।

यहाँ आने वाले पर्यटक शेर और बाइसन देखने के फेर में यहाँ के सघन शाल-वन के सौंदर्य को प्रायः अनदेखा कर देते हैं। दुर्भाग्य से मनुष्यों की निरंतर बढ़ती आबादी के कारण जंगल सिमट गए हैं। उनके खंडहर ही बचे हैं।

यहाँ अभी आने का एक फायदा यह है कि पर्यटकों की भीड़-भाड़ शुरू नहीं हुई है। अधिकांश रिसोर्ट खाली पड़े हैं। लेकिन गरमियों की छुट्टियाँ शुरू होते ही सैलानियों के दल के दल उमड़ेंगे। बरसात में उद्यान पर्यटकों के लिए बंद कर दिया जाता है। वन के मध्य में स्थित म्यूजियम देखने के बाद तीसरे पहर चल दिए। वापस मोचा आए। आगे जाकर सड़क छोड़ दी और बंजर के किनारे-किनारे चले। नदी में एक हाथी नहा रहा था। पास में महावत खड़ा था। सूँड में पानी भरकर अपने शरीर पर फुहार छोड़ता। मानो शावर बाथ ले रहा हो !

विद्या कान्तिभाई की पारिवारिक मित्र है। दोनों दुर्ग से आए हैं। विद्या का रंग श्याम है। उसे डर है कि धूप में चलने के कारण उसकी त्वचा काली पड़ जाएगी। इसलिए पूरे मनोयोग से अपनी त्वचा की सार-संभाल में लगी रहती। कई तरह के लोशन तथा धूप से बचने वाली क्रीम लगाती रहती। छज्जेवाली टोपी पहने रहती। अपने आपको सिर से पैर तक कपड़ों में लिपटाए रहती। वस्त्रों की इस अभेद्य दीवार से टकराकर धूप बेचारी लौट जाती। लेकिन तीन या चार दिन के बाद वह धूप को सहजता से लेने लगी। विद्या निडर है, जो सही समझती है, उसे कहने से डरती नहीं। बीच-बीच में अपनी कविताएँ सुनाती रहती। हम उसकी कविताएँ चाव से सुनते।

रात सरेखा में रहे। सुबह चले तो तीन वन रक्षक हमारे साथ चले। खापा से जंगल का कोर जोन शुरू हो गया। अपने इस रोमांचक अभियान को लेकर हम सभी उत्तेजित हैं- अब हम असली जंगल से भिड़ने जा रहे हैं! बहुत डर भी लग

रहा था और बहुत मजा भी आ रहा था। मन ही मन मना रहे थे कि अब व्याघ्र-दर्शन न हो! हाँ, बंजर में स्नान करते गजराज जरूर दिखे। सघन शाल-वन में से बहती बंजर पर दोनों ओर के वृक्ष पंखा झल रहे थे। इस मोहक, सुकुमार, सुंदर नदी को देखकर लगा, बंजर तो कान्हा की राधा है!

हम लोग आगे-पीछे चलते हुए बतियाते जा रहे थे। कभी-कभी हम अपनी आवाज से हिरनों को चौंका देते जो सुनते ही चौकड़ी भरते भाग जाते। एक जगह एक मोर ने जब अपनी दुम लहराई फैलाई तो हम उसे मंत्र-मुग्ध होकर देखते रहे। कोयल की कूक तो प्रायः सुनाई देती रहती है।

मवाला नाका निकल चुका था। साथ चल रहे वन रक्षकों ने अचानक तेज दौड़ लगा दी। हम कुछ समझे नहीं। कहीं शेर तो नहीं आ गया। तभी दूर धुआँ दिखाई दिया, फिर लपटें। तो इन लोगों ने आग बुझाने के लिए दौड़ लगाई थी ! उन्हें शायद धुएँ की गंध आ गई थी। (ये घास में होने वाली हलकी से हलकी सरसराहट भी सुन सकते हैं। शेर की दहाड़ सुनकर वे जान सकते हैं कि वह भूखा है, उदास है, या बस यों ही बेवजह दहाड़ रहा है।) आग बुझाने का उनका तरीका बहुत आसान था। आग वृक्षों के नीचे पड़े सूखे पत्तों में लगती है। जहाँ-जहाँ आग होती, उसके पास के पत्तों को एक डगाल से बुहार कर दूर कर देते। आग पत्तों रहित इस खाली पट्टी पर आकर रुक जाती, फिर अपने आप बुझ जाती। हमारे दल के सदस्य भी इसी काम में लग गए। वनरक्षकों के पास वायरलेस सेट रहता है। पास की चौकी में खबर कर दी, तो वहाँ से भी लोग आ गए। वनरक्षकों ने आग बुझाने में जो तत्परता दिखाई थी, उसे देखकर हम चकित थे। वे सच्चे अर्थों में इन वनों के प्रहरी हैं।

जब सब आग बुझा रहे थे तब हमारे फोटोग्राफर लपटों को देखते रहे और उनके फोटो लेते रहे। प्रेस फोटोग्राफर का काम मरते हुए आदमी को बचाना नहीं, उसके फोटो लेना है और यह पूछना कि" अभी आपको कैसा लग रहा है?"

जब आग बुझ गई तो हम लोग आगे बढ़े। शकरगायें आगे था। एक जगह झुककर फोटो ले रहा था। पास जाकर देखा तो शेर के पंजो के ताजे निशान थे। आध घंटे के बाद पुन: उकडू बैठकर बड़े मनोयोग से कैमरे को किसी चीज पर

फोकस कर रहा था। पास जाकर देखा तो शेर की लीद थी! शेर न सही, उसकी विष्टा ही सही !

(मेरे मित्र गौतम का नागपुर के पास एक फार्म है। जंगली सूअरों के उपद्रव से वे परेशान थे। वैसा ही फार्म उनके फार्म से लगा हुआ था, लेकिन वहाँ सूअरों का जरा भी उपद्रव नहीं। फार्म के मालिक का नाम था वाघमारे! तो क्या यह उनके नाम का प्रताप था? पूछने पर उन्होंने बताया, "नागपुर के चिड़ियाघर से मैं बाघ की विष्टा और मूत्र ले आता हूँ और फार्म में जहाँ-तहाँ बिखेर देता हूँ। बस, इसी गंध के कारण सूअर नहीं आते।" गौतम ने भी ऐसा ही किया तो सूअरों का आना बंद हो गया। वाघमारे ने सूअरों को कैसा बुद्ध बनाया !)

किवाड़-डबरा चौकी पहुँचते ही शाम हो गई। रात में चलना खतरे से खाली

नहीं, इसलिए वहीं रह गए। पास में ही बंजर बह रही थी। चारों ओर भयभीत करने वाली निस्तब्धता थी। हर रात एक चमत्कार लेकर आती है- तारों भरा आकाश! मुझे लगा, आकाशगंगा तारों का कोर जोन है, बाकी का बफर जोन !

सुरमई काली रात थी। मोमबत्ती की मद्धम रोशनी के सिवा और कोई प्रकाश न था। तभी तेज रोशनी से अँधेरे को चीरती एक गाड़ी आकर खड़ी हो गई। मैं आशंकित हो उठा। गाड़ी से दो अधिकारी उतरे। डपटकर बोले, "आप लोग यहाँ कैसे रह गए? मुक्की में आपकी प्रतीक्षा की जा रही है। बड़े साहब नाराज हो रहे हैं। चलिए, आपको इसी समय चलना होगा।"

"जंगल में आग लगी थी। उसे बुझाने में ही देर हुई, वर्ना हम लोग शाम तक मुक्की पहुँच गए होते।"

"ठीक है, लेकिन अब चलना होगा।"

"देखिए, हम लोग बंजर की परिक्रमा कर..."

"कोर जोन में कोई रात नहीं रह सकता, चलिए।" यह आदेश था, इसका पालन तो होना ही था। मेरा फड़फड़ाना बेकार था। यहाँ हमें रात रहने देने का जोखिम वे नहीं उठा सकते। न जाने क्या अघट घट जाए। हमें मानो कड़े पहरे में ले जाया जा रहा था। लेकिन यह हमारी ही सुरक्षा के लिए था। मैं अँधेरे में आँखें

गड़ा-गड़ाकर देख रहा था- शायद शेर दिखाई दे जाए! मुक्की छह किलोमीटर दूर था। वहाँ पहुँचते ही मैंने अपने साथियों से कहा- आइए, अब हम साथ बैठकर रोएँ!

लेकिन एक उपाय सूझा। भोर होते ही रेंजर रजनीश सिंह से कहा, "हम लोग बंजर की परिक्रमा कर रहे हैं। केवल छह किलोमीटर के लिए हमारी परिक्रमा खंडित हो गई। अगर आप अपनी गाड़ी में हमें पुनः वहीं पहुँचा दें, तो हम वहाँ से पैदल आएँगे और हमारी परिक्रमा खंडित होने से बच जाएगी।" वे तुरंत मान गए। सामान वहीं रहा। हम लोग उसी गाड़ी में बैठकर पुनः किवाड़-डबरा गए। सुबह की धूप में वनाच्छादित बंजर सौंदर्य की मूर्ति लग रही थी। कितना रोमांचक था यहाँ नहाना! फिर नदी से लगी बजरी वाली सड़क से चल कर वापस मुक्की आए।

मुझे एक किस्सा याद आया। एक सरकारी दफ्तर में एक अर्जी आई। दफ्तर ने उसे इस टिप्पणी के साथ लौटा दिया नियमानुसार आएकी अर्जी को रजिस्टर्ड डाक से आना था। चूँकि यह सादी डाक से आई है, इसलिए ने वापस किया जाता है। अब आप इसे रजिस्टर्ड डाक से भेजें।

जो भी हो, हमारी परिक्रमा खंडित होने से बच गई। इसके साथ ही हमारा कान्हा के कोर जोन का सत्र समाप्त हुआ।

17. बंजर का उद्गम बंजारपुर

जंगल के खोल से निकलकर बंजर खुले मैदान में आ गई है। जंगल की वर्दी उतरते ही वह साधारण लगने लगती है। लगता है उसकी हैसियत कम हो गई है। अब उसमें वैसा सम्मोहन उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रही। जंगल की बंजर और मैदान की बंजर मानो दो अलग-अलग नदियाँ हों।

जब तक जंगल में थे, लगता था मानो हम भगवान के देश में हैं। जो कुछ भी देखते थे, स्वयं भगवान का बनाया था। खूब हरा-भरा महसूस कर रहे थे। मुक्की से चले तो धीरे-धीरे वनप्रांत पीछे छूटता गया। जंगल झाड़ियों में बदल गए और फिर झाड़ियाँ भी पीछे छूट गईं। आगे मैदान में शाल का एक अकेला पेड़ इस तरह खड़ा था, मानो उसे जंगल से खदेड़ दिया गया हो।

समनापुर से जा रहे थे। तभी पीछे से कान्ति ने पुकारा, "वेगड़जी, यह आदमी आपको जानता है।"

पास जाकर गौर से देखा पर पहचान नहीं पाया। तब वही बोला, "जब

आप बुढ़नेर की परिक्रमा कर रहे थे, तब एक दिन मैं आपके साथ..."

"धुर्वे !" इस संयोग पर मैं चकित था। "माफ करना भाई। तुम्हें मैं कैसे भूल सकता हूँ। बुढ़नेर के यात्रा-वृत्तांत में मैंने तुम्हारा वर्णन बड़े प्यार से किया है। लेकिन तुम यहाँ कैसे?"

"गुरु के दर्शन करने आया था।" और भी बातें हुई। लेकिन उसके साथ

और भी लोग थे, इसलिए उसे जाना पड़ा। गाँव के बाहर रखी भीम की लाट देखने के बाद आगे बढ़े। आज रामनवमी है। देहाती डगर पर जाती सजी-सँवरी ग्रामनारियों के दल के दल मिले। वे किसी मंदिर से लौट रही थीं। यद्यपि यह कोई शोभायात्रा नहीं थी, फिर भी हम उनके आनंद-उल्लास से अछूते न रह सके और देर तक उन्हें देखते रहे।

शाम को बहराखार पहुँचे। दिन जितना गर्म होता है, रातें उतनी ही ठंडी। रात में ठंड के मारे सभी का बुरा हाल रहा। दूसरे दिन दोपहर को पल्हेरा पहुँचे। स्वामी मैत्रेय के मित्र यशवंत पटले हमारा इंतजार कर रहे थे। उन्होंने हमारे निवास की व्यवस्था पहले से ही कर रखी थी। यहाँ से विद्या, नीरज और शकरगायें घर लौट गए। विद्या जब जाने लगी तो उसका श्यामल चेहरा आँसुओं से भीग गया। उसे तसल्ली दिलाने के लिए कान्ता को शब्द नहीं सूझ रहे थे। उसने विद्या को बाँहों में भर लिया। ऐसी ही विदाई उसने पहले दीप्ति को दी थी, फिर मीनल को और अब विद्या को। बेटियाँ आखिर मायके में कब तक रहेंगी!

उनके जाने के बाद यशवंत हमें रानीधार दिखाने ले गए। वहाँ बंजर के पानी को एक कुंड में रोककर रखा है। यहाँ से उसे पाइप लाइन द्वारा

मलाजखंड पहुँचाया जाता है जहाँ भारत सरकार की ताँबे की खदानें हैं। पहली बार बंजर में डुबकी लगाने लायक पानी मिला। आसपास के गाँवों की बहुत सी महिलाएँ जवारे सिराने आईं थीं। कान्ति के पौ बारह थे। उनके कैमरे की क्लिक की आवाज़ बार-बार सुनाई देती। वापस आते-आते रात हो आई। तब तक स्वामी मैत्रेय वहां आ चुके थे। वे मलाजखंड के पास दमोह नामक कसबे में रहते हैं। बड़े ही प्रकृतिप्रेमी हैं। इस ओर उनका अच्छा प्रभाव है। कुछ समय पहले जबलपुर आए थे, तब पहली बार भेंट हुई थी। युवा, मृदुभाषी और पर्यावरण-प्रेमी स्वामीजी से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने कहा कि अगर आप बंजर की परिक्रमा करेंगे तो कई जगह आपके रहने की व्यवस्था मैं करूँगा। उन्होंने अपना वादा निभाया।

सुबह चले तो विद्या की कमी महसूस हुई। उसकी हर कविता पर हम तालियाँ बजाते थे क्योंकि उसकी कविताएँ हमारी समझ में आती थीं। वर्ना यह तो दुरूह कविताओं का युग है। हमारे आग्रह पर वह कविता सुनाना शुरू करती और

एक पर एक मोती पिरोए चलती। लेकिन इसके साथ गड़बड़ी यह हुई कि उसकी देखादेखी कान्ति भी कविताएँ करने लगे। अब भला रातोंरात कोई कवि हो सकता है? हमने उन्हें कविता लिखने से रोका, लेकिन वे नहीं माने। हम लोगों ने उनकी कविताओं का बहिष्कार कर दिया। लेकिन विद्या के जाते ही कान्ति को मौका मिल गया। वे जब-तब अपनी तुकबंदी सुनः ही देते। उनके मन से कविता की पपड़ी उतरी नहीं है।

दस बजे तक खर्राघाट पहुँच गए। कल रानीधार तो आज खर्राधार। यहाँ बंजर चट्टानों में से बहती है। चट्टानों में बड़े-बड़े गड्ढे हैं। यह कारीगरी पानी की है। उसने ये चट्टानों को कुतरकर बनाए हैं। कान्ता और मैं एक-एक गड्ढे में बैठ गए। हमें लगा मानो हम किसी नगाड़े में बैठे हैं। लेकिन तप्त चट्टानों के कारण थोड़ी ही देर में लगा मानो हम किसी जलते हुए चूल्हे में बैठे हैं। फिर भी हमें इस अग्नि-कुंड में से बाहर निकलने की कोई जल्दी नहीं थी- कान्ति हम लोगों के फोटो जो ले रहे थे! कान्ति कवि जितने घटिया हैं, फोटोग्राफर उतने ही बढ़िया हैं।

नहा-धोकर पेड़ों के नीचे बैठकर सविता का इंतजार करने लगे। सविता कान्ता की (इसलिए मेरी भी) भतीजी है। वह दुर्ग में रहती है। दुर्ग यहाँ से ज्यादा दूर नहीं। हम लोगों से मिलने अपनी कार में आई। आते ही धम्म से बैठ गई और जाने तक टस से मस नहीं हुई। मैंने कहा भी कि सविता, पास में ही बंजर बह रही है, जरा चलकर उसे एक झलक देख लो, तो उसने कहा कि मुझे क्या मरना है जो इस धूप में उसे देखने जाऊँ !

खैर, यहाँ तक तो ठीक रहा, लेकिन जाते-जाते एक ऐसा काम करती गई जिसके लिए हम आज तक उसे माफ नहीं कर सके हैं वह कान्ति को ले उड़ी !

यह हमारे सामने हुआ और हम लाचार देखते रहे। क्या करते, मियां बीवी राजी तो क्या करेगा काजी! सविता कान्ति की पत्नी जो है। हमें आशा थी कि दो-एक दिन के बाद कान्ति वापस आ जाएँगे, लेकिन जो एक बार पगहा तुड़ाकर भागता है, क्या वह वापस भी आता है? कल विद्या, नीरज और शकरगाय गए, आज कान्ति गए। फिर भी हमारा परिवार तीन तेरह होने वाला नहीं। चार गए हैं तो चार आ भी जाएँगे।

इधर शरद की पत्नी भी सक्रिय हो गई है। शरद के मोबाइल पर बार-बार उसे घर आने के लिए कह रही है। (विरहिणी यक्षिणियाँ!) शरद ने उसकी बात पर ध्यान न दिया तो हमारे परिवार के सदस्यों से कहलवाया। मैंने उसे घर जाने की इजाजत भी दे दी, लेकिन वह नहीं गया। न जाकर उसने ठीक ही किया क्योंकि वह हमारा श्रवणकुमार है। निशा अपने अभियान में असफल रही, इसका हमें दुःख है। वैसे गलती उसी की है। ऐसे काम भला कहीं मोबाइल से होते हैं? इसके लिए तो सविता की तरह अभिसारिका बनकर खुद आना पड़ता है। इस युग की अभिसारिका कार में आएगी, तो भी चलेगा।

रात बिठली में रहे। अब छत्तीसगढ़ शुरू हो गया है। दोपहर तक बहेराखार आ गए। यहाँ बंजर की सहायक नदी पर एक बाँध बना है। बोर्ड पर लिखा है-बहेराखार मध्यम जलाशय। वैसे वह काफी बड़ा है और इस गरमी में भी उसमें काफी पानी है। इसका पानी बंजर में जाता है ताकि बंजर में पर्याप्त पानी रहे और मलाजखंड को पानी की आपूर्ति बराबर होती रहे। इसे देखकर मुझे लगा, बाँध कहीं नदी के पेड़ पर लगे मधुमक्खी के छत्ते तो नहीं! (लेकिन इतने भी न हों कि पेड़ ही दिखाई न दे। दुर्भाग्य से नर्मदा के साथ आज यही हो रहा है।)

इस जलाशय में हम लोगों ने स्नान किया। किन्तु जिस नदी पर यह बाँध बना है, उसके नाम का पता न चला। हर जगह लिखा था- बंजर की सहायक नदी। बाद में स्वामी मैत्रेय ने बताया कि इस नदी का नाम है कसई डोबरानार।

रात खारा में रहे। इस ओर मित्र बनाने का अनूठा रिवाज है। जिन दो लोगों के मन मिल जाते हैं, वे एक सादे अनुष्ठान के बाद जीवन भर के लिए दोस्त बन जाते हैं। यह दोस्त भाई से बढ़कर होता है। हर सुख-दुःख में एक दूसरे का साथ देते हैं। शादी-ब्याह में, त्योहारों में, यहाँ तक कि अंत्येष्टियों में भी एक-दूसरे के यहाँ जाते हैं। वे एक-दूसरे को नाम से नहीं बुलाते, कोई एक नाम तय कर लेते हैं, उसी नाम से बुलाते हैं। जो ग्रामीण हमें यहाँ लाया था, यह उसके इसी तरह से बने दोस्त का घर है। दोनों एक दूसरे को 'महाप्रसाद' कहकर बुलाते हैं। कभी-कभी यह दोस्ती अगली पीढ़ी तक चलती है। यह खून का नहीं, अपनी पसंद से किया गया आत्मा का रिश्ता है।

जिसके घर रुके हैं उस 'महाप्रसाद' का असली नाम रामप्रसाद है। उसकी बेटी ने प्रथम वर्ष की परीक्षा दी है। मैंने कहा, "प्रथम वर्ष की अनिवार्य हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक में मेरा एक निबंध है- सौन्दर्य की नदी नर्मदा। तुमने पढ़ा होगा।" मुझे पता था कि यह छत्तीसगढ़ है लेकिन यह पाठ्य-पुस्तक मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ दोनों में चलती है।

उसने कहा, "मेरे पास पाठ्य-पुस्तक नहीं है। कुंजी से ही काम चलाया।"
"अच्छा, वही ले आओ।"

दरअसल वह कुंजी भी नहीं थी। पिछले कुछ वर्षों के प्रश्न और उत्तर थे ! जिस प्रकार खोटा सिक्का सच्चे सिक्के को चलन से बाहर कर देता है,

उसी प्रकार कुंजी पाठ्य-पुस्तक को चलन से बाहर कर देती है।

पास में बंजर बहती है। वहाँ जाकर स्नान कर आए। पानी इतना कम था कि लोटा भी डूबता नहीं था। दोपहर को साल्हेबाड़ा पहुँचे। स्वामीजी ने हमारे दोपहर के विश्राम की व्यवस्था यहाँ के विश्राम गृह में की थी। बरामदे में सामान रखा और वहीं विश्राम करने लगे। थोड़ी देर में एक जवान आया और बिना किसी भाव-भावना के रूखे स्वर में बोला, "यह सरकारी विश्राम गृह है। आप यहाँ कैसे बैठे हैं? पास में ही थाना है। आपको पहले वहाँ आना चाहिए था।" उसके स्वर में प्रच्छन्न धमकी थी।

मैंने संक्षेप में अपने बारे में बताया। "ठीक है, दोबारा आएँ तो पहले थाने में आएँ।" इतना कहकर, हमें धमकाकर, वह चला गया अपने को विजेता मानता हुआ। थोड़ी देर में देखा तो थाने के प्रांगण में वर्दी पहने और हाथ में बंदूकें लिए सैंकड़ों सिपाही इकट्ठा हो गए और परेड करने लगे। अब हमारी समझ में आया कि हमारे साथ ऐसा सख्त रवैया क्यों अपनाया गया था। यह नक्सल प्रभावित क्षेत्र है। इसलिए पुलिस को सावधानी बरतनी पड़ती है। जो भी हो, हमें शक की निगाह से देखा गया था। अब यहाँ विश्राम करने में कोई तुक नहीं थी। इसलिए बोझा लादा और मुँह लटकाए चलते बने।

इस ओर के गाँवों के घर बड़े ही साफ-सुथरे, लिपे-पुते और पंक्तिबद्ध

होते हैं। एक-दूसरे से सटे और मिट्टी की लंबी दीवारों वाले इन घरों में बाहर की ओर कोई खिड़की नहीं होती। एक बहुत बड़ा बिना किवाड़ का

दरवाजा भर होता है- इतना बड़ा कि उसमें से बैलगाड़ी चली जाती है।

बंजर शांत नदी है, उसे किसी बात की जल्दी नहीं। वह प्रायः पेड़-पौधों से रहित मैदानों और खेतों में से बहती है। दूर-दूर तक ऐसा कुछ भी नहीं, जहाँ दृष्टि अटक सके। खेतों की फसल कट चुकी थी, इसलिए वे भी सूने पड़े थे। भूदृश्य हालाँकि एकरस था, फिर भी अपने उजाड़ और निर्जन विस्तार के कारण एक अलग तरह का आकर्षण लिए था।

आगे जाकर सड़क छोड़ दी क्योंकि वह बंजर के उस पार जाती थी। यहाँ से पगडंडी पकड़ी। पहले तो पगडंडी मैदान में से रही, लेकिन बाद में खेतों की ऊँची और बेहद सँकरी मेड़ों पर से थी। खाँड़े की धार पर चलने जैसा था। शाम हो गई थी। सांध्य तारा भी निकल आया था। गहराते अँधेरे में चलना और भी मुश्किल था।

हम बंजारपुर पहुँचे तब तक रात हो चुकी थी। छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव जिले के इस अलग-थलग से गाँव के तालाब से निकली है बंजर, इसीलिए गाँव का नाम बंजारपुर। आश्रय खोजने में खासी परेशानी हुई। आखिर एक ग्रामीण ने हमें अपने आँगन में रहने की अनुमति दी। घर के लोगों से मैंने पूछा, "क्या तुम जानते हो, बंजर कहाँ जाती है?" वे नहीं जानते थे। फिर पूछा, "क्या तुमने नर्मदा का नाम सुना है?" वह भी नहीं सुना था। लगता है, ये लोग कभी गाँव से बाहर गए ही नहीं। इसलिए बाहर की दुनिया के बारे में भला कैसे जान सकते हैं?

सोने से पहले आँगन में लेटा-लेटा देर तक तारों भरे आकाश को देखता रहा। यह कितनी अजीब बात है कि वहाँ आकाश में जहाँ कोई भी नहीं रहता-इतने सारे तारे हैं, और यहाँ धरती पर जहाँ हमें प्रकाश की जरूरत

है- एक भी तारा नहीं! इधर हमें दीए जलाने पड़ते हैं, उधर तारों का उजाला बेकार जाता है!

फिर भी, अगर ये तारे न होते तो आकाश कैसा बंजर लगता !

नर्मदा की सहायक नदी : बंजर

18. बंजर मैया तुम्हें प्रणाम !

छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव जिले के छोटे से गाँव से निकली है बंजर, इसलिए गाँव का नाम बंजारपुर। हम जब तक वहाँ पहुँचे, तब तक अँधेरा हो चुका था। एक ग्रामीण के आँगन में रात रहे। सवेरा होते ही सीधे तालाब गए। न पहाड़, न जंगल, साधारण-सा श्रीहीन तालाब। इसी तालाब में बंजर का बीजारोपण हुआ और यहीं से वह अपनी यात्रा शुरू करती है। अगर आत्मा परमात्मा का ही अंश है तो हर वो तालाब जिसमें से कोई नदी निकलती है, मानसरोवर का ही अंश है। हमने बड़े ही भक्तिभाव से इसमें स्नान किया और उस दिन को किसी पर्व की तरह मनाया। जब कोई नदी, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, कुंड या तालाब से बाहर निकलती है, तो उसमें एक प्रकार की विजय होती है।

यहाँ से हमारी वापसी यात्रा शुरू हुई। रात सालेटेकरी में रहे। दूसरे दिन तपती तिपहरिया में दमोह पहुँचे। स्वामी मैत्रेय दमोह में रहते हैं। यहाँ

उन्होंने हमारे रहने की जबरदस्त व्यवस्था की थी। उस दिन वहाँ का साप्ताहिक बाजार था। खासी भीड़ थी। हम खरीद-फरोख्त और भाव-ताल का दिलचस्प नजारा देख रहे थे, तभी मेरा ध्यान ऊँचे कद की एक आदिवासी युवती की ओर गया। इस युवती के हाव-भाव में एक राजसी झलक थी। हँसती तो चेहरा लुभावनी मुस्कराहट से खिल उठता। चलती तो हवा में एक हिलोर-सी आ जाती जैसी हंसिनी के तैरने से पानी में आती है। उसका मुख्य आकर्षण उसकी मृदु, मंथर, लहराती चाल में था। उसमें एक ऐसा सम्मोहन था कि ओर-छोर, उपमा-उदाहरण कुछ मिलता ही

नहीं। थोड़ी देर में वह भीड़ में खो गई। सौंदर्य की एक बदली आई और बरसकर चली गई।

रात में भोजन के बाद स्वामीजी ने कहा, "रात के भोजन के बाद टहलना जरूर चाहिए। चलिए, टहलने चलें।"

हम लोग धूप में बीस किलोमीटर चलकर आए थे। टहलने का जरा भी मन न था। लेकिन स्वामीजी के आग्रह को टाल न सके। रात उजली थी, चाँदनी छिटकी थी। लेकिन खूबसूरत चाँद मुझे लुभा न सका। वह मुझे आकाश की पीठ पर बना गूमड़-सा लगा। एक मुट्ठी नींद के आगे चाँद आज पराजित हो गया था।

सुबह आगे बढ़े। रानीधार होते हुए शाम को मलाजखंड पहुँचे। यहाँ भी हमारे रहने की व्यवस्था स्वामीजी ने ही की थी। रात्रि भोजन के बाद मैं

बिस्तर में घुसने जा रहा था कि स्वामी ने कहा, "चलिए, टहलने चलें।"

आप सारा का सारा दिन चलें हों, थककर निढाल हो गए हों, तो टहलना मुश्किल हो जाता है। लेकिन जाना पड़ा। लौटकर आए। मैंने सिरहाना रखा ही था कि स्वामीजी ने उसे तुरंत उठा लिया और पैर की जगह रख दिया। " पूरब की ओर पैर करके नहीं सोते।" खाना खाने के बाद पानी पीया तो बोले, "खाना खाने के बाद एक घंटे तक पानी नहीं पीते।" स्वामीजी ज्ञानी पुरुष हैं, अपना ज्ञान दूसरों को देना चाहते हैं, लेकिन हम इतने थके हुए थे कि ज्ञान ग्रहण करने की स्थिति में नहीं थे। मुझे नींद के झोंके आने लगे। स्वामीजी के पास हर मर्ज की दवा है। बोले, "जोर-जोर से नाक से साँस फेंकिए, नींद गायब हो जाएगी।" मैंने वैसा ही किया। लेकिन बात बनी नहीं। तब उन्हें मजबूरन अपनी ज्ञानवाणी रोक देनी पड़ी।

रात के दो बजे जबलपुर से दीप्ति और तपेन भट्टाचार्य आए। वे पहले भी हमारे साथ चल चुके हैं। तपेन ने मेरी दोनों परिक्रमा पुस्तकों का बंगला में अनुवाद किया है। तड़के ही चल पड़े। मलाजखंड सुंदर जगह है। यहाँ भारत सरकार की ताँबे की खदानें हैं- हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड। स्वामीजी का कहना है कि ये लोग अपना जहरीला पानी जिस नाले में बहाते हैं, वह बंजर में मिलता है और बंजर नर्मदा में। इसी के खिलाफ आवाज उठाने वे जबलपुर आए थे और तभी हमारी भेंट हुई थी।

शाम को मंजीटोला पहुँचे। यहाँ बीच जंगल में एक रिसोर्ट बन रहा है। अनिल भाई ने हमारे रहने की व्यवस्था इस में की थी। पास में ही बंजर

बह रही है। यहाँ वह एक साध्वी की विनीत और मंथर चाल से बहती है- मानो यह जंगल न होकर मठ हो। यहाँ जो भवन बन रहे हैं, वे कर्मचारियों के लिए हैं, पर्यटकों के लिए नहीं। पर्यटकों के लिए स्विट्जरलैंड से टेन्ट आएँगे। एक टेन्ट की कीमत तीस से चालीस लाख रुपए होगी। वे बंजर के किनारे लगाए जाएँगे और पर्यटक, जिनमें अधिकांश विदेशी होंगे, उनमें रहेंगे। दो बेड वाले एक टेन्ट का किराया चालीस हजार रुपए प्रतिदिन होगा। नर्मदा की शायद ही और कोई सहायक नदी इतनी महँगी हो !

शाम होते ही बालाघाट से अरुण आ गए। वे हमारे साथ चलेंगे। साथ में उनकी बड़ी गाड़ी भी चलेगी। हम पगडंडी से चलेंगे, गाड़ी सड़क से आएगी। हमारा सामान उसी में रहेगा। यहाँ सोने के लिए गद्दे और ओढ़ने के लिए रजाइयाँ थीं। रजाइयाँ इतनी मोटी कि दीप्ति ने कहा कि मैं तो इसके नीचे दबकर मर जाऊँगी। सुबह अखबारों में लोग पढ़ेंगे रजाई से दबकर एक महिला की मौत !

सुबह एक ग्रामीण ने कहा कि सड़क से न जाकर जंगल से जाएँगे तो अगला पड़ाव काफी पास पड़ेगा। हमने ऐसा ही किया। लेकिन आगे जाने पर बैलगाड़ी का रास्ता खत्म हो गया, फिर पगडंडी भी खत्म हो गई! हम लोग बिना रास्ते के ही चलते रहे। पीछे लौटना भी संभव नहीं था। मूढ़ की तरह जंगल में धँसते चले गए। दीप्ति ने कहा, "हम उस मक्खी की तरह हैं जो भिनभिनाती हुई घर से बाहर निकलने के लिए रास्ता ढूंढ़ती है।"

कान्ता ने कहा, "कम से कम मधुमक्खी ही कहती!"

अपने साथियों का हौसला बढ़ाने के लिए मैंने कहा, "कहते हैं, यात्रा का आधा मजा खो जाने के सौंदर्य में है।"

इस निर्जन वन में राह दिखाने वाला कोई नहीं। हम बिलकुल अपने भरोसे थे। गरीबा और कमलेश स्काउट के तौर पर आगे जाकर देख आए पर कहीं कोई रास्ता नहीं। काफी देर बार फिर गड़वाट मिल गई और जंगल से बाहर भी आ गए।

बंजर मैया तुम्हें प्रणाम!177

हम लोग नौ बजे घुसे थे, दो बजे बाहर निकले ठीक वहीं, जहाँ से घुसे थे! कोल्हू के नौ बैल !

फिर भी बाहर निकलने पर हमने हर्षनाद किया। क्योंकि हम जानते थे कि भूलना-भटकना हमारी यात्रा का हिस्सा है। जिस सड़क से हम कतरा रहे थे, अब उसी सड़क से जाने के सिवा और कोई चारा न था। सूरज दहक रहा था, होंठ झुलस रहे थे, गला सूख रहा था, फिर भी हम बराबर चलते रहे। सुरवाही में एक ग्रामीण के घर विश्राम करने के लिए रुके। दो दिन बाद उसके बेटे की शादी होगी। बेटे-बहू के लिए लीप-पोत कर उसने जो कमरा तैयार किया था, वही हमें दे दिया।

आगे का रास्ता दिखाने के लिए यहाँ से हमने दो लड़के लिए। आगे फिर जंगल पड़ा। हालाँकि यह जंगल हलका था, फिर भी अगर वे लड़के न होते तो हम भटक जाते। जंगल में एक नदी पड़ी, रेत में लिपटी-सी। नाम तन्नोर, बंजर की सहायक नदी। जरा भी पानी नहीं था, लेकिन एक जगह जरा-सा छिछला पानी था। साथ चल रहे लड़के ने कहा, "देखिए, इसकी सारी मछलियाँ तड़प-तड़प कर मर गई हैं। किसी ने पानी में जहर डाल दिया है ताकि इसका पानी पीने से वन्य पशु मर जाएँ और उन्हें उनकी

खाल मिल जाए।"

कालाबाजारिए दूर बैठकर धन का प्रलोभन देकर ग्रामीणों से ऐसे घृणित कार्य करवाते हैं और अकूत धन बटोरते हैं।

जब डुड़गाँव पहुँचे तब सूरज छिप चुका था। अँधेरे में हम आश्रय ढूंढ़ रहे थे पर मिल नहीं रहा था। तभी एक ग्रामीण ने कहा कि चलिए, मेरे घर ही चलिए। मेरा घर छोटा है पर आपको कोई असुविधा नहीं होगी। वह आग्रहपूर्वक अपने घर ले गया। हम लोग उसके साथ हो लिए। पाँव घसीटते अँधेरे में उसके साथ चलते रहे, लेकिन उसका घर आ ही नहीं रहा था।

घर गाँव के दूसरे टोले में था। जब पहुँचे तब उसकी पत्नी अपने दो छोटे-छोटे बच्चों को खाना खिला रही थी। छोटे-से घर में सहसा नौ अजनबियों को देखकर उसने जरा भी नाक-भौं नहीं सिकोड़ी। उलटे हँसकर स्वागत किया। दीप्ति ने कहा, "हम लोग तो बिन बुलाए मेहमान हैं।"

"बिन बुलाए मेहमान तो भगवान का रूप होते हैं।" उसने सहज भाव से कहा। मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। बोला, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटी?"

"राजेश्वरी।"

"और पति का नाम?" फिर अपनी भूल सुधारते हुए बोला, "पति का नाम तो तुम बोलोगी नहीं।"

"बोल दूँगी!" वह बोलने जा ही रही थी। तभी शरद ने कहा, "अर्जुन सिंह।"

लेकिन मैं उसके मुँह से सुनना चाहता था। पति का नाम लेते समय उसके चेहरे पर लज्जा का जो भाव उभरता, उसकी कूजती आवाज में जो मिठास उतरती, उसे अनुभव करना चाहता था। इसलिए शरद की बात को अनसुना करके बोला, "और पति का नाम?"

उसने मेरी आँखों का भाव पढ़ा। मुसकराकर बोली, "वही, जो भैया ने बताया !"

उसने हमें अपनी छोटी सी रसोई दे दी। आज हम लोग तीस किलोमीटर से भी ज्यादा चले थे, अंग-अंग दुख रहा था, फिर भी कान्ता और दीप्ति खाना बनाने के काम में लग गईं। इन दोनों ने अपने आपको काफी मजबूत साबित किया था। (यह चमत्कार ही तो था!) मैं भूख से निढाल और थककर चूर आँखें मूंदे लेटा था। तभी अपनी बाँहें फैलाकर शरद ने घोषणा की, "बा अदव, बा मुलाहिजा, होशियार ! स्वामी मैत्रेय पधार रहे हैं!"

मृदु स्वभाव के स्वामीजी अभी युवा ही हैं। एम.ए. (हिन्दी) अंतिम वर्ष की परीक्षा दे रहे हैं। आज आखिरी पेपर था। सीधे वहीं से आ रहे हैं। उन्होंने किसी गुरु से दीक्षा नहीं ली। प्रकृति ही उनकी गुरु है। दस बरस की उम्र से अकेले वनों में चले जाया करते थे। चौबीस बरस की उम्र से भगवा धारण किया। कहते हैं, "मैंने संन्यास लिया नहीं है, संन्यास बस घट गया है।" साकार से उनका कोई विरोध नहीं, लेकिन उपासक वे निराकार के हैं। प्रकृति-प्रेमी हैं, इसलिए पर्यावरण-प्रेमी भी हैं। पेड़ों को कटते और नदियो को प्रदूषित होते देखकर उन्हें कष्ट होता

है। उन्हें बचाने की कोशिश भी करते हैं। ज्ञान के भंडार हैं। किसी भी विषय पर धारा प्रवाह बोल सकते हैं। हर चीज की व्याख्या करने को तैयार रहते हैं। किसी को भी शब्द से ध्वस्त कर सकते हैं। हमें मिलने शाम को आते हैं। उस समय हम थककर चूर हो गए होते हैं। हम थोड़ा आराम चाहते हैं, अधिक से अधिक थोड़ी गप-शप। लेकिन आते ही वे अपनी ज्ञानवाणी शुरू कर देते हैं। ऐसे में कितना कठिन है ईमानदार श्रोता होना। किन्तु उनका विश्वास है कि लोग सो रहे हैं और उन्हें जगाना उनका पुनीत कर्त्तव्य है। और जो बोलना शुरू करते हैं तो झरने की तरह बह चलते हैं। दो दिन पूर्व उनका प्रवचन 'चेतना' पर था, आज 'संवेदना' पर। थोड़ी ही देर में मेरे साथी इधर-उधर हो गए, पर मेरे लिए ऐसा कर पाना संभव नहीं था। मैं वेदना से कराहता रहा। मेरी ताकत छीजती जा रही थी। मेरी उदासी और उबासी का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपनी प्रतिभा का खजाना खोलते चले गए। जब मैं अधमुआ सा हो गया, तब उन्हें मजबूरन अपना प्रवचन रोक देना पड़ा।

स्वामीजी मानवीय नेह से भरपूर हैं। हमारी उन्होंने भरपूर सहायता की। वाणी पर असाधारण अधिकार है। लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर संन्यास ग्रहण किया है। उनमें एक ही त्रुटि है उनमें धैर्य नहीं। वे एक ही बार में पहाड़ की चोटी पर पहुँच जाना चाहते हैं। उनकी उम्र मेरी उम्र से आधी भी नहीं, लेकिन ज्ञान बाँटने के उत्साह में बैठे बिठाए बुजुर्गियत का बाना पहन लिया है।

इधर खाना बन गया था। हम लोगों ने साथ बैठकर खाना खाया। फिर

स्वामीजी अपने साथी के साथ चले गए। इस यात्रा में हमारी उनसे यह आखिरी भेंट थी।

सुबह सामान समेटा और चल पड़े। रास्ते में तन्नोर नदी पड़ी लेकिन उसमें पानी नहीं था। तीसरे पहर जबलपुर से मेरा भानजा विजय आं गया। तीन दिन पूर्व दीप्ति और तपेन भट्टाचार्य आए थे। दो दिन पूर्व अरुण आए थे। दसेक दिन पूर्व नीरज, शकरगायें, विद्या गुप्ता और कान्ति सोलंकी चले गए थे। इस बार आने-जाने वालों का ताँता-सा लगा रहा।

रात नारपा-झांगुल में रहे। गाँव में इतनी शादियाँ हो रही थीं कि रैनबसेरा

बड़ी मुश्किल से मिला। दूल्हे राजा को ट्रेक्टर पर बिठाया जाता है, बाराती पैदल चलते हैं। सुबह चले तो रास्ते में भी खूब शादियाँ देखने मिलीं।

टाटरी में सुस्ताने बैठे थे। तभी सुडौल चेहरे और बड़ी-बड़ी मूँछों वाला एक अधेड़ आया। आते ही हम लोगों से घुल-मिल गया। बोलता तो उसकी आँखें नाचने लगतीं। हँसता तो भौंहें फड़कने लगतीं। हँसता भी खूब था। बीच-बीच में अपनी मूँछों के सिरों को मरोड़ता रहता। वह बालों में मेहँदी लगाता था, शायद मूँछों और गलमुच्छों पर भी। बोला, "मेरा नाम प्रमोद यादव है लेकिन मजाक में लोग मुझे लाल बाबा कहते हैं क्योंकि मेरे सिर में है डाई, और बालों में शिकाकाई।"

वह शीघ्र कवि था, हर बात का जवाब बड़े विनोदपूर्ण ढंग से कविता में देता था। यह ठीक है कि उसकी तुकबंदी में कोई साहित्यिक गुण नहीं था, लेकिन हमारे कवि सम्मेलनों की कविताओं में ही कौन सा साहित्यिक

गुण होता है? दरअसल उसके भीतर एक खुशमिजाज विदूषक रहता था। हम सभी के भीतर छिपे बचपन को बाहर निकालने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। वह अथक मसखरा था, हँसी का पिटारा। बच्चों जैसे कौतूहल से हम उसकी बातें सुनते रहे और हँसते रहे। और हमें इतनी खुशी देने के बदले उसने एक दमड़ी भी नहीं ली। जाते समय मुझसे बोला, "आशीर्वाद दीजिए कि मरते दम तक मेरा लड़कपन बना रहे।" मैंने कहा, "बुढ़ापा तुम पर रेंगता हुआ ही आ पाएगा।" यह विनोदवृत्ति ही हमारे जीवन को भुरभुरा होने से बचाती है।

दोपहर कामता की पाठशाला में बिताई। वनवासी सेवा मंडल की इस पाठशाला की स्थापना कभी ठक्करबापा ने की थी। आज स्थिति यह है कि आठ महीने से शिक्षकों को वेतन नहीं मिला। हमारे देश में शुभ संकल्प से शुरू की गई सार्वजनिक संस्थाएँ कुछ बरस तक तो ठीकठाक चलती हैं, लेकिन बाद में कबाड़ी का माल बन जाती हैं। यहाँ के शिक्षक वीरेन्द्र सिंह ने कहा कि आज रात मेरे घर रहिए। उनका गाँव यहाँ से छह-सात किलोमीटर दूर है और हमारे रास्ते पर ही है। हम उनके साथ जंगल के रास्ते से गए, गाड़ी सड़क से आएगी। अधिकांश पेड़ तने से कटे हुए थे। आसपास ईंटों के कई भट्ठे हैं। जहाँ ईंट-चूने के भट्ठे होंगे, वहाँ के पेड़ों का यही हश्र होगा।

बंजर मैया तुम्हें प्रणाम!181

रास्ते में बंजर और कन्हान का संगम पड़ा। पानी न होने के कारण कन्हान सूखी पड़ी थी। वह घोंसला ही क्या जिस में पंछी न हो !

दिन ढले शिक्षक के घर पहुँचे। कभी यह पहलवानों का गाँव था। यहाँ के

पहलवान लोहे के मुग्दर भाँजा करते थे, इसलिए गाँव का नाम है मुग्दरा। खुले आँगन में सोए। जब से दीप्ति और तपेन भट्टाचार्य आए हैं, रोज रात को तपेनबाबू के खर्राटे सुनने को मिलते हैं। (अपने खर्राटे अपने लिए नहीं होते, हमारे चेहरे की तरह हमारे खरटि भी दूसरों के लिए होते हैं।) अगर वे कान्हा राष्ट्रीय उद्यान में हमारे साथ होते, तो वहाँ के शेरों को मानना पड़ता कि हमारे बीच कोई रॉयल बेंगाल टाइगर आ गया है! वैसे कम-ज्यादा खरटि हम सभी लेते हैं, लेकिन वे तभी तक सुनाई देते हैं, जब तक तपेनबाबू के शुरू नहीं हो जाते। फिर तो जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है, उसी प्रकार तपेनबाबू के खर्राटे हमारे खर्राटों को निगल जाते और अपने खर्राटों की इस दुर्दशा पर हम कुछ कर भी न पाते।

सुबह चल दिए। दोपहर को मंडला पहुँच गए। सीधे संगम गए। यहाँ बंजर का पाट बहुत चौड़ा है, लेकिन धारा बहुत पतली है, मानो म्यान में सूई रखी हो। (लेकिन इसी बंजर को कोई तीन माह बाद भरी बरसात में देखने का अवसर मिला था। तब उसमें इतना पानी था कि नए आदमी के लिए यह समझना मुश्किल होता कि इनमें कौन नर्मदा है और कौन बंजर। इस बार म्यान में तलवार रखी थी!) संगम में सभी ने तबियत से स्नान किया क्योंकि रानीघाट के छोटे-से कुंड को छोड़कर बंजर में कहीं भी घुटने से अधिक पानी नहीं था। शरद और विजय तो अंधाधुंध तैरते रहे। अनिल गोहिल का घर संगम के पास ही है। सभी का भोजन उनके घर पर था। अरुण को पहले ही दिन कड़ी धूप में तीस किलोमीटर से भी ज्यादा चलना पड़ा था। हमें डर था कि अपनी गाड़ी समेत कहीं वे घर न चले जाएँ। लेकिन वापस जाने का उनके मन में विचार तक न आया। उनकी गाड़ी में अभी तक हमारा सामान ही बैठता था, पहली बार हम लोग उनकी गाड़ी में बैठे और ठाठ से घर आ गए।

पैर की मोच के कारण यह यात्रा पूरे दो साल के अंतराल के बाद हो पाई

थी। मोच अभी भी थोड़ी-बहुत बनी हुई है। इसलिए इस बार कैनवस के जूते पहनकर चला था। फिर भी भरोसा नहीं था कि उद्गम तक जा पाऊँगा। लेकिन वहाँ तक तो पहुँचे ही, वापस संगम भी आ गए। कड़ी धूप में उन्नीस दिन में पौने चार सौ किलोमीटर चले। इतना हम पहले कभी नहीं चले थे। मैं 80 का हूँ और कान्ता 72 की। इतनी ताकत हम में कहाँ से आई?

बंजर मैया ! (मार्फत नर्मदा मैया!) तुम्हें प्रणाम। तुम्हीं ने तो हमें घोड़ों जैसी ताकत दे रखी थी !

नर्मदा की सहायक नदी : शक्कर

19. रिक्तकुंभ शक्कर

बादलों के मन को दो ही चीजें जीत सकती हैं ऊँचे पहाड़ और सघन वन। इन दोनों के प्रति बादलों के मन में सम्मान का भाव होता है। इन्हीं से

आकर्षित होकर वे आकाश से नीचे उतरते हैं। पहाड़ और जंगल के कारण ही वर्षावतरण होता है, साल-दर-साल। लेकिन हमने अधिकांश जंगल काट डाले। इससे पानी कम बरसता है और नदियाँ सूख जाती हैं।

नदियाँ क्यों सूख रही हैं? क्या समुद्र सूख गया है? क्या बादल नहीं आ रहे? समुद्र भरपूर भरा है और बादल भी आ रहे हैं। बादलों का कारवाँ सुदूर समुद्र से पानी लेकर आता है लेकिन उसका दोस्त जंगल न रहा। इसी से वे बिना बरसे चले जाते हैं।

नदी यानी बेल-धरती पर पसरी पानी की बेल। जंगल काटकर हमने उसकी जड़ को ही काट डाला।

अभी हमारी नदियों की दैत्य-दशा चल रही है। उस कराल दैत्य का नाम है आदमी। अपनी हजार क्रूर आँखें फाड़कर यह शिकार लोलुप दैत्य कह रहा है, "हवा को, पानी को, पशु-पक्षी को, पेड़-पौधों को, नदी को, मिट्टी को किसी को भी जिंदा नहीं छोडूंगा। सभ्यता के कुंड में इन सभी को झोंककर राख कर दूँगा, तभी मुझे शांति मिलेगी।" परंतु मैं यह सब क्यों लिख रहा हूँ?

क्योंकि नर्मदा की जिस सहायक नदी की पदयात्रा करने हम आए हैं, उसमें पानी की एक बूँद नहीं। शक्कर सूख गई थी। नदी से पानी अलोप हो चुका था।

पानी की कलकल ध्वनि की जगह सन्नाटा था। लोगों ने कहा, शक्कर को पहली बार सूखते देखा। संगम पर जो थोड़ा-सा पानी था, वह नर्मदा का घुस आया पानी था। स्वयं नर्मदा में बहुत कम पानी था।

उदास आँखों से नदी को, नहीं, नदी के कंकाल को (कठोर शब्द का प्रयोग करूँ तो नदी की लाश को) देखता रहा। पानी के साथ ही नदी का माधुर्य भी चला गया था। पल भर के लिए मन में यह विचार भी आ गया इस सूखी नदी की परिक्रमा करने की बजाय किसी और नदी की परिक्रमा क्यों न करें? क्या कोई ऐसे मंदिर की परिक्रमा करेगा, जिसमें मूर्ति न हो? क्या पृथ्वी ऐसे सूर्य की परिक्रमा करेगी, जो जलकर कोयला हो गया हो?

पानी न होने के कारण शक्कर वैसे ही अपने आपको परित्यक्त और शक्तिहीन महसूस कर रही थी। अब हम भी उसे छोड़ दें? अगर वह संपन्न है, तो हम उसके साथ हैं, अगर विपन्न है तो हम उससे किनारा कर लें? तब तो हमारे जैसा स्वार्थी भला और कौन होगा?

माना कि शक्कर का घड़ा अभी खाली है, लेकिन बरसात में तो वह भरेगा ही। उसका रिक्तकुंभ पुनः पूर्णकुंभ होगा। हम उसकी परिक्रमा जरूर करेंगे। यह ठीक है कि पानी नदी का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है, लेकिन केवल वही तो नहीं। दोनों किनारों का परिवेश है- कगारें, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, खेत-खलिहान, ग्रामीण स्त्री-पुरुष- ये सभी तो हैं। इनके अलावा पानी न होने के कारण हम उस सेज को भी देख पाएँगे, जिस पर नदी सोती है। हर बार आभूषण देखते थे, इस बार मंजूषा देखेंगे।

शक्कर गाडरवारा से प्रायः 20 किलोमीटर दूर नर्मदा से मिली है। हम सीधे संगम गए और वहाँ से भरी दोपहर में यात्रा शुरू की। तारीख थी 21

मार्च 2009 1 धूप की परवाह किए बगैर सारा दिन चलते रहे। अधिकांश खेत खाली पड़े थे। प्रकृति में अत्यधिक रूखापन था। नदी की तो मानो हड्डियाँ निकल आई थीं। चुप-चुप और मुरझाई मुरझाई नदी को देखकर दिल दुखता था।

शाम का धुंधलका अँधेरे में डूब चला, पर डमरूघाटी न आई। वहाँ पहुँचते

रात हो आई। यहाँ एक बड़ा मंदिर है। जिस ऊँचे प्लॅटफार्म पर मंदिर बना है, उसका आकार डमरू जैसा है, इसलिए जगह का नाम है डमरूघाटी। पास में शक्कर है और उस पार है गाडरवारा। वैसे तो नया साथी कोई नहीं, पर शैलेन्द्र का परिचय कराना जरूरी है। शैलेन्द्र अधेड़ उम्र में भी चुस्त और फुर्तीले हैं। मैंने उनसे पूछा कि आप अपनी पत्नी को क्यों नहीं ले आए तो उन्होंने कहा कि बहुओं ने उसे जरूरत से ज्यादा सुख दिया। उसे सोफा पर बिठा दिया और हाथ में रिमोट पकड़ा दिया। नतीजा यह हुआ कि उसके लिए चलना-फिरना मुश्किल हो गया है। अगर नीचे बैठ जाए तो बिना सहारे के उठ नहीं सकती।

कुछेक सुख दुखदायी होते हैं। इनमें प्रमुख है टीवी का सुख।

शैलेन्द्र ने दाहिने हाथ पर अपना पूरा नाम मय पते के गुदवा रखा है। मकान नंबर तक है। कारण पूछने पर बोले, "नौकरी के दौरान मुझे मंडला के जंगलों में रहना पड़ा। रात में प्रायः जीप से यात्रा करनी पड़ती। दो-एक बार तो शेर जीप के साथ-साथ दौड़ा। सोचा, ऐसे में कहीं मर-मरा गया तो लोगों को पता कैसे चलेगा कि लाश किसकी है? इसलिए पूरे ठौर-ठिकाने

के साथ नाम गुदवा लिया।" मैंने यह नहीं पूछा कि शेर अगर दाहिना हाथ ही खा जाता तो? खैर, चुनाव आयोग अगर इस गुदना-पद्धति को अपना ले, वयस्क होते ही मतदाता के दाहिने हाथ पर उसका नाम और जन्म की तारीख गुदवा दिया करे तो जाली मतदान बिलकुल बंद हो जाए।

साथ में छोटा बेटा नीरज भी है। पहले भी चल चुका है। पेशे से वकील है, पर उसका मन वकालत में नहीं। फोटोग्राफी के पीछे पागल है। पक्षियों की फोटोग्राफी उसे विशेष प्रिय है। पक्षियों से बढ़कर उसका कोई मीत नहीं। जाने कहाँ-कहाँ से तरह-तरह के पक्षी उसे दिखाई दे जाते हैं। पेड़ के खोखल में छिपे पक्षी तक उसे दिख जाते। उसे चिड़ियों की पहचान भी खूब है। उसका बस चले तो मुकदमे की पेशी पर वह किसी चिड़िया को भेज दे संभवतः कौए को, क्योंकि पक्षियों में वह सबसे चतुर होता है और वकील की वर्दी तो वह पहले से ही पहने है- और खुद चिड़ियों के फोटो लेता रहे।

सुबह चल दिए। नदी में डग-डग पर मोड़ हैं। दूर-दूर तक गेहूँ के खेत

फैले थे। कुछेक खेतों की फसल सुनहरे समुद्र सी लगती, कुछेक की फसल अभी हरी थी तो कुछेक खेतों की फसल कट चुकी थी। एक जगह हमारी ओर का तट बहुत ऊँचा था लेकिन सामने का तट नीचा था। बरसात में नदी का पानी सामने के मैदान में भर जाता है। वहाँ इतनी अच्छी फसल होती है कि खलिहान छोटे पड़ जाते हैं। वैसे भी यहाँ की काली मिट्टी बेहद उपजाऊ है। नरसिंहपुर समृद्ध जिला है। यहाँ कितने लोग

हमारी मेजबानी करना चाहते हैं। कहते हैं, "शक्कर की परिक्रमा कोई नहीं करता। हमारे धन्य भाग्य जो आप हमारी नदी की परकम्मा कर रहे हैं। आइए, हमारे घर रहिए।" कोई रास्ता दिखाने दूर तक साथ चलता।

चलते-चलते अचानक मेरे मुँह से चीख-सी निकली, "पानी!" नदी में डबरों में भरा पानी दिखाई दिया। मेरा दिल उछल पड़ा। तो बेल पूरी तरह से सूखी नहीं है, अभी कुछेक पत्ते बाकी हैं।

अगर मैं मॉडर्न आर्ट वाला होता तो इसी बात को इस तरह से कहता : निदाघ (ग्रीष्म) ने अपने दाँत और नाखून से नदी की चादर को फाड़कर उसके चिथड़े-चिथड़े कर दिए हैं। डबरे यानी पानी के चिथड़े। है न मॉडर्न उपमा !

किन्तु आगे नदी फिर सूखी थी। शक्कर सूख जरूर गई है, पर नीचे तो पानी है। लालची मनुष्य के पंजों से यह भूगर्भ जल भला कैसे बच सकता है। किसी ने शक्कर के सूखे पाट में बोरिंग कर रखा था और नदी के बचे-खुचे पानी को भी निचोड़ रहा था। मनुष्य धरती के अंदर के पानी को बेरहमी से निकाल रहा है। एक इत्ता-सा छेद भी बड़े से बड़े बरतन को खाली कर देता है। यहाँ तो कदम-कदम पर बोर हैं। नदी के सूने घर में चोरी करने जैसा है यह।

शाम को नदी-तट पर एक किसान मिला। उसकी दाढ़ी बढ़ी थी। उसके चौड़े चेहरे पर दोस्ती का भाव था। बोला, "चलिए, आज मेरे घर रहिए।" नाम है हाकमसिंह कौरव। इधर कौरव बहुत हैं। उसने एक मजेदार बात कही। "रामायण में कहीं भी लक्ष्मण और हनुमान के बीच संवाद नहीं हुआ। यहाँ तक कि हनुमान संजीवनी बूटी ले आए, जिसके कारण लक्ष्मण

के जीवन की रक्षा हुई, तब भी लक्ष्मण की हनुमान से कोई बात नहीं हुई! है न अचरज की बात!"

रिक्तकुंभ शक्कर 187

गाँव का साधारण-सा किसान भी कैसे-कैसे सवाल कर सकता है! हाकमसिंह विनोदी है। भोजन बनाने में थोड़ी देर हुई। तब तक शैलेन्द्र सो गए थे। कोई उन्हें जगाने लगा तो हाकमसिंह बोले, "सोते शेर को जगाते नहीं!"

एक तो दिन भर की प्रचंड भूख, दूसरे लकड़ी की आग में पका भोजन, इतना स्वादिष्ट कि पूछिए मत। भूख किसे कहते हैं, स्वाद किसे कहते हैं, यह इन पदयात्राओं में समझ में आता है। घरों में हम बिना भूख लगे खाते हैं, यहाँ खाने पर भूख भेड़िए की तरह टूट पड़ते हैं।

सुबह आगे बढ़े। एक गाँव में शैलेन्द्र के परिचित रहते थे। उनके घर गए। उनसे बातें कर रहे थे तभी घर के अधखुले दरवाजे में से एक शालीन नारी बाहर निकली और चहक कर बोली, "चाचाजी, मैं मयूरा!"

शैलेन्द्र ने उसके माथे पर हाथ रखा और आशीर्वाद दिया। मुझ से बोले, "यह लड़की मेरे सामने बड़ी हुई। हमारे पड़ोस में रहती थी। पड़ोस में एक लड़का भी रहता था। अठारह बरस पूरे होते ही इसने उस लड़के से अन्तर्जातीय विवाह कर लिया। उस दिन से इसके माता-पिता ने इससे संबंध तोड़ लिया। लेकिन हम लोगों ने नहीं तोड़ा। यह आज भी हमारी बेटी है। इसका पति सॉफ्टवेयर इंजीनियर है। इसके माता-पिता अगर अपने समाज में लड़का ढूँढ़ते, तो इतना अच्छा लड़का शायद ही मिलता।

लड़की सुखी है और उसके प्यारे प्यारे दो बच्चे भी हैं।"

एक न एक दिन उसके माँ बाप उसे जरूर अपना लेंगे। मयूरा ने कान्ता से कहा, "माताजी, अंदर आइए।" यह उसके सास-ससुर का घर है। अभी बच्चों की छुट्टी है, इसीलिए यहाँ आई है।

उसके ससुर रास्ता दिखाने साथ चले। बघौरा पहुँचे तो दिन ढल चला था। नदी किनारे अलस भाव से पसरी छोटी-सी बस्ती है बघौरा। यहाँ भगवानदास के घर हमारे रहने की व्यवस्था करके वे लौट गए। भगवानदास की पत्नी ने हमें खाना बनाने नहीं दिया, खुद ने हम सभी के लिए साग-पूड़ी बनाई। केवल दो व्यंजन वाला यह खाना किसी दिव्य भोज से कम न था।

सुबह भगवानदास ने कहा कि शक्कर पास में ही है और उसमें पानी भी

बह रहा है। हम वहाँ गए। भले ही सूखी सिकुड़ी, लेकिन वह बह रही थी। हम सभी ने शक्कर की छिछली धारा में स्नान किया और आगे बढ़े।

मैं खुश था कि हमारी पदयात्रा ठीक-ठाक चल रही है। हम रोज 17-18 किलोमीटर चलते। इस ओर चट्टान तो क्या कंकड़ तक नहीं। पहाड़ भी नहीं। हमारी घुमावदार पगडंडी नदी किनारे की मिट्टी की लहरों की तरह उठती-गिरती टेकरियों की कतार पर से है। हम निरंतर चढ़ते-उतरते रहते।

वज्रपात सर्वथा आकस्मिक था। कल शाम तक उसके आने का कोई

संकेत न था। आज सबेरे से ही मुझे साँस लेने में कठिनाई हो रही थी। चढ़ाई चढ़ते समय जोर-जोर से हाँफता। थोड़ी देर बाद तो सपाट मैदान पर चलने पर भी हाँफने लगा। कई जगह उड़ावनी हो रही थी। गर्म हवा के तेज झोंको के कारण भूसे के बारीक कण मेरे नथुनों और श्वास नली में घुस गए थे और मुझे ठीक से साँस नहीं लेने दे रहे थे। इस ओर बारीक पाउडर जैसी धूल है, वह भी गई होगी। इनहेलर काम नहीं कर रहा था। मेरा दमा उखड़ा था।

दमा कुटिल और धूर्त होता है। हमें और हमारे स्वास्थ्य को किस्तों में चौपट करता है। इस तरह अचानक चोट पहुँचाने में उसे मजा आता है। अथवा यह भी हो सकता है कि कल शाम से ही वह छिपते-छिपाते मेरा पीछा कर रहा हो और मुझे इसका पता न चला हो। आज सुबह उसने मुझे धर दबोचा। अब मैं साँस नहीं ले रहा था, हवा निगल रहा था। मैं ठीक से चल नहीं पा रहा था। मैं लाठी नहीं लेता, कान्ता लेती है। मैंने उसकी लाठी ले ली। मुझे उसके सहारे की जरूरत थी। खाँसी अलग परेशान कर रही थी। दमे और खाँसी के मणिकांचनयोग के कारण अब मुझे हर पन्द्रह मिनट पर सुस्ताने के लिए रुकना पड़ता था। कान्ता का उद्वेग मैं देख रहा था। उसका बस चलता तो मेरी सारी पीड़ा पी जाती। लेकिन मेरी पीड़ा तो मुझे ही झेलनी होगी। इसमें प्रॉक्सी नहीं चलती।

कल शाम से हम जिन पहाड़ियों को दूर से देखते आ रहे थे, वे पास आ गई थीं। इसी की तलहटी में है किसी गोंड राजा की ढाई सौ साल पुरानी गढ़ी। जब वह बिलकुल पास आ गई तो मेरे घिसटते पाँवों में जान-सी पड़ गई। रोज की अपेक्षा आज हम कम चले थे, फिर भी 10-12 किलोमीटर तो चले ही थे। हम

वहाँ पहुँचे तब सूरज आग बरसा रहा था। किसी ने परित्यक्त गढ़ी की मरम्मत करवा कर उसे रहने लायक बना दिया है। जिस गढ़ी या महल में कभी राजा-रानी रहते थे, उसमें अब कुछ बाबा रहते हैं। हम भी उसी के एक कमरे में रहे। मैं बेजान-सा पसर गया। शांत और एकांत जगह है यह। शाम का समय परिसर में टहलते हुए बिताया। गरमी की रात का सुहानापन मानो मेरी आत्मा में प्रवेश कर गया।

सुबह जागा तो पेड़ों में पक्षी प्रभाती गा रहे थे और नीरज उनके फोटो ले रहा था। उसे यहाँ कुछेक दुर्लभ पक्षी मिले जो संभवतः अफ्रीका से आए थे। मुझे थोड़ा आराम लगा, लेकिन यह मेरा भ्रम था। थोड़ा चलते ही हाँफने लगा। दमघोंटू दमा मेरे फेफड़ों में घुसकर मुझ पर हुक्म चला रहा था। घर लौटने के सिवा कोई चारा न था। मुझे दुख था कि मेरे कारण मेरे साथियों की यात्रा भी अधूरी रह गई।

(अकेले शैलेन्द्र आगे गए। आकर उन्होंने बताया- पहाड़ों के उस पार, सँकरी पहाड़ी घाटी की खड़ी चट्टानों के बीच से बहती शक्कर स्वर्ग सी सुंदर है। युधिष्ठिर की तरह अकेले शैलेन्द्र ही उस स्वर्ग में जा सके। बाकी के हम सभी यहीं रह गए।)

यहाँ गोंड राजा ने 52 कुएँ खुदवाए थे, लेकिन अब दो ही बचे हैं। एक गड्ढे में इसलिए पानी इकट्ठा किया गया है, ताकि रात में जंगली जानवर आकर अपनी प्यास बुझा सकें। प्यास के कारण उनका भी बुरा हाल है। पहाड़ी पर सागौन के पेड़ हैं लेकिन पत्ते न होने के कारण निरे दूँठ लग रहे थे। उन पर जो कौए बैठे थे, वे भी मौन थे। अनासक्त भाव से मैं यह सब देख रहा

था।

दोपहर की आग बरसाती धूप में एक बाबा अपने चारों ओर कंडों की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगाकर उनके बीच पद्मासन लगाकर बैठा। फिर उसने उन ढेरियों में आग लगाई। पहले ध्यान मुद्रा में बैठा, फिर प्राणायाम किया। बीच-बीच में चमीटे को तलवार की तरह भाँजता। हर ढेरी को हौले से छुलाता। आग बुझने के साथ ही उसने शंख फूंका। यह अनुष्ठान पूरा होने की घोषणा थी। यहाँ छह-सात बाबाओं को छोड़कर कोई नहीं रहता। लगता था, वह एकांत साधना कर रहा था।

एक दुबला-पतला दुहरी दाढ़ी वाला बाबा भी था। उसके पोपले चेहरे पर भक्ति का भाव था। उसने कहा, "मैं एक संपन्न परिवार से हूँ। एक बड़े ज्योतिषी ने मुझ से कहा कि तुम साठ बरस से ज्यादा नहीं जिओगे। आज 92 का हूँ और मुझे बुखार तक नहीं आया।"

यात्रा का अंत एक टीस लेकर आया। इस बार मैं परीक्षा में पूरा न उतर सका। मैंने यात्रा शुरू की थी मस्ती के साथ, और वह चल भी रही थी बड़े ठाठ से, किन्तु उस मस्ती को मैं बनाए न रख सका। बोतल के जिन्न की तरह मेरा दमा बाहर निकल आया था और मुझे परेशान कर रहा था। पिटे हुए पहलवान की तरह मुझे बीच से ही लौटना पड़ा।

एक बात साफ समझ में आ रही है अब गरमियों में चलना संभव नहीं। जो दमा अभी तक नरमी से पेश आ रहा था, अब सख्ती दिखाने लगा है। मुझे अपनी पदयात्राओं के अंत की आहट सुनाई दे रही है। एक उम्मीद फिर

भी है। शायद दीवाली के समय चल सकूँ। आशावादी होने में क्या हर्ज है, दमे से हाँफ तो कभी भी सकता हूँ।

परिक्रमा की तीसरी पुस्तक प्रायः तैयार है। संभवतः यह उसका अंतिम लेख है। या एकाध यात्रा का एकाध लेख और आए। पुस्तक शीघ्र ही छप जाएगी। मैया ! आशीर्वाद दो कि उसे पढ़कर प्रसन्न होकर पाठक कहें कि वेगड़जी 92 वर्ष तक जिएँ और उन्हें बुखार तक न आए !

अभी 81 का हूँ। अगर वे 92 की जगह 82 कहेंगे, तब भी मैं खुश हो जाऊँगा और कहूँगा, "आपके मुँह में घी-शक्कर!"

20. अलविदा नर्मदा

नर्मदा के आप्रवासी पंछी हैं हम। आते हैं, उड़ जाते हैं, फिर आते हैं। इस बार हम 30 हैं। इतने अधिक कभी नहीं चले। जब मित्रों को पता चला कि यह मेरी आखिरी पदयात्रा है, तो साथ चलने के लिए वे दूर-दूर से आए। लखनऊ से राजीव मित्तल, इंदौर से मीनल फडणीस, पंकज श्रीवास्तव, क्रांति चतुर्वेदी; दुर्ग से कान्ति सोलंकी तथा विद्या गुप्ता, मुंबई से गार्गी देसाई, किरीट शाह तथा उनकी पत्नी शोभा शाह आए। खंभात से रंजन बहन आईं। जयपुर की चरनजीत ढिल्लों हमारे साथ चलने के लिए सत्तू बाँध चुकी थीं, किन्तु आ न सकीं। शरद और प्रदीप के बिना तो हमारी यात्रा हो ही नहीं सकती। तपेन भट्टाचार्य और उनकी पत्नी दीप्ति तथा शैलेन्द्र के अलावा नए सदस्यों में कुमुद सिंह, शिशिर नेमा, प्रशांत

पवार और प्रमोद चौबे हैं। और हाँ, हम भी हैं- मेरा भानजा विजय परमार, बेटा नीरज, कान्ता और मैं। गाँव से हमारे तीनों सहायक आ गए हैं। ड्राइवर जागेश्वर भी रहेगा। बहू-बेटों ने हमें इसी शर्त पर जाने की अनुमति दी है कि साथ में गाड़ी चलेगी। हम पगडंडी से चलेंगे, सामान गाड़ी से आएगा।

4 नवंबर 2009 की सुबह हम बरमानघाट आ गए। यहाँ से जबलपुर तक की प्राय: 125 किलोमीटर की पदयात्रा करेंगे। दिन भर नदी तट पर घूमते रहे। दूसरे दिन सवेरे नदी में स्थित द्वीप गए। नाविक बाँस से ही नाव खे रहा था। नदी में पानी बहुत कम था। वहाँ से लौटकर नदी के साथ-साथ आगे बढ़े। सतधारा में रिछारियाजी मिले। नर्मदा तट की जड़ी-बूटी संबंधी उनकी जानकारी आश्चर्यजनक थी।

दोपहर तक छोटा धुआँधार पहुँच गए। यहाँ नर्मदा में छोटे-छोटे कई प्रपात हैं। प्रपातों में ही नदी की सबसे प्यारी छटा देखने मिलती है। लहरों के फेन की सफेद झालर बनाती नदी मधुर गीत भी गा रही थी। इन प्रपातों को देखकर लगा मानो नर्मदा रस्सी टाप रही है। यहाँ एक मछुआरे ने मुझे बताया कि किसी समय यहाँ खूब मछलियाँ थीं, पर अब नहीं। किसान के जहरीले कीटनाशक और रासायनिक खाद बहकर नदी में आते हैं और मछलियों को मार डालते हैं।

पास में वृक्षों से आच्छादित एक टेकरी पर आश्रम है। वहाँ दो परकम्मावासी बंगाली बाबा मिले। एक अमरीका में सॉफ्टवेअर इंजीनियर था। लेकिन अब वैराग्य ले लिया है और नर्मदा में रम गया है।

रात गुरसी की धर्मशाला में रहे। सुबह पंकज श्रीवास्तव और क्रांति चतुर्वेदी ने विदा ली। केवल एक दिन साथ चलने के लिए वे इंदौर से आए थे। पंकज ने एक अद्भुत पुस्तक लिखी है- जंगल रहे, ताकि नदी बहे। क्रांति चतुर्वेदी एक अखबार के संपादक हैं। किसी भी संपादक के लिए अथवा समूचे पत्रकार जगत के लिए शाश्वत प्रश्न होते हैं- क्यों, कहाँ, कब, कौन, कैसे, किधर ! यही ककहरा इनके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

यहाँ से आगे बढ़े। रास्ते में एक गाँव पड़ा गोकला। यहाँ के तीन छात्र केरपानी पढ़ने जा रहे थे। इनके गाँव से केरपानी 7 किलोमीटर दूर है। आने-जाने में 14 किलोमीटर। अगर वे साल में 200 दिन भी स्कूल जाते हैं, तो एक साल में प्रायः पौने तीन हजार किलोमीटर चलते हैं। ग्यारहवीं पास करते-करते वे प्रायः 18,000 किलोमीटर पैदल चल चुके होते हैं। तीनों स्कूल की साफ-सुथरी वर्दी पहने थे। गीता सातवीं में थी और उसका भाई और उसका साथी ग्यारहवीं में थे। हमें भी केरपानी जाना था। हम दोनों उनके साथ हो लिए। हमारे लिए बच्चों ने अपनी चाल धीमी कर दी। बातें करते जा रहे थे। तभी गीता ने कान्ता से पूछा, "अम्मा, सीताफल खाओगी?"

मैं अवाक रह गया। उस बच्ची ने सोचा होगा, इन परकम्मावासियों को भला मैं क्या दे सकती हूँ? तभी उसे याद आया कि खाने के लिए उसकी माँ ने उसे एक सीताफल दिया है। बस्ते में से निकालकर उसने वह हमें दे दिया। मेरी आत्मा

एक अकथनीय स्नेह से भर उठी। हमने उसे श्रद्धा के भाव से लिया। उसके भाई ने कहा, "चारों ओर जो पहाड़ियाँ हैं न, सब सीताफल के पेड़ों से लदी हैं। केरपानी में आपको खूब सीताफल मिलेंगे।"

केरपानी पहुँचते ही उनका स्कूल पड़ा। तीसरी और नौवीं हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में मेरे पाठ हैं। इसलिए शिक्षक मेरे नाम से परिचित थे। कहने लगे, हमारे छात्र कभी किसी लेखक से नहीं मिले, अतः वे आपसे मिलना चाहते हैं। कृपया दो शब्द भी कहें। स्कूल में कोई बड़ा कमरा नहीं था, इसलिए मुझे तीन भाषण देने पड़े। नौवीं कक्षा में बोला- बच्चो, नदी केवल हमारे लिए नहीं है। मछलियों के लिए भी है। मछलियाँ भी हमारी तरह साँस लेती हैं। पानी में जब प्रदूषण बढ़ जाता है, तो ऑक्सीजन कम हो जाता है। तब दम घुटने से मछलियाँ मर जाती हैं। नदियों को साफ रखना बहुत बड़ी देशसेवा है।

दसवीं में बोला- बच्चो, भारत का नकशा उठाकर देख लो, हमारे देश की सभी प्रमुख नदियाँ पूरब की ओर बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। बड़ी नदियों में एकमात्र नर्मदा ही एक ऐसी नदी है जो पश्चिम की ओर बहकर खंभात की खाड़ी में गिरती है। अपनी बिरादरी के नियम को तोड़कर पश्चिम की ओर बही और हमें- पूरे पश्चिमी भारत को मालामाल कर दिया। हम नर्मदा के इस उपकार को कभी न भूलें। उसे गंदी कदापि न करें। नदी सबके लिए है लेकिन उसके लिए नहीं जो उसे गंदा करे।

ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों से कहा- हमारी पृथ्वी को सौर-मंडल में सबसे अच्छी जगह मिली है। अगर वह सूर्य के पास होती तो इतनी गर्म होती कि वहाँ केवल भाप होती। अगर सूर्य से दूर होती, तो वहाँ इतनी ठंड होती कि वहाँ केवल बर्फ होती। हालाँकि भाप और बर्फ पानी के ही प्रकार हैं

लेकिन जीवन वहीं संभव है, जहाँ पानी है। और पानी केवल पृथ्वी के पास है। इसीलिए पृथ्वी पर जीवन है। हमें अधिकांश पानी अपनी नदियों से मिलता है। लेकिन हम हैं कि अपनी नदियों को चौपट करने पर तुले हुए हैं। अगर नदियाँ रहेंगी, तो हम रहेंगे। बच्चो, नदी प्रकृति का बहुत बड़ा वरदान है। हम उसका दुरुपयोग न करें। नदी को गंदा न करें। बाद में चाहे जितना साफ करें, गंदगी के घाव रह जाते हैं।

इसके साथ ही 'लेखक से मिलिए' कार्यक्रम पूरा हुआ। पारिश्रमिक के रूप में हमें डाल के पके बढ़िया सीताफल मिले! वहाँ से धर्मशाला गए तो देखा हमारे साथियों ने सीताफल की एक बड़ी टोकरी ही खरीद ली थी और प्रदीप गुप्ता के नेतृत्व में कुछेक साथी सीताफल खाने में प्राणपण से जुटे थे! एक नगर में भाजी के भाव मिठाई मिलती देखकर एक चेले ने अपने गुरु का साथ छोड़ दिया और वहीं रह गया। यहाँ सीताफल इतने अच्छे और सस्ते हैं कि मन करता है, यहीं रह जाऊँ। फिर जो दशा चेले की हुई थी, वही मेरी होती हो तो हो।

यहाँ की धर्मशाला बहुत छोटी थी। तभी एक ग्रामीण आया, नाम था तेजबल विश्वकर्मा। बड़े आग्रह से हमें जिन्हें उसने कभी देखा तक न था- अपने घर ले गया। इस तरह हमारा रेवड़ उसके घर जा पहुँचा। उसके घर का बरामदा बहुत बड़ा था। एक कोने में लोहारखाना था। अभी बंद पड़ा था पर कभी यहाँ घन की लयबद्ध चोटों की गूंज सुनाई देती होगी।

यहाँ हम दोपहर को ही आ गए थे। यहाँ से कोई 8 किलोमीटर दूर पहाड़ों के बीच में एक अत्यंत सुरम्य जगह है। नाम है पुतलीखोह। उस पहाड़ी दरें

में प्रागैतिहासिक चित्र हैं जिसका बहुत कम लोगों को पता है। मैं उन्हें दो बार देख चुका हूँ। मैं चाहता था कि मेरे साथी भी उन्हें देखें। राजमार्ग तक गाड़ी से चले जाएँगे, आगे 3 किलोमीटर पैदल जाना होगा। शाम तक वापस आ जाएँगे।

राजमार्ग के निकट वन-विभाग का कार्यालय है। वहाँ से एक पगडंडी हमें एक झरने तक ले गई। मैं जानता था कि यही झरना हमें पुतलीखोह ले जाएगा। झरना सूखा था और उसमें बड़े-बड़े बोल्डरों की भरमार थी। उन्हीं पर से चलना था। सधे-सधाए कदम रखते हुए आगे बढ़े। झरना एक सँकरी घाटी में सिमट गया। आखिर डूबती धूप में पुतलीखोह पहुँचे। लेकिन अभी एक खड़ी चट्टानी चढाई चढ़नी थी। यहाँ महिलाओं की और मेरी भी हिम्मत जवाब दे गई। हम वहीं बैठ गए। बैठे-बैठे यहाँ की अनोखी चट्टानों की रूपरेखा को बड़ी तन्मयता से देखता रहा। दोनों ओर के पहाड़ इतने पास आ गए हैं, मानों हम एक पहाड़ी माँद में आ गए हों।

हमारी गाड़ी को दो फेरे लगाने पड़े। हमारे जो साथी बाद में आए, वे भरत

नामक एक लड़के को ले आए। वह यहाँ का जानकार है। उसके साथ हमारे कई साथी चढ़ाई चढ़कर ऊपर गए। इनमें कुछ महिलाएँ भी थीं। कुमुद थोड़ी स्थूलकाय है, फिर भी ऊपर गई। हमने उसके इस दुःसाहस के लिए बधाई दी। हम प्रागैतिहासिक चित्र देख न सके लेकिन इसका हमें कोई खास रंज नहीं। यहाँ के पहाड़ी परिवेश में इतनी भव्यता है कि मैं उसे ही देखता रहा। यहाँ की भव्यता यथार्थ कम, स्वप्न अधिक लग रही थी। हमारे साथियों के नीचे उतरते ही हमने वापसी यात्रा शुरू कर दी क्योंकि

पहाड़ की परछाइयाँ घाटी में फैलने लगी थीं और मार्ग विकट था। शैलेन्द्र लद्द से गिर पड़े।

हम लोग प्राय: 30 हैं और तेजबल के घर में भी प्रायः इतने ही सदस्य हैं। रात को 60 लोगों का भोजन बना और साथ बैठकर खाया। सुबह नाश्ते का समय हुआ तो प्रदीप ने कहा, "परसों की बाटी, कल की रोटी और आज के पोहे दो!" मेरे साथियों का कहना था कि प्रदीप काजू-किशमिश लेकर चला है लेकिन निकाल नहीं रहा। वह कहता है कि वे मैंने आड़े वक्त के लिए बचाकर रखे हैं।

पाँव-पैदल चलने में कितना आनंद है। हर कदम जो हम उठाते थे, हर साँस जो हम लेते थे, उससे हमें नई स्फूर्ति मिलती थी। आगे कछार में किसान सिंचाई कर रहे थे। कीचड़ हो गया था। कोई दलदल में धँसा, किसी का पाँव फिसला, कोई गिरा तो कोई गिरते-गिरते बचा। एक जगह लोग नदी में नहा रहे थे। हमारे साथी अपने को रोक नहीं पाए और पानी में कूद गए। कुछेक ने पूरे शरीर पर गीली मिट्टी लगाई तो कुछ उत्साहियों ने गीली मिट्टी में लोट लगाई। फिर देर तक नहाते और तैरते रहे। नदी का स्नान राजसी स्नान होता है। बाथरूम का स्नान तो मटका-स्नान है। मानो घड़े में बैठकर नहा लिया चलताऊ स्नान !

नर्मदा का पानी इतना ठंडा रहता, मानो बर्फ का पानी हो। नहाने की हिम्मत न होती। पहले दिन मैं प्रातः स्नान करता हूँ, दूसरे दिन मध्याह्न स्नान पर उतर आता हूँ और बाद में तो यदा-कदा स्नान वाला हो जाता हूँ।

केरपानी के बाद पिठैहरा गाँव पड़ा। यहाँ एक प्राचीन गढ़ी है। कभी यह गढ़ी इस शांत एकांत गाँव की प्रतिष्ठा रही होगी। आज खंडहर हो चुकी है।

डोंगरगाँव में रामाधार शर्मा के घर रहे। यह व्यवस्था भी तेजबल विश्वकर्मा ने ही की थी। आज भी कुछ लोग हैं जो दूसरों के भले में स्वयं को भुला देते हैं। दूसरों के प्रति ऐसी चिंता बहुत कम देखने को मिलती है। इस घर की महिलाओं ने तो हमें खाना तक बनाने नहीं दिया। उन्होंने एक रसोइया बुलवा लिया था। आज तो हम सब खाएँ और आराम करें।

दूसरे दिन दोपहर तक गुरुगुफा पहुँच गए। यहाँ जमीन के नीचे एक गुफा है और उसमें एक सुरंग से होकर ही जाया जा सकता है। सुरंग बहुत सँकरी है। हम कुछ लोग टॉर्च के सहारे सिमटते सिकुड़ते अंदर गए और स्तब्ध रह गए। नर्मदा-तट कैसे-कैसे खजानों से भरा हुआ है! मानो सौंदर्य का एक झरोखा हमारे सामने खुला हो। गुफा की छत तथा दीवारों से अद्भुत आकृतियाँ उभरी हैं और जौहरी के बारीक काम-सी जान पड़ती हैं। निकलने का मन नहीं हो रहा लेकिन गुफा इतनी छोटी है कि हम जब बाहर निकलेंगे, तभी दूसरे आ सकेंगे।

यहाँ से निकलकर पास के आश्रम में जा बैठे। यहाँ कुमुद के पति शिवेन्द्र सिंह हम लोगों से मिलने आए। साथ में अंतहीन खाद्य सामग्री ले आए थे। एक बार दोनों कैलास मानसरोवर की यात्रा पर गए थे। इसका उन्होंने इतना जीवंत और विनोदपूर्ण वर्णन किया कि हम लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। कुमुद भलाई में विश्वास करती है। रात को हमारे दल की महिलाएँ काँखती कराहती, तब वह उनके पैरों की मालिश कर दिया करती थी।

रात्रि-विश्राम नर्मदा और हिरन के संगम पर स्थित आश्रम में रहा। आश्रम की देखरेख करने वाली महिला ने अपना नाम रखा है माँ प्रेममयी। लेकिन सभी उसे नानी कहते हैं तो हम भी यही कहने लगे। अपनी हर बात बड़े जोश-खरोश के साथ कहती थी। किसी भी बात का पैना जवाब उसके पास हर समय तैयार रहता था। वह दूसरों को कुछ भी कहने का मौका दिए बिना लगातार बोलती रहती थी। अपने मन की बात को मन में दबाना वह जानती ही नहीं। जो सोचती है, खुलकर कहती है। वह एक जगह स्थिर खड़ी नहीं होती थी, हँसी की कोई बात कहकर चली जाती और एक छोटा चक्कर लगाकर वापस आ जाती। 76 की है, लेकिन अबाबील की तरह फुदकती रहती थी। खुशमिजाजी उसके खून में थी।

वह हँसी-मजाक करती रहती थी और खूब हँसती हँसाती थी। वह निडर और निर्भीक महिला है, किसी से नहीं डरती, मौत से भी नहीं। सामने स्मशान में जब मुरदे जलते हैं, तो वह चाव से देखती है।

नानी को पेन्शन मिलती है। वह किसी पर आश्रित नहीं। अपने बच्चों पर भी नहीं। अन्याय को सहन नहीं कर सकती। उसके पति हाईस्कूल में प्राचार्य थे। एक बार वह उनसे मिलने गई। वे स्कूल में नहीं थे। वह ब्लैकबोर्ड पर बड़े अक्षरों से लिख आई- प्राचार्य नदारद ! नीचे तारीख और समय भी लिख दिया।

नानी में अजीब विरोधाभास है। अकड़ी अकड़ी भी रहती है और गौरैया की सी हलकी देह में चहकती फुदकती भी रहती है। एक क्षण गुस्से से उबल पड़ती, तो दूसरे ही क्षण ठठाकर हँसती। नानी अपने ही तरह की महिला

है- बाहर से भी साफ, भीतर से भी साफ। सुबह चलने लगे तो हिरन संगम तक छोड़ने आई। मैंने कहा, "नानी, आपको अपना नाम माँ तेजोमयी रखना था।"

आज रास्ता लंबा जरूर था, पर सारे दिन आकाश में बादल छाए रहे। चलने में आराम रहा। आज राजीव मित्तल का साथ रहा। वे संपादक हैं लेकिन उनमें संपादक की चमक-दमक या तड़क-भड़क जरा भी नहीं। थक जाते तो बिना बिछावन के कहीं भी लेट जाते। जब मन करता, डुबकी लगा लेते। यहाँ उन्हें बड़ी शान्ति मिल रही है। जानवरों से उन्हें बेहद लगाव है। रास्ते में हमें भाँति-भाँति के कुत्ते मिले। हर कुत्ते को पुचकारते-दुलारते। एक जगह एक भद्दे से झबरीले कुत्ते ने भौंकने के लिए मुँह खोला, लेकिन राजीव की पुचकार सुनकर सिर्फ जम्हाई लंकर रह गया !

हमारा हर दिन खुशी से भरा होता। हर दिन दिलचस्प और मजेदार गपशप में गुजरा। हमारे साथी अपनी दौड़ती-भागती जिंदगी को सर्वथा भूल गए थे और दिन भर हँसते-खिलखिलाते रहते थे। जब हँसी की कोई बात न होती तो सभी मिलकर 'हा-हा-हा' हँसते। यह हँसी बहुत कुछ घोड़ों के हिनहिनाने जैसी होती।

यात्रा में किसी के पैर में मोच आई, किसी को हलका बुखार, किसी को काँटा गड़ा तो किसी की चप्पल दगा दे गई। लेकिन सभी का उत्साह इस कदर

उफान पर था, कि किसी ने भी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया।

अप्रिय दृश्य भी देखने मिले। नदी में जगह-जगह ट्रकों के काफिले खड़े थे। नदी में से मशीनों से रेत निकाली जा रही थी। मुझे लगा, मानो नदी की छाती में कोई चाकू घोंप रहा है।

प्रकृति ने कभी किसी को धोखा नहीं दिया। लेकिन प्रकृति तब से धोखा खाती रही है जब से आदमी पैदा हुआ।

तीसरे पहर नदी के कछार में से निकल कर ऊपर आ गए। कुछ खेतों में ज्वार लहरा रही थी तो अधिकांश खेतों में गेहूँ और चने के अंकुर निकल रहे थे। आज दिन निकले से दिन ढले तक चले। झलौन में मेरे स्नेही मित्र बृजेश गोंटिया के यहाँ रहे। सभी परकम्मावासी यहीं रहते हैं।

आधी रात में मुझे बुरी तरह से खाँसी उठी। खाँसी के दौरों से छाती फटी-सी पड़ रही थी। शैलेन्द्र उठे, पानी गरम करके लाए और पीने को कहा। अपने डिब्बे में गरम पानी भरा और डिब्बे को छाती पर रखने के लिए कहा। इससे बड़ी राहत मिली। खाँसी तुरंत बंद हो गई। फिर भी मैंने तय किया कि यहाँ से मैं घर लौट जाऊँगा। कहीं मेरा दमा न उखड़े। बाकी लोग आगे बढ़ेंगे।

मैं घर आता तो कान्ता भी आती। हो सकता है बा-बापू (सभी साथी हमें बा-बापू कहने लगे थे।) के बिना शायद पूरा दल ही यात्रा स्थगित कर देता। लेकिन रात से ही वर्षा शुरू हो गई थी। सबेरे अच्छा पानी बरस रहा था। ऐसे में चलना संभव नहीं। किसी का भी नर्मदा तट छोड़ने का मन नहीं था। (जो पहली बार चल रहे थे, उन पर भी नर्मदा के सौंदर्य का जादू चल गया था।) लेकिन खराब मौसम के कारण यात्रा अधूरी छोड़नी पड़ी।

इस प्रकार यात्रा को खंडित करने का ठीकरा मेरे सिर पर नहीं फूटा। वर्षा ने ही हमारी यात्रा की लड़ी तोड़ी थी।

सभी सीधे हमारे घर आए। (हाँ, लहराती सफेद दाढ़ीवाले दो परकम्मावासी बाबा तीन दिन से हमारे साथ चल रहे थे, वे वहीं रह गए।) प्रशांत के चाचा रामसिंह, शरद की पत्नी निशा, प्रदीप की पत्नी मंजू और मेरी बहन भागीरथी के पूरे परिवार को बुला लिया गया था। घर में भंडारा हुआ, यानी सभी ने साथ बैठकर

भोजन किया। आखिर जुदाई की घड़ी आई। राजीव ने घुटनों के बल बैठकर हम दोनों के पाँव छुए। किरीट रो पड़े। सभी की आँखों में आँसू थे। मेरे तो बोल ही नहीं फूट रहे थे।

अभी ठीक से मिले भी नहीं थे कि बिछुड़ने की घड़ी आ पहुँची। यह एक नई बिरादरी थी, खून-नाल के रिश्ते से अलग और अनोखी। वृद्ध बा-बापू को छोड़कर सभी बच्चे चले गए। घर खाली हो गया। मैं गुमसुम बैठा रहा। एक गहन विषाद ने मुझे लपेट लिया।

याद आया, बहुओं ने बड़े प्यार से सभी के लिए भोजन बनाया था। यह व्यवस्था उनकी अपनी थी, हमें इसका पता तक न था। तीन बरस के पौत्र मानस ने आदि शंकराचार्य का नर्मदाष्टक सुनाकर सभी को चकित कर दिया था। अपने कॉलेज के वार्षिकोत्सव के लिए पौत्री नेहा निमाड़ी लोकगीत 'रेवा तारो पानी निर्मल, खलखल बहतो जाय' पर अपना नृत्य तैयार कर रही थी। नहीं, मुझे उदास नहीं होना चाहिए। हमारा नर्मदा-प्रेम

हमारे परिवार में जड़ें जमा चुका है। हम रहें न रहें, इस घर के दरवाजे नर्मदाप्रेमियों के लिए सदा खुले रहेंगे।

21. मोरी नरबदा मैया

बादल समुद्र के अंडे हैं।

बादल फटते हैं तो उनमें से नदियाँ निकलती हैं। नदियों का जन्मदाता समुद्र है

पालनकर्ता भी वही। हर साल मीठे पानी से उन्हें पुष्ट करता है। पृथ्वी पर जीवन सूक्ष्म जीवाणु के रूप में सर्वप्रथम समुद्र में ही प्रकट हुआ था।

हमारा-आपका, तमाम प्रकार के जीवों का पितृ-पुरुष समुद्र ही है।

नदी को उसका पाट तैयार नहीं मिला। पृथ्वी पर जब पहले-पहल वर्षा शुरू हुई होगी, तब पानी चारों ओर फैल जाता होगा और दलदल हो जाता होगा। लेकिन पानी को पाँव-पाँव चलना आता था। कीचड़ के उस पारावार में से उसने रास्ता बनाना शुरू किया। बाढ़ का उन्मत्त जल कर्णभेदी गरज

के साथ समुद्र की ओर चल पड़ा। बड़े-बड़े पहाड़ और घने जंगल उसे रास्ता देने लगे क्योंकि पानी की ताकत को वे जानते थे। यही एकजुट पानी सशक्त होता गया, पूर्ण होता गया और अंत में नदी बन गया। पानी के सामने जब तक लक्ष्य नहीं था, वह दलदल था। लक्ष्य मिलते ही नदी बन गया। नदी में समुद्र से जा मिलने की सहज प्रवृत्ति

होती है, मानो उधार ली हुई चीज वापस देने जा रही हो। बाढ़ के समय नदी कितनी खुश और शक्तिशाली होती है! बाढ़ के पानी ने ही मुख्य रूप से नदी का पाट बनाया। ऐसा नहीं कि पहले घर बना, फिर गृहप्रवेश हुआ। प्रवेश पहले हुआ, गृह बाद में बनता चला गया।

साहस और शौर्य का जैसा इतिहास नदियों ने रचा है, वैसा प्रकृति के और किसी घटक ने नहीं रचा। नदियाँ मानो हमसे कहती हैं राही! राह कहीं नहीं होती। राह बनाने से बनती है।

आदिमानव गुफा से निकलकर बाहर आया और नदियों के किनारे रहने लगा। वह शिकारी से किसान बना। नदियों के किनारे एग्रिकल्चर आया तो कल्चर भी आया। संसार की सभी प्राचीन सभ्यताओं का जन्म नदियों के तट पर हुआ। ऋषियों के आश्रम भी नदी तट पर ही होते थे।

हजारों वर्षों तक नदियाँ स्वच्छ, सुंदर और पवित्र रहीं। किन्तु कोई सौ सवा सौ साल पहले औद्योगिक सभ्यता आई और इसी के साथ नदियों की दैत्य-दशा शुरू हो गई। जो नदियाँ बरसात में उफन पड़ती थीं, तटबंध तोड़कर बाहर आ जाती थीं, चौड़े पाट भी जिन्हें कम पड़ते थे, उन्हीं नदियों की धारा अब टिमटिमा रही है। जंगल कट जाने से नदियाँ कुपोषण का शिकार हो गई हैं। थकी-हारी नदियाँ आज शहरों और कारखानों की गंदगी

ढोने का काम कर रही हैं। उनका जल विषाक्त हो गया है। नदियों के प्रति हमारा व्यवहार अगर ऐसा ही अमानवीय रहा तो सौ साल बाद नदियाँ सूख जाएँगी। पानी दुर्लभ हो जाएगा और पानी के एक गिलास के लिए लोग चोरी करेंगे। बादलों का अपहरण आम बात होगी। बादलों का जो रेवड़ किसी एक देश को जा रहा था, कोई दूसरा देश उसे रास्ते में ही रोक लेगा और अपने देश हाँक ले जाएगा।

पहले कितने तालाब थे। अब अधिकांश पूर दिए गए हैं और वहाँ कालोनियाँ बन गई हैं। अब बारी नदियों की है। नदियाँ रहेंगी, तो हम रहेंगे। लेकिन हम तो नदियों को लपेट-सपेटकर कूड़ेदान में फेंक रहे हैं। नदियों को बेदखल करके उनके घरों में नालों को बसा रहे हैं। आबादी का विस्फोट इस सुंदर देश को नरक बना रहा है।

यह ठीक है कि हमने नर्मदा के प्रति वैसी क्रूरता नहीं दिखाई है जैसी गंगा और यमुना के प्रति। (वे दोनों आई.सी.यू. में पड़ी कराह रही हैं उनमें पानी नहीं, रासायनिक घोल बह रहा है।) फिर भी अपनी पहले वाली नर्मदा, जिसे मैंने 25-30 साल पहले देखा था, और आज की नर्मदा को देखता हूँ तो वेदना होती है। हम तरह-तरह से नर्मदा को गंदा कर रहे हैं। नदी से उसका पानी तो निचोड़ते ही हैं, उसकी रेत भी निकाल रहे हैं- मशीनों से। नदी जितना दे सकती है, उससे अधिक खसोट रहे हैं। कुछ ही वर्षों में नदी का खाली खोल रह जाएगा। जो मनुष्य कभी प्रकृति के प्रति संवेदनशील था, उसके प्रति पूज्यभाव रखता था, वही आज उसका हत्यारा बन गया है। मनुष्य के खूंखार पंजों से नदी को डर लगने लगा है। काश, ये लोग जान पाते कि नदी के दिल पर क्या बीत रही है।

पहले हमारी जितनी अपेक्षा होती थी, नदी उससे हमेशा ज्यादा देती थी। लेकिन हमारी अपेक्षाएँ आसमान छूने लगी हैं। नदी उन्हें पूरा नहीं कर सकती।

ऐसा नहीं कि स्थिति निराशाजनक है। हाँ, गंभीर अवश्य है। और यदि इसे बदलने के लिए कुछ नहीं किया, तो यह निराशाजनक भी हो सकती है। दुर्भाग्य से बाँध का सर्वाधिक प्रहार नर्मदा को ही झेलना पड़ा है। छोटी-सी नदी पर इतने सारे बाँध ! हमने नर्मदा को पिंजड़ों में बंद कर दिया है। इंदिरा सागर बाँध की औसत चौड़ाई 10 किलोमीटर है। (एक जगह तो उसकी चौड़ाई 50 किलोमीटर है।) सामने का किनारा दिखाई ही नहीं देता। बाँधों के कारण नदी अपने मूल तत्त्व को-प्रवाह को खो बैठी है। नदी नदी नहीं रही। बाँध यानी ठहरा हुआ पानी। परकम्मावासी को यह अनुभूति कैसे होगी कि वह बहते हुए पानी के साथ नदी के साथ चल रहा है। कहीं नर्मदा परिक्रमा की परंपरा बंद न हो जाए।

अगर ऐसा होता है तो वह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण होगा। जैसी भी हो परिक्रमा चलती रहे। बल्कि और भी फले, फूले और महके। इस बहाने हम प्रकृति से जुड़ते हैं। हम शहरों की भीड़भाड़ वाली जिंदगी जीने को बाध्य हैं। हमें छोटी-बड़ी समस्याएँ घेरे रहती हैं। किसी न किसी चक्कर में पड़े रहते हैं। अगर समय निकालकर हम प्रकृति के बीच जाएँगे, प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का आनंद लेंगे, तो यह यात्रा हमारे जीवन की एकरसता को सहने योग्य बना देगी। जीवन को

भुरभुरा होने से रोकेगी।

जितने दिन मैंने नर्मदा-तट की पदयात्राओं में बिताए, वे मेरे जीवन के सबसे अच्छे दिन थे। नर्मदा के किनारे खूबसूरतियों और खुशियों से भरे पड़े हैं। हाँ, इसके लिए हमें घर से बाहर निकलना होगा और रास्ते के झरनों, वृक्षों या पहाड़ों के सौंदर्य को देखने के लिए पल भर रुकना होगा। उनका आनंद लेने और उन्हें सराहने की ललक हमारे भीतर होना चाहिए।

हर आदमी में बालपन छिपा रहता है। अवसर मिलते ही मानव-हृदय में बैठा शिशु बाहर आ जाता है। नर्मदा की गोद में जाते ही मेरा बचपन लौट आता। विस्मय की भावना प्रबल हो उठती और वहाँ का सौंदर्य तो मुझे अवाक कर देता।

नर्मदा की पदयात्राओं ने मेरे जीवन में हमेशा के लिए जगह बना ली है। इन यात्राओं से ही मेरे लेखों और कोलाजों का आकार मिला है। मैं जो कुछ भी उल्लेखनीय कर सका हूँ, वह नर्मदा की पदयात्राएँ शुरू करने के बाद ही। अगर नर्मदा मेरे जीवन में न आई होती, तो मैंने नौकरी की होती, रिटायर हो गया होता और मर गया होता। किन्तु अब ऐसा नहीं होगा। मरने के साथ ही नहीं मरूँगा मैं। कैलेंडर में भले ही मर जाऊँ, मेरी परिक्रमा पुस्तकों में मैं जिंदा रहूँगा- कम से कम कुछ बरस तो रहूँगा ही।

लेखन में दिमाग और हाथ की जुगलबंदी होती है। दिमाग जो कहता है, हाथ वही लिखता है। इसीलिए बड़े लेखक को सिद्धहस्त लेखक कहा जाता है। मेरे लेखन में यह जुगलबंदी दिमाग और पैर की रही। अगर पैर 4000 किलोमीटर से भी अधिक न चलते तो दिमाग क्या कहता और हाथ क्या लिखता ! मैं सिद्धहस्त लेखक भले ही न होऊँ, आपादमस्तक

लेखक तो हूँ!

नर्मदा ने मेरी झोली छलका दी, मेरी योग्यता से कहीं अधिक दिया। मैं स्वयं को बहुत भाग्यशाली और ईश्वर का विशेष कृपापात्र मानता हूँ। लेकिन अब और चलना मेरे लिए संभव नहीं। अपनी नौका के पाल मैंने उतार लिए हैं।

मैं इस अर्थ में भी बहुत भाग्यवान हूँ कि मुझे अत्यंत सुखद बुढ़ापा नसीब हुआ है।

पता नहीं पुनर्जन्म होता है या नहीं। अगर होता है तो मैं चाहूँगा कि मेरा जन्म नर्मदा-तट के ही किसी गाँव में हो, मेरे उन्हीं माता-पिता के घर जो इस जनम में थे; और कुछ वर्ष बाद कान्ता का जन्म हो और जब हम वयस्क हो जाएँ, हमारी शादी हो जाए और जब बच्चे बड़े हो जाएँ, तब हम दोनों नर्मदा परिक्रमा पर निकल जाएँ। हमारा उजियारा, हमारा सुख सब नर्मदा-तट पर है।

अगर सौ या दो सौ साल बाद किसी को एक दंपती नर्मदा परिक्रमा करता दिखाई दे, पति के हाथ में झाड़ू हो और पत्नी के हाथ में टोकरी और खुरपी; पति घाटों की सफाई करता हो और पत्नी कचरे को ले जाकर दूर फेंकती हो, और दोनों वृक्षारोपण भी करते हों, तो समझ लीजिए कि वे हमीं हैं- कान्ता और मैं।

कोई वादक बजाने से पहले देर तक अपने साज का सुर मिलाता है, उसी

तरह इस जनम में तो हम नर्मदा परिक्रमा का सुर ही मिलाते रहे। परिक्रमा तो अगले जनम से करेंगे।

22. सातवें आसमान पर हूँ!

विश्वास नहीं था कि इतना जिऊँगा। इसलिए जब नौकरी में था और पचपन पार कर गया तो भगवान से विनती करने लगा प्रभु, इतनी उमर देना कि कुछेक बरस पेन्शन का सुख भोग सकूँ।

साठ पूरे होने पर रिटायर हो गया और पेन्शन लेते भी 22 बरस हो गए।

अभी सन् 2010 चल रहा है और मैं भी चल रहा हूँ। इतना बेशर्म नहीं कि माँगता ही चला जाऊँ। और कुछ नहीं माँगूँगा। बस, अब एक ही चाह है- मेरे चित्रों का एलबम छप जाए।

मैं नर्मदा-व्रती चित्रकार-लेखक हूँ। नर्मदा परिक्रमा के मेरे लेख प्रायः सभी प्रमुख पत्रिकाओं में छपे। बाद में पुस्तक रूप में भी छपे। नर्मदा परिक्रमा के मेरे कोलाज चित्रों की कई एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित हुईं। मध्यप्रदेश शासन का प्रतिष्ठापूर्ण शिखर सम्मान भी मिला। लेकिन जिस प्रकार मेरे लेखों को पुस्तक रूप में स्थायित्व मिला, उस प्रकार मेरे कोलाजों का कोई एलबम नहीं छपा। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में खूब छपे, लेकिन तिरोहित भी हो गए।

कोई प्रकाशक तो उसे छापेगा नहीं। सोचता हूँ, खुद ही छापूँ। एलबम तो

छप जाएगा लेकिन उसे खरीदेगा कौन? खपाऊँगा कहाँ? इन दिनों यही मेरी चिंता का विषय है। लेकिन जहाँ चाह, वहाँ राह। पढ़िए इस आमंत्रण को-

206तीरे-तीरे नर्मदा

प्रिय महोदय,

आगामी 3 अक्टूबर 2010 को मैं आयु के 82 वर्ष पूरे करूँगा। (सच तो यह है कि मन में था, 80 तक जिऊँगा भी या नहीं। लेकिन साल दर साल बीतते चले गए और मैं यहाँ तक आ गया।) इस खुशी में मेरे परिवारजनों ने हमारे आवास पर उस दिन सायं 7 बजे से प्रीतिभोज का आयोजन किया है। आप इस कार्यक्रम में सादर आमंत्रित हैं। कृपया किसी भी प्रकार का कोई उपहार न लाएँ। कोई आधी शताब्दी की सुदीर्घ कला-साधना के बाद मैंने अपने श्रेष्ठ कोलाज चित्रों का एक एलबम छपवाया है। बढ़िया आर्ट-पेपर पर ऑफसेट से छपे बड़े आकार के 10 बहुरंगी चित्रों के इस एलबम की कीमत केवल दो सौ रुपए रखी गई है। कृपया इसे जरूर खरीदें।

अमृतलाल वेगड़

नोट:

1. एलबम की कम से कम 250 प्रतियों के बिकने पर ही प्रीतिभोज प्रारंभ हो सकेगा।

2. इससे कम प्रतियाँ विकीं तो प्रीतिभोज का स्थान स्वल्पाहार लेगा।

3. अगर इससे भी कम प्रतियाँ बिकीं तो आपको निराहार भी जाना पड़ सकता है।

4. एक तरकीब से आपको यह एलबम बिलकुल मुफ्त पड़ सकता है। अभी खरीदें, जी भरकर देखें, बाद में इसे किसी को विवाह के अवसर पर उपहार में दे दें। लेने वाला इसे दूसरे को और दूसरा तीसरे को दे सकता है। अपनी नापसंद साड़ियों को महिलाएँ इसी तरह ठिकाने लगाती हैं।

मुझे आशा है आप सभी के सहयोग से एलबम की पर्याप्त प्रतियाँ बिकेंगी और किसी को भी निराहार नहीं जाना पड़ेगा। कृपया एलबम खरीदकर सिद्ध कर दें कि आप एक जीवित और सुसंस्कृत समाज के सदस्य हैं। (पचास हजार रुपए की लागत से इसे छपवाकर मैं यह सबूत पहले ही दे चुका हूँ।)

मित्रों का कहना है कि इन शर्तों को रखकर मैंने आमंत्रण को पेचीदा बना दिया है। जबकि मुझे लगता है मैंने आमंत्रण में एक नया रोमांच भर दिया है। वे कहते हैं कि इसे पढ़कर जो आता होगा, वह भी नहीं आएगा। (मित्रों के भारी दबाव के कारण मुझे तीसरे नंबर की धारा निकाल देनी पड़ी।)

चलो, मान लिया कि तुम्हारे एलबम की सौ, सवा सौ प्रतियाँ बिक गईं, बाकी का क्या करोगे? उन्हें रद्दी में बेचकर ही पीछा छुड़ा पाओगे। या फिर दीमक ही उनका उद्धार करेंगी।

मित्र ठीक कह रहे हैं। पहले हल्ले में जो एलबम बिक गए सो बिक गए। शेष प्रतियों को दीमक की शरण में ही जाना होगा। लेकिन इसमें नया कुछ नहीं। लेखक और दीमक का संबंध रामायण काल से ही चला आ रहा है। घोर तपस्या के कारण रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि के शरीर पर दीमक की बाँबियाँ बन गई थीं। दीमक को संस्कृत में वल्मीक कहते हैं। तभी से वे वाल्मीकि कहलाए। वैसे दीमक की पहली पसंद लेखक की पुस्तक है, न कि खुद लेखक। (पुस्तकों में भी उनकी पहली पसंद है सरकारी गोदामों में रखी सरकारी किताबें। इनके पहाड़ वहाँ बरसों पड़े रहते हैं और टस से मस होने का नाम नहीं लेते। दूसरे स्थान पर खुद लेखकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकें आती हैं।) और अपना काम वे किस खूबसूरती के साथ करती हैं! एब्स्ट्रेक्ट पैटर्न वाले दीमक खाए इन पन्नों को सजाकर, मढ़वाकर उनकी प्रदर्शनी लगाई जाए तो मॉडर्न आर्ट भी शरमा जाए! कला-जगत में एक नए युग का सूत्रपात होगा।

खैर, मैं हिसाब जोड़ने लगा। अगर 200 एलबम भी बिके, तो आएँगे 40000 रुपए और लागत लगी 65000 ! (पचास हजार एलबम के, पन्द्रह हजार भोज के।) इस घाटे को कैसे पूरा किया जाए? एलबम की क्वालिटी से मैं कोई समझौता नहीं कर सकता। भोज में ही कटौती की जा सकती है। यदि अंकुरित अनाज, सत्तू और बेल का शरबत रहे तो? दरअसल एक परकम्मावासी की पार्टी में ये ही चीजें होनी चाहिए। इस स्वास्थ्य वर्धक भोज को लोग आसानी से भुला न पाएँगे। किन्तु मेरे परिवार के लोग इस सात्त्विक भोज के लिए तैयार न हुए। 25 से 30 हजार का घाटा निश्चित है। क्या मैं इसे झेल पाऊँगा? या इस विचार को

ही त्याग दूँ?

उफ ! इतनी भी क्या जल्दी है। उस शुभ दिन को आने में अभी काफी देर है। समय स्वयं ही अनेक समस्याओं का समाधान कर देता है। हो सकता है, इस लेख के कारण अभी से मेरे एलबम की एडवांस बुकिंग शुरू हो जाए और मनीऑर्डरों का ताँता लग जाए !

ताँता लगना तो दूर, छिट-पुट मनीऑर्डर भी नहीं आए, तो मैं समझ जाऊँगा कि हवा का रुख किधर है। तब मैं एलबम नहीं छपवाऊँगा। किन्तु निमंत्रण-पत्र

हू-ब-हू यही जाएगा। इसके बावजूद जो इने-गिने लोग आएँगे, वे ही होंगे मेरे असली स्नेही-स्वजन। उन्हें दिव्य भोज दूँगा और कहूँगा ओ मेरे आत्म बंधु ! तुम्हें कोई एलबम फेलबम नहीं खरीदना। बस खाओ, पीओ और मौज करो ! कहीं लोगों को पता चल जाए कि एलबम छपा नहीं है, न ही हमें खरीदना पड़ेगा (और उपहार लाना मना है) तो भारी भीड़ भी उमड़ सकती है! यही तो मैं चाहता हूँ! चाहता हूँ कि इस खुशफहमी में अधिक से अधिक लोग आएँ और आकर देखें कि यहाँ तो...

आगे का वृत्तांत एक पत्रकार की कलम से -

पत्रकार -

पार्टी में आए मेहमान हैरान थे कि एलबम तो वहाँ बिक्री के लिए रखे हुए

थे ! मुखबिर से उन्हें पक्की सूचना मिली थी कि वह नहीं छपा। इस खुशफहमी के कारण जो भीड़ उमड़ी थी और बेहद खुश नजर आ रही थी, वही अब सहमी-सहमी लग रही है। वेगड़ जी प्रवेशद्वार पर खड़े हैं- प्रकट में तो मेहमानों की अगवानी करने के लिए, लेकिन वास्तव में यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी बिना एलबम खरीदे निकल न पाए। उनका ध्यान आने वाले मेहमानों पर कम, जाने वाले मेहमानों पर ज्यादा है। वे यजमान कम, गश्त पर तैनात सिपाही ज्यादा लग रहे हैं। इस कड़ी नाकेबंदी के बाद भी कुछ लोगों ने एलबम नहीं ही खरीदे। उनका विश्वास है कि जो-जो चीजें उधार माँगी जा सकती हैं, उन्हें खरीदना नहीं चाहिए।

काउन्टर वेगड़ जी के उन दोस्तों ने संभाल लिया है जो शुरू में एलबम छपवाने से उन्हें रोक रहे थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा था कि तुम स्वयं अपने सबसे बड़े दुश्मन हो। लेकिन जब एलबम छप ही गए तो वे भरसक कोशिश कर रहे हैं कि अधिक से अधिक एलबम बिकें और कम से कम घाटा हो। ऐसी गहरी मित्रता आजकल कम ही मिलती है।

एक कोने में दो दोस्तों के बीच बड़ा दिलचस्प वार्तालाप हो रहा था। बढ़िया कपड़े पहने स्थूलकाय दोस्त कह रहा था- वेगड़ जी अपना शौक हम लोगों

के पैसों से पूरा कर रहे हैं। दूसरे ने कहा- मैं ऐसा नहीं सोचता। वे किसी भी प्रकार की भेंट नहीं ले रहे हैं। फिर उनका निमंत्रण सम्मान है, सम्मन नहीं। न आते। उलटे तुम तो भाभीजी और तीन बच्चों को लेकर आए हो। पाँचों डटकर खाओ और बिना एलबम खरीदे मूँछों पर ताव देते निकल

जाओ!

मोटा दो पल चुप रहा ताकि मुँह में पान की लुगदी को इधर से उधर ले जा सके। फिर बोला, "मैं मूँछे नहीं रखता। ताव कैसे दे सकता हूँ?" दूसरे ने समझाया, "मूँछों पर ताव देने के लिए मूँछों का होना जरूरी नहीं। यह एक प्रतीकात्मक क्रिया है, बिना मूँछों के भी हो सकती है। फिर भी तुम्हारा मन न मानता हो तो एक काम करो मेरी मूँछों पर ही ताव दे लो! आखिर तुम मेरी पत्र-पत्रिकाएँ ले ही जाते हो, मेरे फोन का उपयोग भी करते हो, आज मूँछें सही!"

तभी भीड़ का एक रेला आया और आगे क्या हुआ, मैं देख न सका।

वेगड़ जी ने सोचा था, एलबम पर लोग टूट पड़ेंगे। टूटे जरूर, पर खाद्य-सामग्री पर, एलबम पर नहीं। कैसी भीड़ उमड़ी थी। प्रायः 300 लोग आए थे। पर एलबम 130 ही बिके। कुछ चतुर सुजान उधार ले गए, यह कहते हुए कि बाद में हिसाब कर लेंगे। वे शायद इसे किस्तों में खरीदना चाहते हैं।

वेगड़ जी को कम से कम तीस हजार का घाटा हुआ होगा। मुझे उनके लिए असीम दुख है। लेकिन मैंने उनसे दूर रहने में ही बुद्धिमत्ता समझी। उनसे बात करने जाता तो वे मुझी से कहते भई, तुम्हीं दस-पाँच एलबम बिकवा दो ! उन्होंने नर्मदा की चार हजार कि.मी. से भी अधिक की पैदल परिक्रमा की और बच निकले। हम नहीं जानते कि इस हादसे को वे झेल पाएँगे या नहीं। शायद उनकी पत्नी कुछ बता सकें-

कांता -

जब एलबम छपकर आया था तो वे इतने उत्साहित थे कि अपने आप पर नियंत्रण नहीं कर पा रहे थे। उनकी आँखों में नई चमक दिखाई देती थी और चेहरे पर नई दमक। उनका उल्लास देखते ही बनता था। लेकिन अब उनका विषाद देखा नहीं जाता। जो एलबम उनके अपार सुख का कारण बना था, वही अब दारुण

दुख का निमित्त बन गया है। खाली खाली आँखों से एलबमों से अँटी अलमारियों को घंटों निहारते रहते हैं। बाहर निकलने से कतराते हैं। कोलाज बनाना भी छोड दिया है। एक ही बात उनके मन को खाए जा रही है यह एलबम मेरी पाँच बरस की बचत को खा गया।

मैं कहती हूँ- एक बार तुम्हीं तो कह रहे थे कि अपनी कला के लिए मैं अपनी जान तक दे सकता हूँ। और अब जरा-से घाटे के पीछे इतना परेशान हो रहे हो? इतना घाटा हम सह सकते हैं। हम तबाह नहीं हो गए, न ही हमारी अर्थ-व्यवस्था चौपट हो गई है। वे कहते हैं बात घाटे की नहीं है। लोगों में बुक-कल्चर पैदा क्यों नहीं हो रहा? लोग किताबें खरीदते क्यों नहीं? मैंने कहा- अगर वे नहीं खरीदते तो क्या तुम उनकी जान ले लोगे? या अपनी जान दे दोगे? हम जानते थे कि यही होगा। इस परिणाम का हमें पूर्वानुमान था। हम एक ऐसा नाटक देख रहे थे, बल्कि खेल रहे थे, जिसका अंत हमें पहले से मालूम था। जरा सोचो, तुम्हारी वर्षों की साध पूरी हुई, तुम्हारे कोलाजों को स्थायित्व मिला, यह क्या कम है? समय आने पर बाकी एलबम भी बिक जाएँगे। धीरज से काम लो। आशावादी

बनो। आशा की लौ को बुझने मत दो। हमने खोया कम, पाया ज्यादा है। लेकिन वे मेरी सुनें तब न !

उनका दुख देखा नहीं जाता। वे न खाएँ तो मैं खा नहीं सकती। वे न सोएँ तो मैं सो नहीं सकती। वे बाहर न जाएँ तो मैं भी कहीं नहीं जाना चाहती। हे भगवान, मुझे सहारा दो कि मैं फिर से उन्हें खुशी से चहकता देख सकूँ।

पत्रकार -

बुरी खबर आना तो अभी बाकी थी। वेगड़ जी को दिन की तंद्रा में और रात की निद्रा में बिन-बिके एलबमों के ही विचार आते रहे। उन्हें लगा, इन्हें बेचने में पूरी उम्र लग जाएगी। अब तो उन पर धूल की पतली परत भी चढ़ चुकी है। इस कबाड़ ने आखिर वेगड़ जी को अस्पताल पहुँचा ही दिया। घाटा बढ़कर चालीस हजार से भी अधिक हो गया है। तभी एक अप्रत्याशित घटना घटी। हालाँकि इन दिनों भाग्य की चर्चा दकियानूसी मानी जाती है, पर जीवन में भाग्य की भूमिका होती जरूर है। अचानक वेगड़ जी को विदेश से इस एलबम की 1500 प्रतियों का

ऑर्डर मिला। पहले तो उन्हें अपनी इस खुशकिस्मती पर विश्वास ही नहीं हुआ। पत्र को कई बार पढ़ने के बाद उन्हें लगा कि यह सपना नहीं, हकीकत है। कल तक जो कबाड़ी का माल था, आज एकाएक कला की धरोहर बन गया! वे चमत्कारिक ढंग से ठीक हो गए। अवसाद की कालिमा दूर हो गई, खुशी की लालिमा छा गई। ताजा जानकारी के मुताबिक वे अस्पताल से सीधे दिल्ली चले गए हैं- अपने एलबम का दूसरा

भाग छपवाने के लिए !

कांता -

मैं भी इस खुशखबरी को सुनकर डोल उठी। वेगड़ जी ने दुनिया को दिखा दिया कि वे सम्मान और सराहना के योग्य हैं, केवल बूढ़े पेन्शनर नहीं। किन्तु प्रभु ! उन पर इतनी अधिक कृपा भी न करो कि वे बहक जाएँ! आपने तो उन्हें कुछ ज्यादा ही आशावादी बना दिया! कभी घोर आशा तो कभी घनघोर निराशा उन्हें इन दो अंतिमों के बीच जीना सिखाओ, प्रभु !

वेगड़ -

मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा। मैं अभी सातवें आसमान पर हूँ!

कंचन बरसे मेह

मैं और किसी ऐसे लेखक-यात्री को नहीं जानता, जिसने एक नदी को अपने सृजनात्मक प्रयत्न और जीवन का केन्द्र बनाया हो। नर्मदा की कितनी ही आवाजें, छवियाँ, मर्म और रस, प्रवाह और उच्छलता वेगड़जी के शब्दों में मिलती हैं। हिन्दी में ऐसी नदी-गाथा दूसरी नहीं है। हिन्दी हमेशा ही वेगड़जी की ऋणी रहेगी। वे न होते और न लिखते-उकेरते तो हम नर्मदा की अपार सौंदर्य-गाथा से वंचित रह जाते।

अशोक वाजपेयी नई दिल्ली

इस क्षेत्र में हिन्दी साहित्य की एक दूसरी समृद्ध पुस्तक का नाम है "सौन्दर्य की नदी नर्मदा"। अमृतलाल वेगड़ ने नर्मदा के बीहड़ और विकराल किनारों को पकड़ कर उसकी सम्पूर्ण यात्रा की है। उसका वृत्तान्त अत्यन्त रोमांचक और रुचिर है। वेगड़ की यात्रा में साहसपूर्ण अभियान, आध्यात्मिक अनुभव, जगत, प्रकृति और मानव के उत्तेजक साक्षात्कार का तात्त्विक चिन्तन है तथा विराटता और गहनता का भाव है।

श्रीलाल शुक्ल लखनऊ

ऐसा सजीव, लोकजीवन से सम्पृक्त मार्मिक यात्रा-विवरण हिन्दी में कोई दूसरा है- मैं नहीं जानता। नर्मदा की यह परिक्रमा कोई सैर नहीं, एक संकल्प है। इसमें धार्मिक उत्साह उतना नहीं है जितनी व्याकुलता अपनी धरती, नदी और जीवन से आत्मीय संबंध स्थापित करने की है। इसमें नदी जैसी सरलता, प्रवाह, उच्छाह, पारदर्शिता, संकुलता और उदात्तता है। कहीं यह कविता लगता है, कहीं सचेत सामाजिकता, व्यंग्य की धार और कहीं एक तत्त्वदर्शी लोक-चिंतन। पहली पुस्तक पर ही मुग्ध था। ये लेख उस मुग्धता को और गहराते हैं। यह वृत्तांत हिन्दी की एक धरोहर है।

- प्रभाकर श्रोत्रिय दिल्ली

क्या आप समझते हैं कि मैं आपका लिखा कोई भी शब्द बिना पढ़े छोड़ देता हूँ? "सौन्दर्य की नदी नर्मदा" मैं इतनी बार पढ़ चुका हूँ कि वह परिक्रमा मुझे अपनी लगने लगी है। मैं तो शायद ही आपके साथ परिक्रमा पर कुछ दूर भी जा सकूँ लेकिन आप सदा यही समझें कि मैं आपके पीछे-

पीछे हूँ। - विष्णु खरे दिल्ल।

ये कृतियाँ वेदों की ऋचाओं की तरह प्रकृति के बीच जीवन-व्यापार की कविताएँ हैं। हिन्दी में इतना सार्थक सौंदर्य, इतना मधुर और कल्याणकारी अंकन दुर्लभ है। इनके लेखक वेगड़जी लेखकों के बीच किंवदंती पुरुष हो गए हैं। कमला प्रसाद भोपाल

कंचन बरसे मेह213

'सौंदर्य की नदी नर्मदा' जब से पढ़ी थी, तब से मैं अभिभूत था। देशज सौंदर्य की सांस्कृतिक पीठिका और अनुभव का यह ऐसा आख्यान है जो स्मृति में अंकित हो जाता है। कभी मैंने एक अधूरा प्रयास किया था 'संस्कृति की महाधारा गंगा'... वह काम रह गया, तो 'नर्मदा' ने उसे बेहतर तरीके से पूरा कर दिया। आपके यात्रा-वृत्तांतों ने हिन्दी के रचना अनुभव को गरिमा और विस्तार दिया है।

- कमलेश्वर नई दिल्ली

समझ में नहीं आता कि क्या लिखूँ। आपकी अनूठी उपमाओं की स्तुति करूँ या सहज सरल शैली की सराहना करूँ। आपकी चित्रात्मक भाषा की दाद दूँ या आपके रेखांकनों की प्रशंसा करूँ। आपकी पुस्तकें पढ़कर जो अनुभूति हुई है, जो उपलब्धि हुई है, उसे शब्दों में उतार पाना मेरे बस का नहीं है। बस, यही समझ लीजिए कि आपने मुझे नर्मदा परिक्रमा करवा दी। प्रत्यक्ष करती तो शायद इतना आनंद न ले पाती। तब रास्ते के कष्ट ही ज्यादा याद आते। पर अपने कमरे में बैठकर आपकी कलम के सहारे मैंने परिक्रमा का पुण्य लूट लिया। आजन्म ऋणी रहूँगी।

-मालती जोशी भोपाल

नर्मदा संबंधी आपका काम अभिभूत करने वाला है। पढ़ते हुए लगता है कि नर्मदा का स्पर्श कर रहा हूँ। -

हेमंत कुकरेती दिल्ली

वेगड़जी की टोली में शामिल हो नर्मदा के किनारे पांच दिन चलने के बाद यह महसूस हुआ कि नर्मदा की ध्वनि और वेगड़जी के शब्दों में किस कदर सामंजस्य है। सुर और ताल की इस लयबद्धता का चश्मदीद गवाह होना अपने आप में एक जीवन जी लेना है। उन्होंने नर्मदा पर अद्वितीय लेखन किया है और लिखते, सोचते, स्केच बनाते और परिक्रमा करते वे स्वयं नर्मदा हो गए हैं। वेगड़जी शतायु हों, इसके लिए नर्मदा से कहना पड़ेगा क्या?

राजीव मित्तल लखनऊ

आपका गद्य इतना जीवन्त और अद्वितीय है कि उसे यात्रा-वृत्तांत की परिधि में रखना उसे इरादतन सीमित कर देने जैसा है। एक महाकथा और महाकाव्य के सभी गुण इस यात्रा-वृत्तांत में हैं। वे मानवीय ऊष्मा से इतने भरे हैं कि साहित्य की अनेक विधाओं को एक साथ स्पर्श करते हैं। नर्मदा यात्रा की हुलस भी जगाते हैं आपके शब्द। हिन्दी साहित्य को यह एक अनूठा उपहार है। -

कुमार अंबुज भोपाल

कहीं पढ़ा था कि यात्राएँ हमें नए अनुभव देती हैं, नए और दिलचस्प लोगों से मिलवाती है। आप की परिक्रमा पुस्तकें पढ़कर मैंने भी यह सब पा लिया। नदी भले ही बूढ़ी हो गई हो, पर यह यात्री अभी बूढ़ा नहीं हुआ। आप की प्रेरणास्रोत जीवनसंगिनी आपके साथ आपकी सांस्कृतिक आवारागर्दी में शामिल हुईं, यह बड़ी बात है।

- प्रदीप पंत नई दिल्ली

गुजराती की पुरस्कृत कृति 'सौन्दर्यनी नदी नर्मदा' के लेखक अमृतलाल वेगड़ को साहित्य अकादमी सभागार में सुनना एक विरल अनुभव था। वेगड़ की बतरस में तो मानो समूचा उपस्थित समाज बह गया जब उन्होंने दो भाषाओं- गुजराती और हिन्दी- की निर्मल धारा और परंपरा को एकाकार कर दिखाया। अपने गवई ठाठ में नर्मदा के इस यात्री ने बड़ी सादगी से अपने लेखन, सौंदर्य-बोध, मस्ती तथा पदयात्रा में अर्जित महक का महीन से महीन ब्यौरा और निचोड़ पेश कर दिया।

प्रताप सिंह दिल्ली

बस बह रही हूँ जब से 'सौन्दर्य की नदी' को पढ़ा है। इसे तो मैं पढ़ती ही रहती हूँ। न जाने कितनी ही बार अंतिम पृष्ठ तक पहुँचती और फिर भागकर प्रथम पृष्ठ पर आ जाती। पहली बार पढ़ा तो कुछ विशेष अंशों को रेखांकित किया। अगली बार फिर वही; बाद में देखा तो सारी की सारी पुस्तक रंग चुकी थी। कितने ही अंश मैंने रट लिए हैं ताकि जब पुस्तक

सामने न हो तो उन्हीं से रस पा सकूँ।

- प्रतिमा एस. मैथ्यू भोपाल

ऐसा लगता है जैसे इस परिक्रमा में मैं भी तो था आपके साथ। सच मानिए, आपकी यह नर्मदा परिक्रमा इन पुस्तकों के माध्यम से निरंतर चलती रहेगी और मेरे जैसे यात्री जब चाहें तब आपके साथ शामिल हो जाया करेंगे।

ब्रजेश शर्मा इन्दौर

'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' और 'अमृतस्य नर्मदा' पर शोध करने का मुझे अवसर मिला है। मेरी पत्नी ममता अंग्रेजी में एम.ए. है। वह 'मेरे पति' लेख को बार-बार पढ़ती है और आनंद लेती है।

-नन्दकिशोर महावर कोटा

पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते ही उमर हो गई। कुछ पुस्तकें बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है पर 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' का तो पाठ करने की इच्छा होती है। इसे पढ़कर तो व्यक्ति में सौंदर्य का झरना ही फूट पड़ता है। मेरा बस चलता तो मैं इन पुस्तकों की हजारों प्रतियाँ छात्रों और पाठकों में बँटवा देता।

- रामशंकर द्विवेदी उरई

'अमृतस्य नर्मदा' की एक-एक बूँद मन-प्राण में उतरती चली गई। वेगड़जी की कलम में जादू है, एक आत्मीय सम्मोहन है। वे लिखते हैं "मेरा चादर बदलने का समय पास आ गया है।" आगामी 20 वर्ष वे अपनी चादर न बदलें... अभी यह बहुत धवल है। पदयात्रा पर, बीहड़ों में, कान्ताजी को आप के साथ देखकर अत्यन्त सुखद अनुभूति हुई।

- शैवाल सत्यार्थी ग्वालियर

देशभर में ऐसा दूसरा कलासाधक नहीं जो एक पवित्र नदी की साधना के बहाने प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा में अपने को न्योछावर कर रहा हो। अपने जीवन के 82 वें वर्ष में प्रवेश कर चुके वेगड़ की संकल्प-चेतना और उद्यम का कोई दूसरा विकल्प नहीं है।

- किशन कालजयी दिल्ली

श्री वेगड़ सतत यात्री हैं। नर्मदा के बाद उन्होंने उसकी सहायक नदियों की खोज खबर लेनी शुरू कर दी है। आप दोनों नर्मदा को खंगाल कर ही छोड़ेंगे। बुढ़नेर संगम से उद्गम तक नई पगडंडियों का निर्माण करते चले जा रहे हैं- चरैवेति, चरैवेति ।

- सरयूकान्त झा रायपुर

'अमृतस्य नर्मदा' मात्र यात्रा-वृत्तांत नहीं बल्कि आपके अनुभवों ने उसमें कवित्व का संस्पर्श देकर उसे एक क्लासिक ग्रन्थ बना दिया है। कान्ता बहन के आलेख में इतने मार्मिक स्थल और अनुभवों के मर्मपूर्ण वर्णन आए हैं जिन्हें पढ़ते समय, पता नहीं क्यों, मैं बार-बार रोया। उनका पूरा

आलेख पारिवारिक आचार संहितः का कवित्वपूर्ण धरोहर बन गया है।

- राजेश्वर वर्मा ललित धनबाद

आपने अपनी दोनों ही पुस्तकों में कहीं हँसाया तो कहीं रुलाया। मैं सच में आश्चर्यचकित हूँ कि आपने कितनी कुशलता से पाठकों को नर्मदा के साथ अपने से भी जोड़े रखा है।

आभा वाराणसी

बयासी बरस का यह बूढ़ा बालक चिर कुँआरी नर्मदा माँ का मानस पुत्र / परिक्रमा कर रहा अपनी माँ की उछाह भरा। यौवन इससे शरमाता/ इसकी रगों में नर्मदा का रक्त दौड़ रहा / मृत्यु के आगे खड़ा यह निर्भीक वृद्ध शिशु । इसके साथ है इसकी जन्मान्तरों की सखी। राधा, जिसे मैं कान्ता बहन के रूप में जानता हूँ।

- देवव्रत जोशी रतलाम

यह केवल यात्रावृत्तांत नहीं। परिक्रमा की डायरी नहीं। धार्मिक पौराणिक कथाओं का संग्रह नहीं। यह इन सबसे आगे की पुस्तक है। एक विलक्षण जादुई सांस्कृतिक यात्रा है। नर्मदा तट का जनजीवन, भौगोलिक चित्रण, सांस्कृतिक विशेषता, लेखक के मन में उठते विचार-तरंग इन सभी का अत्यंत प्रवाही, हृदयग्राही कोलाज है। किसी भोले बालक ने लिखा हो, ऐसी उनकी शैली है तो कभी गंभीर दार्शनिक जैसा भी लिखते चलते हैं।

अत्यंत सहज, सरल और बार-बार पढ़ने का मन करे, ऐसी पुस्तक। बार-बार आनंद की अनुभूति कराती पुस्तक ।

- सुधीर सेवेकर पुणे

वेगड़जी की परिक्रमा का लक्ष्य मात्र अपने लिए पुण्य अर्जित करना नहीं है। उनके लेखन और चित्रों के माध्यम से दुनिया भर के अनगिनत लोग नर्मदा परिक्रमा कर चुके हैं। गुजराती भाषी वेगड़जी के लिए नर्मदा के समान हिन्दी भी उपास्य हो गई है। उनके हृदय का काव्य रस और काव्य प्रवाह उनके गद्य में छलक आता है।

- शारदा पाठक जबलपुर

आपकी पुस्तक 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' से प्रेरणा पाकर हमने नर्मदा पदयात्रा का संकल्प लिया है। हम सभी साथी नौकरीपेशा होने से आपके पदचिह्नों पर चल रहे हैं। प्रत्येक वर्ष के नवंबर में दस-दस दिन तक चलने का संकल्प है। प्रथम चरण में हंडिया से खलघाट तक चल चुके हैं। आपके समय के कई मार्ग विलुप्त हो चुके हैं।

- रवीन्द्र कुमार अम्बाड़कर भोपाल

'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' पढ़ने के बाद हम निकल पड़े परकम्मा पर। 'अमृतस्य नर्मदा' ने तो आग में घी का काम किया। अब तक चार छोटी-छोटी पदयात्राएँ कर चुके हैं। यात्राएँ नेमावर और महेश्वर के बीच रहीं। अधिक से अधिक 20 लोग सम्मिलित हुए। सभी विवेकानंद युवा मंडल, इंदौर से जुड़े हैं।

रविशंकर भाटिया इंदौर

'बूढ़ी नदी और बूढ़ा यात्री' पढ़कर गद्‌गद हो गया। मैं 23 वर्षीय छात्र हूँ। किसी यात्रा में आपके साथ चलना चाहता हूँ। मुझे नर्मदा का किनारा और आपका साथ एक साथ मिल जाएगा और आपको एक युवा वजन उठाने वाला भी मिल जाएगा।

- अभिमन्यु सिंह लोधी ग्वालियर

कंचन बरसे मेह 217

आप छोटे-छोटे सरल वाक्यों में इतने जीवन-मर्म, इतने प्रकृति-दृश्य और इतने मानवीय प्रसंग पिरो देने में सक्षम हैं कि अचरज-सा होता है। आपके अनूठे गद्य का मैं शुरू से प्रशंसक रहा हूँ। आपकी पुस्तकों से मैंने बहुत कुछ पाया है।

- प्रयाग शुक्ल नई दिल्ली

आपकी किताबों ने मुझे भीतर से नहा-धुआ दिया। इतनी निर्मल किताब, महात्मा गाँधी की आत्मकथा के बाद, अब आई है।

अजातशत्रु उल्लासनगर

मीनल, हम साहित्य किसे कहते हैं? जो पुस्तक हमें नई दृष्टि दे, हमारे अनुभवों को विस्तार दे, हमारे मन में छोटा ही सही दीप जलाए, वही पुस्तक सच्चा साहित्य है। अमृतलालजी को मेरे आशीर्वाद देना।

-निर्मला देशपांडे मुंबई

अभी कुछ ही दिन पहले बुन्देली का एक लोकगीत 'सखी री मैं न भई ब्रज की मोर' पढ़ते हुए मुझे याद आया कि आप भी तो नर्मदाजी से इतना ही प्यार करते हैं। आपके गद्य में रची-बसी पवित्रता, निश्छलता देखकर यह लगता भी है कि जैसे आप जन्म-जन्मांतर से नर्मदा की परिक्रमा कर रहे हैं। वरना क्या सिर्फ एक जन्म में ही नर्मदाजी के अन्त:स्थल में ऐसा प्रवेश संभव है?

- शत्रुघ्न चतुर्वेदी सागर

मैं मुग्ध हो गया। बुरी तरह से! बस, नर्मदा में तैर रहा हूँ... हाँ, यह भी कहना चाहिए कि अगले वर्ष के हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम में 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' के कुछ चुने हुए अंश सम्मिलित होंगे, ताकि हमारे छात्रों को भी डुबकी लगाने का आनन्द मिले।

रूपर्ट स्नेल लंदन (रीडर, हिन्दी विभाग, लंदन विश्वविद्यालय)

नीरज से एक बात कह नहीं पाए आप परिजन वेगड़जी पर कृपया इस बात का दबाव मत डालो कि वे परिक्रमा करना बंद कर दें। वेगड़जी 82 के हैं फिर भी इतने 'बुजुर्ग' नहीं हुए कि वे नर्मदा किनारे चलना छोड़ दें। वेगड़जी, परिक्रमा जारी रखें और पुस्तकें लिखें।

- क्रांति चतुर्वेदी इन्दौर

अगर सौ या दो सौ साल बाद किसी को एक दंपती नर्मदा परिक्रमा करता दिखाई दे, पति के हाथ में झाड़ू हो और पत्नी के हाथ में टोकरी और खुरपी; पति घाटों की सफाई करता हो और पत्नी कचरे को ले जा कर दूर फेंकती हो और दोनों वृक्षारोपण भी करते हों, तो समझ लीजिए कि वे हमीं हैं – कान्ता और मैं।

कोई वादक बजाने से पहले देर तक अपने साज का सुर मिलाता है, उसी प्रकार इस जनम में तो हम नर्मदा परिक्रमा का सुर ही मिलाते रहे। परिक्रमा तो अगले जनम से करेंगे।

सौन्दर्य की नदी नर्मदा

अमृत की नर्मदा

तीरे-तीरे नर्मदा

नर्मदांजली की तीनों पुस्तकों के प्रकाशक

मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल-3